

षात षात में बोध



बात-बात में बोध

(एकांकी संग्रह)

मुनि विजयकुमार

© जैन विश्व भारती
लाडनूँ (राज०)

स्व. श्रीमती भगवती देवी सरावगी (धर्मपत्नी श्री प्यारेलाल जी सरावगी) की पुण्य स्मृति में उनके सुपुत्र श्री मोहनलाल सरावगी के सौजन्य से प्रकाशित,

द्वारा भारत कल्याण फण्ड
५, लावर राउडन स्ट्रीट कलकत्ता-७००००७

संस्करण : १९९५ (चतुर्थ)

मूल्य : २० रुपये

प्रकाशक : जैन विश्व भारती
लाडनूँ (राज०)

मुद्रक : कौणार्क प्रेस
२०९/५ ललिता पार्क, लक्ष्मी नगर
दिल्ली-११००९२

Bat-Bat Mai Bodh.
Muni Vijay Kumar.

Rs. 20/-

झलकता है जिनकी
बात-बात में बोध
लक्ष्य है जिनका
मात्र सत्य की शोध
अनबोले बोलता है जिनका
यशस्वी जीवन
उन तपः पूत पूज्य चरणों में
करता हूँ कृति समर्पण

चतुर्थ संस्करण के लिए अपनी बात

‘बात-बात में बोध’ का यह चतुर्थ संस्करण है। जैन-धर्म और दर्शन के विविध पहलुओं को बातचीत की शैली के द्वारा इसमें प्रस्तुत किया गया है। पाठकों द्वारा प्राप्त अभिमत ही इस कृति की उपयोगिता को सिद्ध करते हैं।

पिछले वर्ष ही इसका तीसरा संस्करण समाप्त हो चुका था। कल्पना नहीं थी, थोड़े समय में ही इसके तीन संस्करण समाप्त हो जायेंगे। श्रद्धेय गुरुदेव व आचार्यवर का आशीर्वाद ही था कि लोगों ने इस पुस्तक को स्वीकार किया। मैंने जिस लक्ष्य से इस कृति को तैयार किया था उसी के अनुरूप इसका उपयोग हुआ, इसकी प्रसन्नता है।

अणुव्रत भवन, नई दिल्ली
२६, सितम्बर, १९९५

--मुनि विजय कुमार

आशीर्वचन

तत्त्व का चिन्तन गहन होता है। जैन तत्त्व में और अधिक गहराई है इसलिए उसे समझना सहज सरल नहीं है। मुनि विजय कुमार ने जैन धर्म के तत्त्वों की बातचीत की शैली में प्रस्तुत कर उन्हें सहजगम्य बनाने का प्रयत्न किया है। प्रस्तुत पुस्तक सामान्य पाठक के लिए भी उपयोगी हो सकेगी।

तेरापंथ धर्मसंघ में साहित्य का अनवरत कार्य चल रहा है। आचार्य श्री तुलसी की प्रेरणा एवं मार्गदर्शन में वह निरन्तर गतिशील और विकासशील है। उस विकास की शृंखला में अनेक प्रयत्न हो रहे हैं। पाठक की रुचि अनेक प्रकार की होती है। प्रस्तुत पुस्तक का अध्ययन भी पाठक के लिए रुचिकर होगा।

२५-२-८६

जैन विश्व भारती, लाडनूं

युवाचार्य महाप्रज्ञ

सम्पादकीय

चौबीस वर्ष की अल्प आयु से साहित्य सृजन में रत मुनि श्री विजयकुमार एक निष्ठाशील लेखक हैं। गद्य और पद्य लेखन की दोनों विधाओं में मुनि श्री का समान अधिकार है। 'निर्माण की दहलीज पर' नाम से नाटकों की भी एक कृति का परिमार्जित दूसरा संस्करण अभी निकला है। वच्चों के चरित्र निर्माण की दृष्टि से लिखा गया 'मुस्कान' नामक शिक्षाप्रद कविताओं का संग्रह भी इसी वर्ष प्रकाशित हुआ है। अब तक मुनि श्री की कुल सोलह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और सभी का सहृदय पाठकों ने अच्छा स्वागत किया है।

प्रस्तुत पुस्तक 'बात-बात में बोध' का पहला संस्करण १९८६ में छपा था। तीन वर्ष के थोड़े समय में इसका तीसरा संस्करण प्रकाशित होना अपनेआप में इसकी पठनीय सामग्री का परिचय है। इसमें जैन दर्शन के विविध पहलुओं को सरल व सरस वार्तालाप की शैली में प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक जैन दर्शन के जिज्ञासुओं, विशेषतः विद्यार्थियों के लिये बहुत उपयोगी बन पड़ी है।

२५ जुलाई १९९२

जतनलाल रामपुरिया

१५, नूरमल लोहिया लेन

कलकत्ता-७००००७

अभिव्यक्ति

वि० सं० २०४२ का आचार्यवर का लाडलू चातुर्मास । मैं एक बच्चों की पत्रिका पढ़ रहा था । उसमें विज्ञान के किसी एक सिद्धान्त को बाल-सुलभ-संवादात्मक-शैली में प्रस्तुत किया गया था । मुझे वह शैली बहुत पसन्द आई । मन ही मन एक विचार उपजा—क्यों न जैन दर्शन व सिद्धान्त को इसी रूप में प्रस्तुति दी जाये । मैंने कुछ ही दिनों में विषयों का चयन कर लिया । लिखने की इच्छा होते हुए भी मैं उस कार्य में नहीं जुट सका । कुछ आवश्यक लेखन जो पहले से चल रहा था उसे सम्पन्न करना जरूरी था । दो वर्ष तक मेरा वह विचार गर्भावस्था में पड़ा रहा । उस विचार को आकार मिला श्री डूंगरगढ़ वि० सं० २०४५ के चातुर्मास में । यों इन परिचर्चाओं का लेखन चातुर्मास से पूर्व आचार्यवर के ग्रीष्मकालीन लाडलू प्रवास में ही मैंने प्रारम्भ कर दिया था, परिसम्पन्नता श्री डूंगरगढ़ चातुर्मास में हुई ।

यों देखा जाये तो “बात-बात में बोध” कृति में नया जैसा मैंने कुछ भी नहीं लिखा । जो विषय मैंने लिये हैं उन पर आज तक बहुत कुछ लिखा गया है । एक-एक विषय पर स्वतन्त्र ग्रंथ भी लिखे गये हैं । ऐसे में मेरे जैसा अल्प बुद्धि वाला व्यक्ति कुछ नई बात लिखे यह कल्पना का अतिरेक ही हो सकता है । मैं स्वयं गधे के सींग लगाने या आकाश में फूल खिलाने जैसी कोई बात कह कर पण्डित कहलाना पसन्द नहीं करता । इतना-सा जरूर है कि नई बात न होने पर भी प्रस्तुतीकरण का ढंग अवश्य नया है । जिस किसी ने इन संवादों को पढ़ा, मुझे दाद अवश्य दिया । श्री डूंगरगढ़ के अवस्था व अनुभव वृद्ध अध्यापक भी भीष्मदेवजी को मैंने ये संवाद दिखलाये । कुछ संवादों को पढ़कर वे बोले—“मुनिवर ! आपका यह प्रयास सराहनीय है, हम विद्यालयों में इसी शैली को ही विकसित करना चाहते हैं । विद्यार्थियों के लिए तो ये उपयोगी है ही, हम जैसों के लिए भी ये पठनीय बन पड़े हैं ।”

इस पुस्तक में जैन दर्शन के वैचारिक पक्ष को संवाद-शैली में उकेरा गया है । दर्शन और सिद्धान्त से सम्बन्धित १५ विषयों का इसमें समावेश किया गया है । विषयों को अनावश्यक विस्तार देने की मनोवृत्ति इसमें नहीं रही, न कोई बहुत गहरे में उतरने की भी कोई भावना रही है । विषय की व्याख्या करते समय जेरे सामने सुखयतः पात्र रूप में विद्यार्थी रहे हैं । अन्य विशाल ग्रंथों की तरह यह भी कोई गूढ़ ग्रंथ न बन जाये इसका ख्याल मैंने बराबर रखा है ।

इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि हर विषय की व्याख्या में थोड़ा-बहुत प्रतिपाद्य छूटा है या यों कह दूँ, लक्ष्य पूर्वक छोड़ा गया है। 'बात-बात में बोध' कैसे दिया जा सके व उसमें सरसता बराबर बनी रहे, यह मेरा मुख्य उद्देश्य रहा है। एक कवि ने कितना सुन्दर लिखा है—

“ज्यों केले के पात में, पात-पात में पात ।

त्यों सन्तों की बात में, बात बात में बात ॥

केले के पत्ते में जिस तरह अनेक पत्ते निकलते रहते हैं वैसे ही सन्तों की एक बात में नई-नई बातें निकलती रहती हैं। इस बातचीत की शैली में प्रसंग के अनुरूप छोटी-छोटी कथाओं का भी प्रयोग किया गया है। जिससे पाठक ऊब महसूस न करे।

इस कृति की निष्पत्ति के द्वारा मैं स्वयं को अत्यधिक लाभान्वित अनुभव कर रहा हूँ। कुछ लिखने के बहाने मुझे अनेक ग्रंथों का स्वाध्याय करने का अवसर मिला। अनेक नई जानकारियाँ इस लेखन के द्वारा मुझे प्राप्त हुईं। सबसे पहली परिचर्चा “जैन धर्म” पर लिखकर मैंने आचार्यवर को सुनाई। गुरुदेव के उत्साहवर्धक शब्दों ने मुझे आगे लिखने के लिए प्रेरित किया। अमृत पुरुष आचार्यवर की अमृतमयी करुणा दृष्टि ही इस सृजन की आत्मा है। प्रज्ञा के धनी युवाचार्यवर की ज्ञान रश्मियाँ मेरे जैसे नाकुछ शिष्य को भी आलोकित कर रही है, इसका मुझे आत्मतोष है। उन्होंने समय के अति अभाव के बावजूद कृति का अवलोकन कर आशीर्वचन लिखा। उनकी यह अपार वात्सलता मेरे जीवन का अमूल्य पाथेय है।

पूज्य मुनि श्री सुमेरमलजी का बहुत बड़ा आलम्बन इस कृति में रहा है। उन्होंने इन समग्र चर्चाओं को ध्यानपूर्वक सुना, आवश्यक सुझाव दिये, हर उलम्बन को मिटाया। उनके इस सहयोग के प्रति कृतज्ञता जैसा शब्द छोटा ही पड़ता है। मुनिश्री सुखलालजी ने भी कृति का निरीक्षण कर इसे निखारने का प्रयास किया व विश्वास के रूप में भूमिका लिखकर मेरे आत्मविश्वास को बढ़ाया है। “बात-बात में बोध” पढ़कर आज की युवा पीढ़ी, स्कूलों व कॉलेजों में पढ़ने वाले विद्यार्थी जैन दर्शन के प्रति आकृष्ट होंगे, अपनी अमूल्य धरोहर को पहचानेंगे, ऐसी मेरी अपेक्षा है।

काल्प कल्याण केन्द्र, छापर
२६ जनवरी, १९८६

मुनि विजय कुमार

विश्वास

इन वर्षों में हमारे संघ में प्रभूत साहित्य का निर्माण हुआ है, यह एक गौरव का विषय है। यद्यपि कुछ साहित्य मौलिक है तथा कुछ उपजीवी है। पर, विधाओं का भी अच्छा विकास हुआ है। एक ही बात को एक ही प्रकार से कहने सुनने से कुछ नीरसता आ सकती है, पर अलग-अलग विधाओं में एक ही तथ्य को बार-बार कहने-सुनने से ऊब नहीं आती। यों जैन-धर्म दर्शन पर हमारे यहां ऐसे अनेक महत्त्वपूर्ण शलाकाग्रन्थों की सर्जना हुई है जो मील के पत्थर बन गए हैं। ऐसे भी अनेक ग्रंथ लिखे गए हैं जो साधारण आदमी के लिए सुगम्य बन गये हैं।

“बात-बात में बोध” पुस्तक में मुनि विजय कुमारजी ने जैन तत्त्व को संवादाशैली में एक नये प्रकार से प्रस्तुत किया है। छात्र वर्ग को इसमें विशेष दिलचस्पी पैदा हो सकेगी, ऐसा विश्वास है। मुनिजी ने इस शैली में दुरुह तथ्योंको भी इतनी सुगमता से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है कि वह थोड़े पढ़े-लिखे लोगों को भी समझ में आ सके। यों जैन तत्त्व ज्ञान बहुत गरिष्ठ है। उसे चबाना-पचाना हर एक के वश की बात नहीं है, पर कथोपकथन की शैली में प्रस्तुत इस पुस्तक में उसे इतने सरल ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि जिज्ञासा का सिलसिला निरन्तर बना रहता है। आज देखा जाता है कि किशोर-नवयुवक वर्ग तत्त्व ज्ञान से बहुत अपरिचित होता जा रहा है। इसके कई कारण हैं। पहले तो साधु-साध्वियों का सम्पर्क बराबर मिलता रहता था, अतः बच्चे सहज ही अपने पारम्परिक मूल्यों से परिचित हो जाते थे। आज बहुत सारे लोग बहुत दूर-दूर प्रांत-प्रदेशों में रहने लगे हैं। उनका साधु-संतों से सम्पर्क बहुत ही अल्प रह गया है। इसके साथ-साथ अन्य धर्म-सम्प्रदायों के लोग भी अपने साहित्य को इस तरह फेंक रहे हैं कि वह सब लोगों के लिए बहुत सुलभ हो गया है। ऐसी स्थिति में दूसरे लोगों के संस्कार अनायास ही हमारे किशोरों पर सवार हो जाते हैं। दूरदर्शन के प्रचलित हो जाने के बाद तो हमारे मौलिक संस्कारों पर इतना जोरदार आक्रमण हो रहा है कि उस दिशा में सावधान नहीं हुआ गया तो हो सकता है कि हम पिछड़ जायें। ऐसी

स्थिति में यह आवश्यक है कि रोचक शैली में स्वस्थ साहित्य प्रस्तुत किया जाये। बड़ी-बड़ी पुस्तकें दुसह होने के साथ-साथ महंगी भी होती हैं। इस दृष्टि से इस प्रकार की छोटी पुस्तकें शायद ज्यादा प्रभावक बन सकेंगी।

मुनि विजय कुमारजी ने कई विषयों का स्पर्श किया है। उनकी प्रस्तुत कृति भी एक नये आकार प्रकार में प्रस्तुत हो रही है।

काख कल्याण केन्द्र, छापर
२६ जनवरी, १९८६

मुनि सुखजाण

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
१. जैन धर्म	१ से ६
२. जैन धर्म और विज्ञान	१० से ३४
३. नमस्कार महामन्त्र	३५ से ४२
४. सम्यक्त्व	४३ से ४८
५. देव, गुरु और धर्म	४९ से ६०
६. नौ तत्त्व, षड् द्रव्य	६१ से ७३
७. आत्मवाद	७४ से ८४
८. पुनर्जन्म	८५ से ९५
९. गुणस्थान	९६ से १०४
१०. ईश्वर-अकर्तृत्व	१०५ से १११
११. कर्मवाद	११२ से १२४
१२. स्याद्वाद	१२५ से १३४
१३. नयवाद	१३५ से १४४
१४. निक्षेपवाद	१४५ से १५३
१५. जातिवाद की अतार्त्त्विकता	१५४ से १६४

जैन धर्म

(प्रोफेसर ओम प्रकाश अपने कमरे में एक कुर्सी पर बैठे हैं, उनके सामने १०वीं कक्षा में पढ़ने वाले दो विद्यार्थी बैठे हैं।)

विमल—प्रोफेसर साहब ! आप नाम के पीछे जैन टाइटल कब से लगाने लग गए ?

प्रो० ओमप्रकाश—विमल ! इस वर्ष गर्मी की छुट्टियों में मैं किसी काम से दिल्ली गया था। कुछ दिन रहा। वहां आचार्य श्री तुलसी के सान्निध्य में विज्ञान भवन में आयोजित एक भव्य कार्यक्रम में भाग लेने का सुझे अवसर मिला। आचार्य श्री का मार्मिक प्रवचन सुनने का सुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्हीं दिनों रेडियो व टेलिविजन पर उनकी एक वार्ता सुनी। अखबारों में भी एक दो वार उनकी चर्चा पढ़ी। मेरे मन में ऐसे महान व्यक्ति से मिलने की ललक पैदा हुई। मैंने उनसे व्यक्तिगत सम्पर्क किया। धर्म के सम्बन्ध में अपनी जिज्ञासाएं रखी। जैन धर्म को समझने का प्रयास किया। सुझे जैन धर्म के सिद्धान्त अच्छे लगे, उनके प्रति मन में आस्था जगी। तब से मैं जैन धर्म को स्वीकार कर जैन बन गया और अपने नाम के पीछे जैन शब्द लगाने लगा।

विमल—पर आपने तो ईसाई कुल में जन्म लिया, फिर आप जैन कैसे बन सकते हैं ?

प्रो० ओमप्रकाश—धर्म का सम्बन्ध किसी जाति या कुल से नहीं है। इसका सम्बन्ध व्यक्ति के विवेक से है। जन्म किसी भी परम्परा में हो सकता है। यह व्यक्ति की नियति है, किन्तु समझ आने पर भी उस परम्परा से चिपके रहना बुद्धिमानी नहीं है। मैंने ईसाई कुल में जन्म लिया यह सच है, किन्तु सोच समझकर जैन धर्म का अनुयायी बना हूँ। इसमें कहीं कोई विरोध नहीं।

कमल—तो क्या किसी भी जाति में जन्म लेने वाला जैन धर्म स्वीकार कर सकता है ?

प्रो० ओमप्रकाश—जैन धर्म में कोई जाति का बन्धन नहीं है। इतिहास को पढ़ने से पता चलता है—भगवान महावीर क्षत्रियवंशी थे, गौतम स्वामी ब्राह्मण जाति के थे, जम्बू स्वामी वैश्य व हरिकेशी मुनि चाण्डाल जाति के थे। भगवान महावीर का प्रमुख श्रावक आनन्द कृषिकार व शकडाल कुम्भकार था। आज भी अनेक जातियों के लोग जैन धर्म के अनुयायी हैं।

विमल—प्रोफेसर साहब ! मैंने कहीं पढ़ा था—भगवान बुद्ध ने बौद्ध धर्म का प्रवर्तन किया व महात्मा ईसा ने ईसाई धर्म को चलाया। क्या वैसे ही जैन धर्म भी किसी जैन नामक व्यक्ति का चलाया हुआ है ?

प्रो० ओमप्रकाश—नहीं-नहीं। यह जैन किसी महात्मा या भगवान का नाम नहीं है। जैन धर्म की निष्पत्ति जिन शब्द से होती है। जिन उस आत्मा का नाम है जिसने राग-द्वेष आदि विकारों को जीत लिया। उस आत्मा को वीतराग भी कहते हैं। वीतराग पुरुषों द्वारा भाषित धर्म को जैन धर्म कहते हैं।

विमल—सर, मैंने सुना है—सत्य अपौरुषेय है अर्थात् किसी पुरुष विशेष के द्वारा भाषित नहीं है। ऐसे में पुरुष विशेष के द्वारा निरूपित धर्म यथार्थ ही है ऐसा निश्चय कैसे किया जा सकता है। उसमें बहुत सारी असंगतियां होनी सम्भव हैं। जैन धर्म की यथार्थता भी इस प्रश्न से अछूती कैसे रह सकती है ?

प्रो० ओमप्रकाश—यथार्थ तत्त्व निरूपण में सबसे बड़ी बाधा व्यक्ति की रागद्वेषात्मक प्रवृत्ति है। चूंकि वीतराग पुरुष पूर्णतः राग और द्वेष से मुक्त होते हैं अतः उनके दर्शन में अयथार्थता के लिए कहीं भी अवकाश नहीं रह सकता।

कमल—जैन धर्म का प्रारम्भ कब हुआ प्रोफेसर साहब ?

प्रो० ओमप्रकाश—कमल ! प्रवाह की दृष्टि से यह धर्म शाश्वत है। किन्तु वर्तमान युग की अपेक्षा से इसका प्रारम्भ भगवान ऋषभ से होता है। भगवान ऋषभ के बाद २३ तीर्थंकर और हो चुके हैं जिन्होंने इस धर्म परम्परा को पल्लवित और पुष्पित किया। हमारे सबसे निकट और इस परम्परा के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर हुए हैं, जिन्होंने धर्म के साथ संघ की व्यवस्था की। इसी दृष्टि से हम कह सकते हैं, यह भगवान महावीर का शासन है।

विमल—भगवान ऋषभ के समय भी क्या जैन धर्म नाम प्रचलित था ?

प्रो० ओमप्रकाश—जैन धर्म नाम तो भगवान महावीर के कई शताब्दियों

बाद में प्रचलित हुआ है। यह धर्म स्वरूप की दृष्टि से सदा एक ही था। नाम की दृष्टि से इसमें परिवर्तन होता रहा है। इस परम्परा की पहचान समय-समय पर निर्ग्रन्थ प्रवचन, आर्हत धर्म व भ्रमण धर्म के नाम से होती रही है।

विमल—मेरा एक मित्र है जो बौद्धमतानुयायी है, बता रहा था कि जैन धर्म तो बौद्ध धर्म की शाखा है, कोई स्वतन्त्र धर्म नहीं। क्या यह कथन सही है ?

प्र० ओमप्रकाश—यह तो इतिहास की जानकारी का अभाव है। न केवल जैन अपितु जैनेतर विद्वानों ने भी इस सत्य को स्वीकार किया है कि जैन धर्म एक स्वतन्त्र धर्म है, किसी धर्म की शाखा नहीं। लोक मान्य बाल गंगाधर तिलक ने लिखा था—बौद्ध धर्म से पहले भी जैन धर्म भारत में फैला हुआ था। सुप्रसिद्ध इतिहास वेत्ता व अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान हरमन जेकोबी ने भी लिखा था—“जैन धर्म सर्वथा स्वतन्त्र है, वह किसी धर्म का अनुकरण नहीं है।” महामहोपाध्याय डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषण भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति महान् दार्शनिक डा० राधाकृष्णन ने भी इसी तथ्य को उजागर किया है। भागवत पुराण भी कहता है कि जैन धर्म को ऋषभ ने स्थापित किया। अतः इसमें तनिक भी संदेह के लिए स्थान नहीं कि जैन धर्म एक स्वतन्त्र धर्म है।

कमल—भारत की धरती पर युगों युगों तक राजतन्त्र चलता रहा है, अनेक राजाओं ने यहाँ शासन किया। क्या राजतन्त्र पर भी जैन धर्म का कोई प्रभाव रहा, बताने की कृपा करें ?

प्र० ओमप्रकाश—इतिहास पढ़ने से पता चलता है जैन धर्म को सभी वर्गों ने अपनाया। राजतन्त्र भी जैन धर्म से अछूता नहीं रहा। पुरातत्त्व वेत्ता पी० सी० राय चौधरी के शब्दों में—“श्रेणिक, कुणिक, चन्द्रगुप्त, सम्प्रति, खारवेल तथा अन्य राजाओं ने जैन-धर्म को अपनाया। गुजरात नरेश जयसिंह और कुमारपाल ने जैन धर्म को बहुत महत्त्व दिया। सम्राट् अकबर भी महान् आचार्य हीरविजयसूरी से बहुत प्रभावित थे।” अमेरिकी दार्शनिक विल ड्यूरेंट ने लिखा है—“अकबर ने जैनों के कहने पर शिकार छोड़ा और नियत तिथियों पर पशु हत्याओं पर रोक लगायी। जैन धर्म के प्रभाव से ही अकबर ने अपने द्वारा प्रचारित दीन-इलाही नामक सम्प्रदाय में सांस भक्षण के निषेध का नियम लागू किया था।”

अनेक अन्य धर्मी राजाओं के यहां पर भी अनेक महत्वपूर्ण पदों पर जैन लोग काम करते थे, ऐसा इतिहास में उल्लेख मिलता है। अन्य धर्मावलम्बी राजाओं पर भी निश्चित रूप से जैन धर्म की गहरी छाप थी ऐसा कहा जा सकता है।

कमल—प्रोफेसर महोदय ! यह भी बताएँ कि आपने जैन धर्म किसी के प्रभाव में आकर स्वीकार किया या अपने स्वतन्त्र चिंतन से ?

प्रो० ओमप्रकाश—कैसी बचकानी बात कर रहे हो ? मैं कोई अनपढ़ अनभिज्ञ तो नहीं जो प्रभाव में आकर किसी का पल्ला पकड़ लूं। व्यक्तिविशेष के प्रभाव से स्वीकृत धर्म आत्मगत नहीं होता। प्रभाव हटते ही वह छूट जायेगा। मैंने जैन धर्म अपनी समझ से व इसकी विशेषताओं के कारण स्वीकार किया है।

विमल—अब बताने की कृपा करें कि जैन धर्म में वे कौन-सी विशेषताएं हैं जिनसे आकृष्ट होकर आप इसके अनुयायी बने ?

प्रो० ओमप्रकाश—तुम्हारी जिज्ञासा है तो सुनो। पहली विशेषता है—जैन धर्म में गुणों की पूजा है, किसी व्यक्ति विशेष की नहीं। जैन धर्म के मन्त्र “नमस्कार महामन्त्र” में किसी व्यक्ति को नमस्कार नहीं किया गया है। आत्म-विकास की भूमिका को इसमें महत्त्व दिया गया है।

विमल—बात कुछ समझ में नहीं आई। अगर व्यक्ति विशेष की मान्यता नहीं तो फिर ऋषभ, पारस या महावीर के गुणगान क्यों किए जाते हैं ? फिर तो निराकार व निरंजन की ही पूजा होनी चाहिए।

प्रो० ओमप्रकाश—उचित है तुम्हारा प्रश्न। ऋषभ, पारस या महावीर के गुणगान का अर्थ यह मत समझो कि हम उन व्यक्तियों की पूजा करते हैं। ये नाम तो मात्र पहचान के लिए हैं। इन नामों के माध्यम से हम उन आत्माओं को वन्दन करते हैं जिन्होंने परमात्म स्वरूप को प्राप्त किया। इन नामों के और भी बहुत व्यक्ति हो सकते हैं, किन्तु हमारा उनसे कोई सम्बन्ध नहीं। सम्बन्ध है तो मात्र आत्मगुणों में स्थित ऋषभादि महापुरुषों से। आचार्यों ने तो यहां तक लिखा है—“हमारा महावीर नाम से राग नहीं है, न कपिल आदि अन्य मुनियों से तनिक रोष। जो सत्य मार्ग के उपदेष्टा हैं व जो राग-द्वेषमुक्त हैं वे सभी हमारे लिए वन्दनीय हैं। जैसे फल के साथ झिलका जुड़ा रहता है वैसे ही हर आत्मा के साथ कोई न कोई नाम व रूप जुड़ा होता है। पूजा गुण-युक्त आत्मा की होती है, किसी नाम या रूप की नहीं। नाम व रूप तो उस आत्मा की स्मृति व पहचान के माध्यम हैं।

इस व्याख्या के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शंकर, राम, कृष्ण सभी वंदनीय हैं, अगर वे राग-द्वेष मुक्त हैं।

विमल—ठीक, ठीक। अब समझ गया।

प्रो० ओमप्रकाश—जैन धर्म की दूसरी विशेषता सुझे जो लगी वह है—सब आत्माओं में समानता व सबकी स्वतन्त्र सत्ता की स्वीकृति। बड़े जीवों की रक्षा के लिए छोटे जीवों को मारना हिंसा है व उनके अस्तित्व को नकारना है। इसी कारण जैन लोग अपने जीवन-निर्वाह के लिए अनावश्यक हिंसा से बचते हैं, आवश्यक हिंसा में भी कमी करने का प्रयास करते हैं। अगर विश्व में इन सूक्ष्म जीवों की मात्र अनावश्यक हिंसा रुक जाये तो पर्यावरण की समस्या का सहज समाधान हो सकता है।

तीसरी विशेषता है—जैन धर्म का पुरुषार्थवादी दृष्टिकोण। व्यक्ति स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। पुरुषार्थ के द्वारा वह अपने भविष्य को सुनहरा बना सकता है।

कमल—क्षमा करें, एक बात बीच में पूछता हूँ। किसी व्यक्ति के भाग्य में दुःख लिखा है, क्या पुरुषार्थ के द्वारा उसे सुख में बदला जा सकता है ?

प्रो० ओमप्रकाश—खारे पानी को अगर मीठा बनाया जा सकता है तो दुःख को सुख में क्यों नहीं बदला जा सकता। भगवान महावीर की वाणी में दुःख-सुख की जननी स्वयं अपनी आत्मा है, कोई दूसरा नहीं। दुःख के क्षणों में भी अगर पुरुषार्थ सही दिशा में है तो व्यक्ति उसमें से भी सुख निकाल लेगा। हानि में भी लाभ ढूँढ़ लेगा। पुरुषार्थ गलत है तो सुख भाग्य में होने पर भी व्यक्ति दुःख का वेदन कर लेगा। सब कुछ होते हुए भी उसे अभाव खटकता रहेगा। तुमने दो मित्रों की बात तो सुनी होगी जिनमें एक राजा बनने वाला भिखारी बन गया और भिखारी बनने वाला राजा बन गया।

कमल—कौनसी बात ?

प्रो० ओमप्रकाश—तो सुनी ! दो मित्र थे। ज्योतिषी ने उनकी हस्तरेखा देखकर एक को बताया कि तुम राजा बनोगे और दूसरे को बताया कि तुम भिखारी बनोगे ? राजा बनने का स्वप्न लेने वाला व्यक्ति अभिमानी बन गया। वह रात-दिन सुरा-सुन्दरी में लिप्त रहने लगा। सब तरह के व्यसनों में पड़ गया। अत्यधिक उन्माद के कारण वह विक्षिप्त सा रहने लगा। भिखारी बनना जिसकी किस्मत में लिखा

था, वह व्यक्ति ज्यादा सजग रहने लगा, धार्मिक क्रिया करने लगा। सब प्रकार की बुराइयों से अपने को दूर रखने लगा। छः महीने में परिणाम आया। अपने कार्यों के कारण राजा बनने वाला भिखारी बन गया और भिखारी बनने वाला राजा बन गया। ज्योतिषी से किसी ने पूछा—ऐसा कैसे हुआ? उसने बताया—यह सारा इनके पुरुषार्थ का परिणाम है। पुरुषार्थ के द्वारा भाग्य की रेखा भी बदली जा सकती है।

विमल—तब तो हाथ पर हाथ रखकर किसी को बैठने की जरूरत नहीं और न भगवान को भी दोष देने की जरूरत है कि हाय! भगवान तू ने मेरे भाग्य में क्या लिख दिया!

प्रो० ओमप्रकाश—ठीक समझे हो तुम। भगवान को बीच में लाने की जरूरत भी नहीं है। हम स्वयं अपने सुख-दुःख के जिम्मेवार हैं। निराश होने की भी जरूरत नहीं है कि विधाता ने जो भाग्य में लिख दिया वह टलने का नहीं। वस! निष्काम भाव से पुरुषार्थ करते जाओ परिणाम तो स्वतः आयेगा ही। महान् व्यक्ति अपने सौभाग्य का लेख पुरुषार्थ की लिपि से लिखते हैं।

विमल—यह तो अच्छा सिद्धान्त है जैन धर्म का।

प्रो० ओमप्रकाश—और भी सुनो! चौथी विशेषता है जैन धर्म की जिसने मुझे आकृष्ट किया, वह है—जातिवाद की अतात्त्विकता। किसी भी जाति या कुल में जन्म ले लेने मात्र से व्यक्ति ऊंचा या नीचा नहीं बन जाता। निम्न कुल में जन्म लेने वाला व्यक्ति अपने उच्च आचरणों से ऊंचा हो सकता है और उच्च कुल में समुत्पन्न व्यक्ति अपने घृणित आचरणों से नीचा हो सकता है। जाति आदि के आधार पर किसी मनुष्य को अस्पृश्य नहीं ठहराया जा सकता।

जैन धर्म की पांचवीं विशेषता है—मृत्यु की कला का विज्ञान। जीवन जीने की कला सभी धर्म सिखाते हैं पर मरने की कला केवल जैन धर्म ने ही बतायी है। सामान्यतया मृत्यु की विभीषिका हर व्यक्ति को सताती है पर जैन धर्म का ज्ञाता मृत्यु को हंसते-हंसते स्वीकार करेगा, मृत्यु को भी वह उत्सव बना लेगा।

छठी विशेषता है—धर्म का मूल्य संप्रदाय से ऊपर है। किसी भी सभ्रदाय में जन्म लेने वाला व्यक्ति धर्म की सर्वोच्च आराधना कर सकता है। पन्द्रह प्रकार के सिद्धों के विवेचन में बताया गया है कि अन्य सभ्रदाय में, यहां तक कि गृही वेश में भी सिद्धत्व को पाया जा सकता है।

कमल—क्या जैन धर्म में स्त्री भी सिद्धत्व को पा सकती है ?

प्रो० ओमप्रकाश—जैन धर्म में पुरुष की तरह स्त्री को भी साधना करने का पूरा अधिकार है। वह भी सिद्धत्व को पा सकती है। स्त्री और पुरुष का भेद सिर्फ लैङ्गिक है, आत्म स्वभाव की दृष्टि से दोनों में कोई अन्तर नहीं। आत्मा न पुरुष है, न स्त्री और न नपुंसक। ये लिंग तो शरीर जन्य है। भगवान ऋषभ की माता मरुदेवी की घटना तो बहुत प्रसिद्ध है। वे हाथी के हौदे पर बैठी स्त्री शरीर में ही सिद्ध, बुद्ध और सुक्त हुई थी। मरुदेवी मां की तरह अगणित स्त्रियों ने साधना करके उस अविनाशी शाश्वत स्थान को प्राप्त किया है।

अन्य धर्मों में जहाँ स्त्री को पुरुष से नीचा दर्जा दिया गया है वहाँ जैन धर्म ने नारी को समानता व स्वतन्त्रता का पूरा अधिकार दिया है। यह जैन धर्म की मातृवी महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

आठवीं विशेषता है—धर्म का मध्यम मार्ग—अणुव्रत का निरूपण। गृहस्थ जीवन जीता हुआ भी व्यक्ति व्रतों की आराधना कर काफी हद तक धार्मिक जीवन जी सकता है।

कमल—तो क्या गृहस्थ और साधु दोनों का धर्म अलग-अलग है ?

प्रो० ओमप्रकाश—धर्म स्वरूपतः दोनों के लिए एक जैसा है। मात्र धर्माचरण के परिपालन की क्षमता के आधार पर गृहस्थ के लिए अणुव्रत और साधु के लिये महाव्रत का विधान किया गया है।

नवीं विशेषता है—अपरिग्रह का सिद्धान्त। साधु के लिए विधान है कि वह अपरिग्रही रहे। गृहस्थ पूर्ण अपरिग्रही नहीं बन सकता। उसके लिए कहा गया—वह परिग्रह की सीमा रखे और जो है उसके उपभोग में आसक्ति भाव से बचता रहे।

दसवीं विशेषता है—अनेकान्त। इसका अर्थ है—सापेक्ष दृष्टि से जानने का प्रयास करना। अनेक दृष्टियों से तथ्य को समझना। परिवार से लेकर विश्व की सभी समस्याओं को समाहित करने की इस सिद्धान्त में अपूर्व क्षमता है।

बारहवीं विशेषता है—हर आत्मा में परमात्मा बनने की स्वीकृति। जैन धर्म ईश्वर को कर्त्ता हर्ता नहीं मानता, पर वह हर आत्मा में ईश्वर बनने की योग्यता को स्वीकार करता है। भक्त सदा भक्त ही बना रहे यह उसे इष्ट नहीं है। अब तक अनन्त आत्माएँ ईश्वर बन चुकी हैं और आगामी काल में भी इसी तरह की आत्माएँ होती रहेंगी।

विमल—इतने महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त हैं जिस धर्म के, सच्चमुच वह महान् है। मेरी

दृष्टि में जैन धर्म विश्व धर्म बनने की क्षमता रखता है। एक और प्रश्न जो सुझे कुरेद रहा है वह है, जो धर्म इतना महान् है उसके अनुयायियों की संख्या इतनी कम क्यों है ?

प्रो० ओमप्रकाश—तुम्हारा प्रश्न उचित है। पहली बात तो है जैन धर्म ने संख्यात्मकता से भी अधिक गुणात्मकता पर ध्यान दिया। दूसरी बात—भगवान महावीर जैसा सक्षम नेतृत्व जैन धर्म में नहीं रहा जो पूरे विश्व को अपने व्यक्तित्व से प्रभावित कर सके और विरोधी विचार वाले व्यक्तियों के बीच भी सामंजस्य स्थापित कर सके। तीसरी बात—कालान्तर में जैन धर्म को कष्टसाध्य माना जाने लगा। चौथी बात—जातिवाद से मुक्त जैन धर्म में जातिवाद ने अपनी जड़ें जमानी शुरू कर दी। पाँचवीं बात—प्रभावशाली आचार्यों की परम्परा में काल का लम्बा अन्तराल रहा। छठी बात—जैन अनुयायियों द्वारा जैन-जीवन शैली को महत्त्व कम दिया गया। इस प्रकार के और भी कारण हो सकते हैं, जैन अनुयायियों की अल्प संख्या में। फिर भी संतोष का विषय है कि संख्या को बढ़ाने के लिए जैन धर्म ने कभी अपने आदर्श को नीचे नहीं गिराया। हजार काच के टुकड़ों से भी ज्यादा मूल्यवान एक असली रत्न होता है। वैसे संख्या भले ही कम हो पर अपनी विशेषताओं के कारण जैन धर्म विश्व के सभी धर्मों में अपना गुरुतर स्थान रखता है।

कमल—इसे तो अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

प्रो० ओमप्रकाश—ये विशेषताएं मैंने मोटे तौर पर तुमको बतायी है। अगर तुम जैन धर्म के बारे में विस्तार से जानना चाहो तो आचार्य श्री तुलसी व युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ के साहित्य को पढ़ो।

विमल—सर, हकीकत में जैन धर्म के सिद्धान्त बहुत ऊंचे हैं। अब सिर्फ एक जिज्ञासा शेष रह गयी है। वह है जैन धर्म को स्वीकार करने वाले व्यक्ति का जीवन कैसा होना चाहिये। एक जैन कहलाने वाले व्यक्ति की क्या विशेष पहचान होनी चाहिये ?

प्रो० ओमप्रकाश—अच्छा प्रश्न किया है। जैन धर्म में सिद्धान्त से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण जीवन व्यवहार का पक्ष है। जो धर्म दर्शन लोक जीवन को उन्नत नहीं बनाता, वह कोरे सिद्धान्तों के बल पर अपनी तेजस्विता को बढ़ा नहीं सकता। जीवन व्यवहार के सम्बन्ध में अनेक सूत्र जैन ग्रन्थों में भरे पड़े हैं। वि० सं० २०४६ योगक्षेमवर्ष में आचार्य श्री तुलसी ने उन बिखरे हुए सूत्रों को व्यवस्थित करके

नवांगी जैन जीवन शैली का रूप दे दिया। इस जीवन शैली के दर्पण में हम जैन कहलाने वाले व्यक्ति की पहचान को भांक सकते हैं। जैन जीवन शैली के नौ अंग ये हैं—

१) समानता—एक जैन धर्म का अनुयायी जातीयता के आधार पर किसी के साथ घृणा का व्यवहार नहीं करेगा, किसी को अस्पृश्य नहीं मानेगा।

२) शांतवृत्ति—वह शान्त सहवास का अभ्यास करेगा। पारिवारिक कलह से बचेगा। दहेज आदि को लेकर कभी क्रूर व्यवहार नहीं करेगा।

३) श्रम—वह स्वावलम्बन का विकास करेगा। श्रम का शोषण नहीं करेगा।

४) अहिंसा—वह अभय का विकास करेगा। आत्महत्या, परहत्या, भ्रूणहत्या नहीं करेगा। अनर्थ हिंसा से बचेगा। क्रूरतापूर्ण, हिंसा-जन्य प्रसाधन सामग्री से बचेगा।

५) इच्छा-परिमाण—वह खाद्य पदार्थों में मिलावट, तस्करी (स्मगलिंग), अण्डे-मांस के व्यापार आदि के द्वारा अर्थाजर्जन नहीं करेगा। अर्जन के साथ स्वामित्व-विसर्जन का प्रयोग करेगा। पदार्थ के परिभोग की सीमा करेगा।

६) आहार-शुद्धि और व्यसन-मुक्ति—वह खान-पान की शुद्धि रखेगा। मांस, मछली, अण्डे आदि का वर्जन करेगा। व्यसन-मुक्त जीवन जीयेगा। शराब, नशीले पदार्थ, जुआ आदि से बचेगा।

७) अनेकान्त—वह दुराग्रह नहीं करेगा और विवादास्पद विषय में यथासम्भव सामञ्जस्य विठाने का प्रयास करेगा।

८) समता की उपामना—वह स्वाध्याय, सामायिक आदि का अभ्यास करेगा। प्रतिदिन प्रातः उठने के पश्चात्, भोजन से पूर्व तथा सोने के पूर्व तीन बार पाँच-पाँच नवकारमंत्र का विधिपूर्वक जप करेगा।

९) साधर्मिक-चातमत्य—वह साधर्मिकों के साथ भाईचारे का व्यवहार करेगा।

विमल—सिद्धान्तों की दृष्टि से ही नहीं जीवन व्यवहार की दृष्टि से भी यह धर्म दुनिया में सबसे श्रेष्ठ जान पड़ता है। ऐसे धर्म के प्रति हमारे मन में भी सहज भ्रद्धा और आकर्षण का भाव है।

कमल—(विमल से) मित्र ! ऐसे महान् धर्म को हमें भी स्वीकार करना चाहिये और अपने जीवन को धन्य बनाना चाहिये।

जैन धर्म और विज्ञान

(धर्म स्थान, मुनि आसन पर विराजमान हैं, प्रो० ओमप्रकाश एक दरी पर उनके सामने बैठे हैं ।)

ओमप्रकाश—मुनिवर ! कई दिनों से सोच रहा था कि संतों के पास चलना है किन्तु मेरा पेशा ही ऐसा है कि चाहते हुए भी मैं आपका सान्निध्य प्राप्त नहीं कर सका ।

मुनिवर—प्रो० साहब ! आप एक की ही नहीं औरों की भी यही हालत है । किसी से भी कहते हैं—अरे, कुछ समय निकाल लिया करो तो यही उत्तर सुनने को मिलता है कि महाराज ! बहुत व्यस्त हूँ, समय की बड़ी तंगी है ।

ओमप्रकाश—इसमें कुछ तो हम संसारी लोगों की रुचि भी कारण बनती है । जिस कार्य में हमारी रुचि या लगाव होता है हम उसके लिए व्यस्तता के बावजूद भी समय निकाल लेते हैं । जहाँ अरुचि होती है उस कार्य को अक्सर गौण कर दिया जाता है ।

मुनिवर—बस यही बात अभी मैं आपको कहने जा रहा था ।

ओमप्रकाश—मुनिवर ! कुछ जिज्ञासाएं लेकर आया हूँ, आपको कठिनाई न हो तो कुछ समय दिलाने की कृपा करावें ।

मुनिवर—हम तो चाहते हैं कि कोई जिज्ञासु मिले । फिर आप जैसे पढ़े-लिखे विद्वान व्यक्ति अगर कोई जिज्ञासा लेकर आते हैं तो हमारे लिए सन्तोष का विषय है । आप निस्संकोच अपनी जिज्ञासाओं को प्रस्तुत करें ।

ओमप्रकाश—मुनिवर ! आपको पता ही होगा कि मैं कुल परम्परा से तो ईसाई था पर आचार्य श्री तुलसी के सम्पर्क में आकर व उनसे जैन धर्म की व्याख्या सुनकर और संतों का निर्मल जीवन देखकर जैन धर्म का अनुयायी बना ।

मुनिवर—सुझे मालूम है ।

ओमप्रकाश—अब मैं अपने नाम के पीछे जैन शब्द लगाता हूँ ।

मुनिवर—ऐसा तो होना ही चाहिए ।

ओमप्रकाश—एक कठिनाई इन दिनों मेरे सामने आ रही है और वह है भरे मित्रों की ओर से ।

मुनिवर—कहिए, कौन-सी कठिनाई है ?

ओमप्रकाश—बात यह है, जब से मैं जैन बना हूँ, मित्र लोग मेरे पर ताना कसते हैं—वाह रे ओमप्रकाश ! कहाँ फँस गये, जैन धर्म बड़ा अवैज्ञानिक है, यह तो कायरों का धर्म है, भूखा रहने व जीतेजी मर जाने की बात सिखाने वाला धर्म है, इस तरह की बातें सुनता हूँ तो मन दुःख से भर जाता है । ऐसे पवित्र धर्म पर इस तरह के अभियोग सुनकर मेरा मन तिलमिला उठता है ! उनको मैं टोकता भी हूँ पर बिना युक्तिपूर्ण समाधान के उनकी बोलती बन्द नहीं कर पाता हूँ । मैं आपसे जैन धर्म के वैज्ञानिक स्वरूप को समझना चाहता हूँ ।

मुनिवर—दो तरीके हो सकते हैं समाधान के । पहला तो यह कि मैं अपने दंग से जैन धर्म की वैज्ञानिकता को प्रस्तुत करूँ और दूसरा यह कि आप अपने मित्रों के एक-एक आरोपों को मेरे सामने रखते जाएँ, मैं उन सबका निरसन करता जाऊँ । आप कौन-सा तरीका पसन्द करेंगे ।

ओमप्रकाश—मैं ही एक-एक बात आपके सामने रखता जाता हूँ, आप उनका समाधान करते जाएँ यही उत्तम रहेगा ।

मुनिवर—अच्छी बात है, शुरू करें चर्चा को ।

ओमप्रकाश—पहली बात जो मेरे मित्र लोग मुझे कहा करते हैं कि जैन धर्म निवृत्ति प्रधान है । यह छोड़ो, वह छोड़ो बस इसी पर ज्यादा बल देने वाला है, क्या यह सही है ?

मुनिवर—जैन धर्म न निवृत्ति प्रधान है और न प्रवृत्ति प्रधान । या फिर यों कहें, जैन धर्म निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनों का समन्वित रूप है । दुनिया में शायद ही कोई धर्म ऐसा होगा जो निवृत्ति की बात को गौण करके एकान्त प्रवृत्ति की बात कहता हो । असत् से निवृत्ति व सत् में प्रवृत्ति की बात को कोई भी धर्म व दर्शन अस्वीकार नहीं कर सकता । कोरी प्रवृत्ति जीवन के लिए घातक सिद्ध होती है । एक व्यक्ति दिन भर सोचता या बोलता ही रहे, दिन भर चलता या खाता ही रहे, यह सर्वथा असंभव है । वह मौन, त्रिश्राम व खाद्य संयम के माध्यम से ही सुख से लम्बे समय तक जी सकता है ।

अत्यधिक प्रवृत्ति असंयम को बढ़ावा देती है और उसका परिणाम है—तनाव, बीमारियाँ, शीघ्र बुढ़ापा और शक्तिक्षय ।

ओमप्रकाश—यह तो अध्यात्मशास्त्रीय विवेचन आपने किया, क्या वैज्ञानिक दृष्टि से भी अत्यधिक प्रवृत्ति घातक है ?

मुनिवर—अध्यात्म और विज्ञान की भाषा में बहुत अधिक समानता है। विज्ञान भी बताता है कि हर प्रवृत्ति के साथ व्यक्ति के शरीर में लैक्टिक एसिड बनता है। प्रवृत्ति ज्यादा होने के कारण लैक्टिक एसिड की मात्रा बहुत ज्यादा बढ़ जाती है। उसी का कारण है थकान, आलस्य, वैचेनी आदि। नींद में वह अम्ल वर्जित होता है तभी व्यक्ति जगने पर अपने में तरोताजगी एवं स्फूर्ति का अनुभव करता है। नींद के अभाव में उस एसिड की कमी नहीं होती, उसी के कारण व्यक्ति भारीपन व चिड़चिड़ेपन का अनुभव करता है और स्वयं को शक्तिहीन महसूस करने लगता है।

ओमप्रकाश—क्या यन्त्रों के द्वारा व्यक्ति की शक्तिहीनता को मापा जा सकता है ?

मुनिवर—हाँ, वैज्ञानिकों ने इस प्रकार के यन्त्रों का आविष्कार किया है जो प्रवृत्ति में संलग्न व्यक्ति से निकलने वाली ऊर्जा को संग्रहीत कर लेते हैं।

एक यन्त्र, जिसका नाम “पावलिता जेनरेटर” है। उस यन्त्र पर पांच मिनट एक टक देखते रहें तो देखने में खर्च होने वाली ऊर्जा को वह अपने में जड़ब कर लेता है फिर उस यन्त्र को उठाने पर उसमें संग्रहीत शक्ति का अनुभव होता है। प्रवृत्ति के साथ निवृत्ति का तालमेल व्यक्ति को स्वस्थता, शक्तिमत्ता प्रदान करता है।

अब आप छोड़ने की बात को भी समझ लें। जैन धर्म में कुछ चीजें पूर्णतः परित्याज्य हैं, जैसे—शराब, मांस, व्यभिचार, जुआ, शिकार आदि। कोई भी शिष्ट व्यक्ति इनको अपनाना उचित नहीं मानेगा। कुछ चीजों के लिए यथाशक्ति छोड़ने की बात जैन धर्म में कही गयी है, जैसे—हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य, परिग्रह आदि। हिंसा आदि के सर्वथा परित्याग की बात सिर्फ मुनियों के लिए है जो पूरी तरह साधना के मार्ग पर चलना चाहते हैं जिनके जीवन की अपेक्षाएं बहुत कम होती हैं। परिवार व समाज के बीच रहने वाला व्यक्ति पूर्णतः अहिंसक और सत्यवादी नहीं बन सकता, न पूर्ण ब्रह्मचारी व अकिञ्चन बनकर ही जी सकता है। हर व्यक्ति की अपनी अपेक्षाएं हैं, अपनी विवशताएं हैं। इन सबको ध्यान में रखकर भगवान महावीर

ने संसारी व्यक्तियों के लिये यथाशक्ति इन नियमों को स्वीकार करने की बात कही ।

असंयमजन्य विकृतियों से बचने के लिए भगवान ने संयम पर बल दिया । पर इसका अर्थ यह नहीं कि व्यक्ति अपनी इच्छाओं का दमन करे । संयम का तात्पर्य है—व्यक्ति स्वयं पर नियंत्रण रखे, निरंकुश न बन जाये, भोग-परिभोग की सीमा रखे । अतिभोग और निरंकुश मनोवृत्ति के दुष्परिणामों से हर व्यक्ति परिचित है । भोगवादी संस्कृतियां भी आज त्याग और संयम की ओर मोड़ ले रही है ।

ओमप्रकाश—युग की भाषा है—आवश्यकताओं को बढ़ाओ क्योंकि आवश्यकता आविष्कार की जननी है । जैन धर्म इसके विपरीत आवश्यकताओं को घटाने की बात कहता है, यह कहां तक संगत है ?

मुनिवर—जिनका लक्ष्य मात्र धन व सुख सुविधा के साधन अर्जित करना है वे “आवश्यकताओं को बढ़ाओ” इस सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं । किन्तु जीवन को सुख व शान्ति से जीना जिनका ध्येय है वे आवश्यकताओं को बढ़ाने की बात नहीं सोच सकते । सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है पर जब इच्छाएं अनियन्त्रित और असीमित हो जाती हैं तो उनकी पूर्ति करना कठिन हो जाता है । भगवान का वचन है—‘जहा लाहो तहा लोहो’ जैसे लाभ होता है वैसे ही लोभ बढ़ने लगता है । एक इच्छा पूरी हुई कि अगणित नई इच्छाएं जन्म लेने लगती हैं । असीम इच्छाओं की पूर्ति संग्रह और शोषण को बढ़ावा देती है । सामाजिक विषमता को भी पनपने का मौका मिलता है । वहां अर्थ अर्जन के साधनों की शुद्धि भी नहीं रह सकती । इसीलिए तो गृहस्थ को अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह का विवेक दिया गया । बहु आरम्भ और बहु परिग्रह अनेक दोषों को पैदा करते हैं । जैन धर्म ने निठल्ला बैठे रहने की बात नहीं कही किन्तु गलत उपायों से धन अर्जित करने का निषेध किया है । आवश्यकताएं सीमित होंगी तो गलत साधनों को काम में लेने की जरूरत ही नहीं रहेगी । न वहां शोषण, संग्रह, सामाजिक-विषमता आदि दोषों के लिए भी अवकाश रहेगा ।

ओमप्रकाश—कहते हैं कि जैन धर्म में व्रत उपवास व बड़ी-बड़ी तपस्याओं को बहुत महत्त्व दिया जाता है, क्या यह सच है ?

मुनिवर—यह बात अधूरी समझ के कारण कह दी जाती है । हकीकत यह है कि जैन धर्म में सर्वाधिक महत्त्व आत्म समाधि को दिया जाता है ।

आत्मा की उस परम भूमिका की प्राप्ति के लिए तप भी एक माध्यम है किन्तु तपस्या का अर्थ उपवास आदि कर लेना मात्र ही नहीं है।

ओमप्रकाश—तो क्या व्रत उपवास से भिन्न भी तपस्या का कोई स्वरूप जैन धर्म में है ?

मुनिवर—यही मैं बता रहा था। जैन धर्म एकांगी और रूढ़ नहीं है। उसमें तप के बारह प्रकार बताये गये हैं। उपवास तो बाह्य तप के रूप में माना गया है। ध्यान, सेवा, स्वाध्याय, विनय आदि को आभ्यन्तर तप बताया गया है। आभ्यन्तर तप हर सुसुक्ष्म आत्मा के लिये विशेष लाभदायक होते हैं। कहा तो यहाँ तक गया है कि एक व्यक्ति अगर सात लव यानी चार सवा चार मिनट का भी ध्यान कर ले तो उसको दो दिन के उपवास जितना लाभ हो जाता है। उपवास आदि से ज्यादा महत्त्व ध्यान आदि तप का है। व्रत उपवास तो आभ्यन्तर तप के पूरक हैं। पेट भरा होगा तो आलस्य बढ़ेगा, ध्यान व स्वाध्याय में भी स्थिरता नहीं आएगी। उपवास व तपस्या का भी जैन धर्म में स्थान है, किन्तु आत्म समाधि खण्डित न हो, मन में किसी प्रकार की रत्नानि पैदा न हो, इस बात का विवेक रखने की प्रेरणा भी तपस्या के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है। किसी प्रकार की जबरदस्ती या विवशता तपस्या में निषिद्ध है। जैन धर्म में हर वर्ष लाखों उपवास व ऊपर की तपस्याएँ होती हैं। अनेक छोटी-छोटी लड़कियाँ भी आठ-आठ दिन का तप करती हैं, किन्तु सब तपस्याएँ प्रसन्नतापूर्वक की जाती हैं।

ओमप्रकाश—उपवास आदि तपस्या से क्या विज्ञान भी सहमत है ?

मुनिवर—पूरी तरह सहमत है। स्वास्थ्य विज्ञान में उपवास को रोगमुक्त होने में सबल माध्यम बताया गया है। प्राकृत चिकित्सा में शरीर शुद्धि के लिए कई दिनों का उपवास कराया जाता है। आयुर्वेद में लंघन को परम औषध के रूप में स्वीकार किया गया है। महात्मा गांधी ने अपने जीवन में अनेक उपवास किये थे। अनेक समस्याओं से मुक्ति के लिये भी उन्होंने उपवास के सफल प्रयोग किये। पाश्चात्य देशों में कई स्थानों पर फास्टिंग अर्थात् उपवास को रोग निवारण का सर्वोत्तम उपाय माना गया है।

ओमप्रकाश—मुनिवर ! सामान्य आदमी सोचता है कि खाने को उसके पास पर्याप्त है फिर क्यों भूखा रहा जाये ? क्या भूखा रहने से भी अधिक उपवास का लाभ है ?

सुनिवर—पहली बात तो है उपवास किसी बाध्यता से नहीं किया जाता। व्यक्ति स्वेच्छा से अपनी आत्म उज्ज्वलता के लिये उपवास करता है। दूसरी बात भूखे रहना उपवास का बाह्य रूप है। इसके द्वारा होने वाले आन्तरिक लाभों को लोग नजरन्दाज कर देते हैं। मन की चंचलता को मिटाने का, अनेक शारीरिक विजातीय तत्त्वों के निवारण व आरोग्यवृद्धि का यह अमोघ साधन है। किसी ने ठीक कहा है कि जो व्यक्ति १५ दिन में कम से कम एक उपवास कर लेता है वह पेट की अनेक बीमारियों से बच जाता है। इन लाभों को जान लेने के बाद उपवास के बारे में निश्चित ही व्यक्ति की भ्रान्तियाँ मिट जायेगी।

ओमप्रकाश—व्रत उपवास की बात समझ में आ गयी पर आजीवन अनशन की बात तो मेरे मित्रों को बड़ी खटकती है। वे इसे आत्म हत्या का रूप बतलाकर जैन धर्म पर व्यंग्य कसते हैं।

सुनिवर—पहली बात तो यह समझ लें कि आत्म हत्या को जैन धर्म में घोर अपराध कहा गया है। ऐसे में क्या वह स्वयं ही आत्म हत्या जैसी कोई पद्धति को मान्यता दे सकता है? जैन धर्म अनशन की इजाजत देता है पर किसको और किस परिस्थिति में यह अपेक्षा भी समझनी जरूरी है। अनशन का अधिकारी वही व्यक्ति हो सकता है जिसे जीवन में कोई लाभ व विकास होता नजर न आये, पदार्थों के प्रति जिसकी कोई रुचि न रही हो, मृत्यु का समय जिसे नजदीक जान पड़ता हो। इस प्रकार की परिस्थितियों में बिना किसी आकांक्षा के व्यक्ति द्वारा अनशन स्वीकार करना जैन धर्म में विहित माना गया है। अनशन पूर्वक मृत्यु को यहाँ महोत्सव बताया गया है। कोई वीर व्यक्ति ही इसे स्वीकार करता है। एक बार संत विनोबा ने कहा था—जीने की कला सब धर्म सिखाते हैं पर मरने की कला सिर्फ जैन धर्म ही बताता है। उन्होंने एक बार अपनी भावना रखी थी कि मैं भी जैन धर्म की पद्धति के अनुसार मरना पसन्द करता हूँ। हमने देखा, अन्तिम समय में उन्होंने अपनी मन पसन्द मृत्यु का वरण किया और अनशनपूर्वक देह का उत्सर्ग किया। इसलिये अनशन जैसे वीरतापूर्ण कार्य के लिए आत्म हत्या का आरोप लगाना नासमझी की ही बात कही जा सकती है।

ओमप्रकाश—लेकिन ऊपरी तौर पर अनशन और आत्म हत्या दोनों एक समान लगते हैं ?

मुनिवर—पीलिया के बीमार को सर्वत्र वस्तुएँ पीली ही नजर आती हैं, यह उसकी नजर का दोष है न कि वस्तु का। वैसे ही जो मिथ्या अभिनिवेश से रुग्ण है उनको दोनों एक समान लगे तो यह उनके सोच की ही कमी है। आत्म हत्या में भावुकता, जीवन से पलायन, निराशा व आक्रोश जैसी दूषित भावनाओं की प्रधानता रहती है, जबकि अनशन में गहरी सूझबूझ, पवित्र भावना और देह—पार्थक्य का बोध प्रमुखतया रहता है। तटस्थ दृष्टि से सोचने वालों के लिए अनशन और आत्म हत्या का फर्क सहज गम्य है।

ओमप्रकाश—मेरे एक मित्र कह रहे थे कि जैन धर्म ने रात्रि भोजन को वर्जनीय माना है, यह कहां तक व्यावहारिक है ?

मुनिवर—यह सिर्फ मुनिजनों के लिए अनिवार्यतया वर्जनीय है। सामान्य व्यक्ति के लिए ऐसा कोई नियम नहीं है। यह अवश्य है कि जैन धर्म रात्रि भोजन को अच्छा नहीं मानता। अगर आदमी इससे बच सके तो उनके लिए हितकर ही होगा।

ओमप्रकाश—मैं यही जानना चाहता था कि रात्रि भोजन निषेध पर बल देने के पीछे क्या कारण है ?

मुनिवर—इसके पीछे आध्यात्मिक दृष्टिकोण तो यह है कि रात के समय भोजन करने से अनेक जीव जंतुओं का भक्षण होने की संभावना बनी रहती है। रात्रि भोजन अनेक बीमारियों को न्योता देता है। पकाने के बर्तन में अगर कोई जहरीला जंतु हो तो मृत्यु तक की घटनायें भी घटित हो जाती हैं। कुछ वर्षों पूर्व की बात है। रात के समय एक बहिन भोजन तैयार कर रही थी। कढ़ी जिस बर्तन में पका रही थी, उसमें मन्द प्रकाश के कारण पता नहीं चला और एक छिपकली गिर गई। वह कढ़ी जिन्होंने खाई, सुबह वे मृत मिले छिपकली गिरनेका भी पता नहीं चलता है तो सूक्ष्म जीवों की तो बात ही क्या की जाये। मुख्यतया जीव हिंसा से बचने के लिये जैन धर्म रात्रि भोजन को वर्जनीय मानता है।

ओमप्रकाश—क्या वैज्ञानिक दृष्टि से भी रात्रि भोजन वर्जनीय है ?

मुनिवर—हाँ, वैज्ञानिक दृष्टि से भी रात्रि भोजन परित्याज्य है। वैज्ञानिकों का मानना है पाचन शक्ति के साथ सूर्य के प्रकाश का गहरा सम्बन्ध है। सूर्य के प्रकाश में भोजन करने से विटामिन डी. हमको पर्याप्त रूप से प्राप्त होता है जो कि शरीर के लिए जरूरी है। वह सूर्यास्त के बाद उपलब्ध नहीं होता। हमारा विद्यत् शरीर सूर्य के प्रकाश के

अभाव में निष्क्रिय बन जाता है, फलस्वरूप रात में किया हुआ भोजन शीघ्र हजम नहीं होता व कई प्रकार की बीमारियों का कारण भी बनता है। शहरी लोगों की आम बीमारी पेट की गैस का कारण यह रात्रि भोजन ही है। विज्ञान यह भी मानता है कि सूर्य के आतप में बहुत सारे क्षुद्र कीटाणु निष्क्रिय हो जाते हैं जो कि अन्धकार में सक्रिय रहते हैं। वे रात में भोजन करते समय हमारे पेट में घुस जाते हैं और शरीर में उत्पात मचाते हैं। देखा गया है कि वायु का या अन्य किसी प्रकार का दर्द रात के समय ही ज्यादा सताता है, दिन में उतना नहीं।

ओमप्रकाश—बहुत अच्छा समझाया सुनिवर ! एक आरोप जो मेरे मित्रों द्वारा जैन धर्म पर लगाया जाता है वह है अहिंसा के सिद्धांत को लेकर। वे अक्सर अहिंसा की मखौल उड़ाते रहते हैं और कहते हैं अहिंसा व्यक्ति को कायर और दब्यु बनाती है।

सुनिवर—अहिंसा का पथ वीरों का पथ है। कमजोर और कायर व्यक्ति हिंसा का सहारा लिया करते हैं। एक व्यक्ति गाली निकालता है तो सामान्य व्यक्ति गाली का उत्तर गाली से देता है किन्तु अहिंसक व्यक्ति उसके बराबर गाली नहीं देता, मौन रखता है या अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार से उसे परास्त कर देता है। आपही निर्णय करें प्रतिकूल परिस्थिति में गाली देना सरल है या क्षमा करना।

ओमप्रकाश—यों तो गाली देना ही सरल है, क्षमा रखना बड़ा कठिन होता है। पर दुनिया तो मौन रखने वाले को कमजोर मानती है।

सुनिवर—दुनिया तो ऊपरी व्यवहार को देखती है किन्तु हकीकत को झुठलाया नहीं जा सकता। “मार सके मारै नहीं तंको नाम मरद।” एक अहिंसक क्षमा करता है, इसका अर्थ यह नहीं कि वह बोलना नहीं जानता या उसमें ईंट का जबाब पत्थर से देने की ताकत नहीं है। वास्तव में वह गाली देने या पत्थर उठाने को गलत मानता है। वह जानता है कि खून के दाग को खून से साफ नहीं किया जा सकता। हिंसा तो आग लगाना जानती है, उसे बुझाने का काम अहिंसा के द्वारा ही सम्भव है। इसी आस्था के कारण अहिंसक व्यक्ति समर्थ होते हुए भी हिंसात्मक गतिविधियों में अहिंसा का पथ नहीं छोड़ता। महावीर, गौतम, ईसा आदि महापुरुषों ने अहिंसात्मक तरीके से ही अनेक विरोधी व्यक्तियों को परास्त किया था। मानव ही नहीं दैत्य व पिशाच भी उनकी वीर्यवती अहिंसा के आगे झुक जाते थे। इस

सदी में महात्मा गांधी ने राजनीति में अहिंसा का प्रयोग किया। उन्होंने एक बार कहा था “अहिंसा द्वारा अगर पचास वर्ष बाद भी देश को आजादी मिले तो मुझे मंजूर है, हिंसा के द्वारा आज भी आजादी मिले तो मुझे नहीं चाहिए। एक दिन इसी अहिंसा के द्वारा उन्होंने अंग्रेजों के चंगुल से देश को मुक्त कराया था। क्या वे सब महापुरुष कायर और दबबू थे।

ओमप्रकाश—पर यह भी सच है कि सब भगवान् महावीर, गौतम, ईसा और महात्मा गांधी नहीं बन सकते। क्या आम आदमी अहिंसा का रास्ता स्वीकार कर लोगों की नजर में कायर नहीं कहलायेगा? साथ ही क्या अहिंसा के द्वारा वह विरोध का प्रतिकार कर सकेगा?

मुनिवर—पूरी निष्ठा से व्यक्ति अगर अहिंसा को स्वीकार कर ले तो यह अभियोग स्वतः ही मिथ्या सिद्ध हो जाये। अगर वह लेबल अहिंसक का लगाता है और सहारा हिंसा का लेता है तब तो उसकी बदनामी को कौन रोक सकता है। कायर वह व्यक्ति होता है जो विरोधों से घबराकर भग जाये। अहिंसक व्यक्ति पलायनवादी नहीं होता। वह विरोधों में भी मुस्कुराता रहता है, क्षमा और प्रेम के द्वारा विरोधी को भी वह अपना बना लेता है।

एक बात और ध्यान में रखने की है कि अहिंसा की नीति को स्वीकार करने का अर्थ यह नहीं है कि व्यक्ति हिंसा से पूरी तरह मुक्त हो जाता है। वह संसार में जीता है, पारिवारिक-सामाजिक जिम्मेदारियों को लेकर चलता है, परिग्रह से जुड़ा हुआ है इसलिए हिंसा उसके साथ अनिवार्यतया जुड़ी होगी ही। लेकिन उसका विश्वास समता, प्रेम व मैत्री में होगा। वैर, घृणा के द्वारा वह विरोध को और अधिक प्रज्वलित करना नहीं चाहेगा।

ओमप्रकाश—क्या अहिंसात्मक तरीके से व्यक्ति को बदला जा सकता है?

मुनिवर—निस्संदेह बदला जा सकता है। तेरापंथ धर्मसंघ के अष्टमाचार्य श्री कालूगणी के जीवन का मार्मिक प्रसंग है। वि० सं० १६७६ में उनका चातुर्मास बीकानेर में था। विरोध का वातावरण प्रबल था। विरोधी लोग प्रदर्शन और छापाबाजी तक ही सीमित नहीं थे, इससे भी आगे वे कालूगणी की हत्या करने की योजना बना रहे थे। उन्होंने एक व्यक्ति को प्रलोभन देकर इसके लिये तैयार कर लिया। कालूगणी स्थंडिल भूमि के लिये जहां जाते उस स्थान पर वह व्यक्ति हाथ में पिस्तौल लेकर खिप गया। जैसे ही कालूगणी वहाँ पधारे

उनको एकाकी देखकर वह दैत्यरूप भरी पिस्तौल लिये सम्मुख आया। काल्मगणी की अभयदायिनी व अमृतरसवर्षिणी सुखमुद्रा को देखकर उसका अन्तःकरण पूरी तरह बदल गया। वह उनके पावन चरणों में गिर पड़ा और अपने गलत इरादे पर पश्चात्ताप करने लगा। यह उस महापुरुष की अहिंसा व करुणा का ही प्रभाव था।

चम्बल की घाटी में दुर्दान्त डाकुओं का हृदय परिवर्तन व समर्पण अहिंसा की शक्ति का एक सुनहरा पृष्ठ है। सरकार जिनको बल प्रयोग के द्वारा नहीं पकड़ सकी, लोकनायक जयप्रकाश नारायण के अहिंसात्मक प्रयत्नों से वे सैकड़ों डाकु सदा के लिये बदल गये व उनके आगे समर्पित हो गये, महावीर, बुद्ध, ईसा आदि महापुरुषों का जीवन तो ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है।

ओमप्रकाश—क्या विश्व चेतना को भी अहिंसा प्रभावित कर सकी है ?

सुनिवर—कौन ऐसा राष्ट्र है जो हिंसा, अशान्ति व युद्ध को पसन्द करता है। पूरा विश्व शान्ति चाहता है। इसी में हर राष्ट्र की सुख समृद्धि सुरक्षित है, युद्ध की एक चिनगारी उठते ही चारों ओर से उसे बुझाने का प्रयास शुरू हो जाता है। क्या यह अहिंसा का प्रभाव नहीं है।

आज तो विश्व की सर्वोच्च शक्तियां जिनके पास सामरिक अस्त्र शस्त्रों का विशाल जखीरा पड़ा है, वे अमेरिका और रूस भी अहिंसा में अपना विश्वास प्रकट कर रहे हैं। कुछ ही समय पूर्व दोनों महाशक्तियों में जो समझौता हुआ, उसके अनुसार मध्यम दूरी तक मार करने वाले प्रक्षेपास्त्रों का कोई भी महाशक्ति उपयोग नहीं करेगी व उन हथियारों को क्रमशः समाप्त कर देगी, यह अहिंसा निष्ठा का प्रबल प्रमाण है। २७ नवम्बर १९८७ को भारत के प्रधानमंत्री राजीव गांधी और सोवियत नेता गोर्बाच्योव द्वारा जो दस सूज़ी 'दिल्ली घोषणा पत्र' पर हस्ताक्षर किये गये व अहिंसा, सद्भाव, शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व की नीति को स्वीकार किया गया, यह भी अहिंसा की प्रतिष्ठा का बेजोड़ उदाहरण है।

भगवान महावीर का एक वाक्य है—“अरिथ सत्थं परेण परं, णरिथ असत्थं परेण परं” शस्त्रों की परम्परा आगे से आगे चलती रहती है किन्तु अशस्त्र की स्थिति में, अहिंसा को स्वीकार कर लेने पर शस्त्रों की कोई परम्परा नहीं चलती। इस वाक्य की महत्ता आज चरितार्थ हो रही है।

मानव मात्र में यह विश्वास जगा है कि हिंसा के द्वारा युद्ध की लपटें कभी शान्त नहीं हो सकती। हिंसा प्रतिहिंसा को जन्म देती है। शान्ति का स्थायी समाधान कोई है तो अहिंसा ही है। हर संघर्ष के प्रतिकार का सर्वोत्तम साधन भी यही है। जरूरत है अहिंसात्मक नीति पर विश्वास पैदा करने की और जीवन व्यवहार में उसे उतारने की।

ओमप्रकाश— सुनिवर ! कई बार ऐसी भी परिस्थितियां आती है कि समाज, जाति व देश के लिए व्यक्ति को युद्ध भी करना पड़ता है। क्या एक अहिंसक उस समय भी प्रेम व समता की ही रटन लगाता रहेगा ? क्या इससे अहिंसा बदनाम नहीं होगी ?

सुनिवर—अहिंसक व्यक्ति पर जैसे अपने परिवार का दायित्व है वैसे ही देश व जाति का भी दायित्व उसके कंधों पर है। जैसे परिवार की सुरक्षा वैसे ही देश की सुरक्षा करना उसका कर्तव्य होता है। अतः वह सर्वथा हिंसा से मुक्त नहीं हो सकता। युद्ध भी एक अनिवार्य हिंसा है। अहिंसा में विश्वास रखते हुए भी देश की रक्षा के लिए उसे हिंसा को स्वीकार करना पड़ता है। जैन धर्म के अनुयायी अहिंसानिष्ठ अनेक व्यक्ति ऐसे हुये हैं जिन्होंने सेनापति पद पर काम किया और युद्ध में अपना कौशल दिखाया, विजयश्री का भी वरण किया। अहिंसा व्यक्ति को कभी कर्तव्य से विमुख नहीं बनाती।

ओमप्रकाश—मेरे मित्र गण कहते हैं—इस अहिंसा के कारण ही तो भारत सदियों तक गुलाम रहा। यह कहां तक ठीक है ?

सुनिराज—यह तो इतिहास की अनभिज्ञता और दृष्टि का भ्रम ही है। ऐसा कोई युग नहीं रहा जब पूरी तरह अहिंसा का साम्राज्य रहा हो, हिंसा का अस्तित्व समाप्त हो गया हो। आजादी से पहले भी सैंकड़ों, हजारों छोटे-बड़े युद्ध भारत की धरती पर होते रहे हैं। देश को मुक्त करने के लिये हिंसात्मक प्रयत्न हुए पर सफलता प्राप्त नहीं हुई। अन्ततोगत्वा देश की आजादी का श्रेय महात्मा गांधी को मिला। उनकी अहिंसात्मक नीति सफल हुई। इस दृष्टि से देशवासियों की अहिंसा के प्रति चिरकृतज्ञ रहना चाहिए।

अहिंसा पर आरोप लगाने वालों को पता होना चाहिये कि भारत की गुलामी के पीछे छोटी-छोटी रियासतों में आपसी फूट, जातिगत विरोध, युद्ध नीति के ज्ञान का अभाव आदि कारण प्रमुख रूप से रहे हैं। हिंसा के ये विष बीज भारत में सदा पनपते रहे हैं। इसी के चलते देश को सदियों तक बन्धनों में जकड़े रहना पड़ा। अतः मिथ्या

अभिनिवेश को छोड़कर वस्तु स्थिति को स्वीकार करना चाहिए व अहिंसा को देश की गुलामी से नहीं जोड़ना चाहिये ।

ओमप्रकाश—क्या अहिंसा के द्वारा हर समस्या का समाधान सम्भव है ?

मुनिवर—संसार को अगर चलना है तो हिंसा और अहिंसा दोनों की सत्ता को स्वीकार करके ही चलना होगा । जिस दिन मानव समाज पूरा हिंसक बन जायेगा उस दिन संसार नहीं रहेगा, वह श्मशान बन जायेगा । सब अहिंसक बन जायेंगे तो भी वह संसार नहीं, मुक्तिधाम बन जायेगा ।

संसार में समस्याएँ अनेक प्रकार की हैं । अहिंसा के द्वारा कोई रीटी की समस्या या अर्थ की समस्या का हल खोजना चाहे तो वह कैसे संभव होगा, उसके लिये तो उद्यम करना पड़ेगा । स्पष्ट है कि वहाँ अहिंसा कारगर नहीं हो सकती । पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय कई अपेक्षाएँ ऐसी हैं जिनमें केवल अहिंसा से काम नहीं चल सकता । पर जैन धर्म कहता है आवश्यक हिंसा को तुम हिंसा समझो, अहिंसा मत समझो । दृष्टि को शुद्ध रखो ।

बहुत सारी समस्याएँ ऐसी भी हैं जिनका अहिंसा से समाधान हो सकता है । जैसे—मिलावट, शोषण, बढ़ते हुए अपराध, दहेज, बलात्कार आदि । अहिंसक व्यक्ति का हृदय करुणाशील होगा । वह दूसरों का दिल दुखे ऐसा कार्य नहीं कर सकता, चीजों में मिलावट नहीं कर सकता, स्वार्थपूर्ति के लिए गरीबों का शोषण नहीं कर सकता, दहेज की मांग नहीं कर सकता, अवलाओं पर दुराचार नहीं कर सकता । अहिंसक समाज की समस्याएँ बहुत कम होती हैं । अहिंसा की प्रतिष्ठा जिस दिन जनजीवन में हो जायेगी वह दिन मानव जाति के लिये मंगलमय होगा, धरती पर स्वर्ग की छटा नजर आने लगेगी ।

ओमप्रकाश—मुनिवर ! पर्यावरण-प्रदूषण आज की अहं समस्या है, क्या इसका भी समाधान अहिंसा के पास है ?

मुनिवर—अहिंसा का सिद्धान्त समस्त प्राणियों के लिए हितकारी है । महावीर की अहिंसा मनुष्य, पशु व पक्षियों तक ही सीमित नहीं है । पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा व वनस्पति का शोषण भी उसको अमान्य है । शायद इतनी सूक्ष्मता से अहिंसा का विश्लेषण किसी भी महापुरुष ने अब तक नहीं किया होगा । पृथ्वी आदि तत्वों का शोषण ही पर्यावरण प्रदूषण का मुख्य कारण बनता है ।

आज खनिज पदार्थों की प्राप्ति के लिए धरती का अतिरिक्त मात्रा में

दोहन हो रहा है। शहर ऊपर खड़े हैं और नीचे मीलों तक गहरे खड्डे होते जा रहे हैं। कहीं-कहीं तो शहरों को रसातल में चले जाने का खतरा उत्पन्न हो गया है। इसी कारण कहीं-कहीं तो अन्वेषण के लिए होने वाली खुदाई को भी बन्द करना पड़ा है।

जल जो कि मनुष्य के जीवन का आधार है, उसका अस्तित्व भी आज खतरे में पड़ रहा है। अनेक नदियों का पानी अब पीने लायक नहीं रहा है। कारखानों से निकलने वाला, विभिन्न जहरीले रसायनों से युक्त पानी नदी व तालाबों में मिलकर सारे पानी को दूषित कर देता है। फलस्वरूप पानी में रहने वाले जीवों की अपार क्षति होती है। अनेक शहरों के मलमूत्र के नाले भी नदियों में गिरकर उसको अशुद्ध बनाते हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार दिल्ली में यमुना नदी में दस करोड़ लीटर मल गिरता है, उसमें दो करोड़ लीटर कचरा फैक्ट्रियों द्वारा छोड़ा जाता है। एक बार संसद सदस्य मुरलीमनोहर जोशी ने कहा था “दिल्ली के पानी में इतना अमोनिया हो गया है कि वह पेशाब की तरह अपेय हो गया है।” मनुष्य अगर जल का संयम करना सीख लेता या उसे दूषित नहीं करता तो शायद जल प्रदूषण की समस्या विकराल रूप नहीं लेती।

अग्नि और वायु का असंयम भी प्रदूषण का कारण बनता है। आज कारखानों की भट्टियों में प्रतिदिन कई लाख टन इन्धन और कोयला काम में आता है। उससे निकलने वाला धुआँ हवा को विषाक्त बना देता है। शहरों में कई दफा साँस लेते समय घुटन महसूस होने लगती है और नाक में काले काले धूल के कण जम जाते हैं। कहते हैं कि वर्ष भर में एक व्यक्ति को जितनी ऑक्सीजन श्वसन प्रक्रिया के लिए चाहिए उतनी ऑक्सीजन एक टन कोयला जलने से नष्ट हो जाती है। वैज्ञानिकों ने कहा है—उद्योग धन्धों व अन्य कार्यों में जलाने के लिए कोयला इसी मात्रा में अगर काम में आता रहा और प्रदूषण को रोकने का कोई उपाय नहीं हुआ तो दस वर्ष बाद भारत में तेजाबी वर्षा की घटनाएँ भी घटित हो सकती हैं। धरती पर चलने वाले वाहन भी अपार मात्रा में धुआँ छोड़ते हैं जो कि ऑक्सीजन के साथ मिलकर हमारे श्वास में चला जाता है और अस्वास्थ्य का कारण बनता है। यदि यही स्थिति रही तो धरती पर आने वाले सौ वर्षों में कार्बन डाइ ऑक्साइड की मात्रा दुगुनी हो जायेगी। शुद्ध श्वास

लेने के लिए आदमी को नगर छोड़कर गांवों में रहने के लिए बाध्य होना पड़ेगा।

वायुमण्डल के बढ़ते हुए प्रदूषण का एक परिणाम और भी आया है और वह है आकाश में स्थित ओजोन परत को खतरा उत्पन्न होना। ऑक्सीजन का स्रोत यह ओजोन परत ही है, साथ ही सूर्य के प्रकाश से पराबैंगनी विकिरणों को भी रोकने में यह परत छुरती का काम करती है। सूर्य के विकिरण अगर सीधे धरती पर आने लगें तो उनको सह पाना कठिन होता है और अनेक प्रकार की बीमारियों से आदमी का जीवन संकट में पड़ सकता है। विश्व के वैज्ञानिक ओजोन परत के स्थान-स्थान पर टूटने से बड़े चिन्तित हैं। उनका मानना है कि यह परत अगर बराबर टूटती रही तो एक दिन ऐसा भी आ सकता है कि बिना किसी अणुयुद्ध के ही मानव जाति का अस्तित्व सदा के लिए समाप्त हो जाये।

ओजोन परत की क्षति को रोकने के लिए कुछ समय पूर्व मांट्रियल (कनाडा) में सम्पन्न एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में एक निर्णय लिया गया कि क्लोरोफ्लोअरो कार्बनों के प्रयोग में ५० प्रतिशत कटौती की जाये, धुआं व प्रदूषण फैलाने वाले संयंत्रों को नियन्त्रित किया जाये। अनेक राष्ट्रों ने इस निर्णय को स्वीकार भी किया।

ओमप्रकाश—तो क्या वायु प्रदूषण को रोकने के लिए जैन धर्म बड़े कारखानों व फैक्ट्रियों के पक्ष में नहीं है ?

मुनिवर—कारखानों व फैक्ट्रियां किसी भी देश की समृद्धि के अंग होते हैं। इनका निषेध शायद देशहित की दृष्टि से अव्यावहारिक हो सकता है। ऐसा विकल्प अवश्य खोजने की जरूरत है जिससे फैक्ट्रियां होने पर भी प्रदूषण नियन्त्रण में रहे। कुछ देशों में इस प्रकार के संयंत्रों का विकास हो गया है जिनको कारखानों में लगा देने से प्रदूषण नहीं फैलता। भारत में ऐसी व्यवस्था कहीं कहीं दिखाई देती है पर अभी पूरी तरह विकसित नहीं हुई जिससे प्रदूषण पर रोक लग सके। लघु उद्योगों का विस्तार भी इसका एक विकल्प हो सकता है। महात्मा गांधी लघु उद्योगों को पसन्द करते थे। वे लघु उद्योगों को उपयोगी बताते हुए कहा करते थे “लघु उद्योगों से श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ती है और बेरोजगारी की समस्या का भी समाधान होता है।” बड़े उद्योगों के कारण सौ व्यक्तियों का काम पांच दस व्यक्तियों में सिमट जाता है और शेष व्यक्ति बेकार हो जाते हैं। बेकार आदमी स्वयं में एक

समस्या है और अनेक नई समस्याओं का जनक है। कहावत है, “खाली दिमाग शैतान का घर।” निठल्ले आदमी को शैतानी ही सूझती है। इसलिए लघु उद्योगों को बढावा देना आम आदमी को आत्म निर्भर बनाना है।

कहते हैं, ‘दत्सून’ नाम की कम्पनी में सिर्फ १८ व्यक्ति ही प्रतिदिन दो हजार कारों का निर्माण कर लेते हैं। कुछ फ़ैक्ट्रियां ऐसी भी विकसित हुई हैं जहां रोबोट और कम्प्यूटर ही सैंकड़ों व्यक्तियों का काम कर लेते हैं। बड़े उद्योग धन्धों के विस्तार की बात न केवल प्रदूषण की समस्या की दृष्टि से, अन्य दृष्टियों से भी विचारणीय हैं।

ओमप्रकाश—पेड़ पौधों की आजकल अन्धा धुन्ध कटाई हो रही है यह भी तो पर्यावरण प्रदूषण का एक महत्त्वपूर्ण कारण है, क्या जैन दर्शन इससे सहमत है ?

मुनिवर—जैन दर्शन में पेड़ पौधों की कटाई पर पूर्णतः प्रतिबन्ध है। भगवान महावीर ने वनस्पति में भी जीवन बताया है। इस तथ्य को वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार कर लिया है। सबसे पहले डा० जगदीश चन्द्र वसु ने कहा था कि पेड़-पौधों में भी प्राण है। अमेरिकन वैज्ञानिक क्लीन वेकस्टर ने प्रयोगों से सिद्ध कर दिया कि पौधों में भी भावना होती है। वे अपने मित्रों व शत्रुओं को पहचानते हैं।

इन वर्षों में वैज्ञानिकों द्वारा पेड़ पौधों पर ऐसे भी प्रयोग किये गये जिनमें कम्प्यूटर के माध्यम से जाना गया कि वे प्यास लगने पर सूचना देते हैं कि हमको पानी चाहिए, पतझड़ का मौसम आने पर वे बताते हैं कि अब पतझड़ का समय आ गया है आदि। वनस्पति में जीवत्व अब असंदिग्ध रूप से स्वीकार किया जा रहा है।

जैन धर्म में पेड़-पौधों की कटाई तो वर्जनीय है ही, हरी घास पर चलना भी अहिंसा की दृष्टि से निषिद्ध है। इकोलोजी के विद्यार्थी जानते हैं कि पेड़-पौधे मनुष्य जीवन की रक्षा में कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। ये वृक्ष वायुमण्डल में फैली कार्बन डाई ऑक्साइड जैसी दूषित गैस को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं व मनुष्य के लिए प्राणतत्त्व ऑक्सीजन को छोड़ते हैं। आज अन्धाधुन्ध पेड़ों की कटाई होने से शुद्ध प्राणवायु का अभाव बढ़ रहा है। वर्षा भी वृक्ष बहुल घरती पर अधिक होती है। जंगलों के कट जाने से बरसात में कमी आई है। फलस्वरूप बार-बार अकाल पड़ते हैं। पहाड़ों ने जंगे होने से वहां जल रुकने की क्षमता नहीं रही, इसी कारण बाढ़ का खतरा

बराबर बना रहता है। उपजाऊ मिट्टी पेड़ न होने से बहकर समुद्र में चली जाती है। वृक्षों के अभाव में आंधियों के कारण मिट्टी उड़कर धरती को मरुस्थल बना देती है। जंगलों को अगर नहीं काटा जाता तो अब तक ८० करोड़ हेक्टेयर भूमि को रेगिस्तान होने से बचाया जा सकता था।

कलकत्ता विश्व विद्यालय के कृषि वैज्ञानिक डा० तारकमोहनदास के कथनानुसार कोई-कोई वृक्ष अपने जीवन से कई लाख रुपयों का लाभ प्रदान कर देता है। किन्तु मनुष्य इन्धन के लिए या अन्य स्वार्थ वश बहुमूल्य वन सम्पदा का नाश कर रहा है। उसका दुष्परिणाम भी उसे ही भोगना पड़ रहा है। वनस्पति का संयम अहिंसा का अंग तो है ही, मनुष्य जीवन की सुरक्षा के लिए भी जरूरी है।

प्रदूषण का एक रूप और भी है, वह है—ध्वनि प्रदूषण। हमारे कान अस्सी डेसिबल तक की ध्वनि बिना कष्ट के सुन सकते हैं, इससे तेज ध्वनि कानों के लिए असह्य होती है। हमारे चारों ओर न जाने कितनी-कितनी कर्ण कर्कश ध्वनियां गूंजती रहती हैं। कहीं मील के भोम्पू की आवाज, कहीं वाहनों की खड़खड़ाहट, कहीं मशीनों की घड़घड़ाहट, कहीं रेडियो व रेकार्ड पर आने वाले रॉक एण्ड रोल जैसा तीव्र संगीत, कहीं रात भर चलने वाले कीर्तन आदमी की शांति को भंग कर रहे हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि बढ़ते हुए ध्वनि प्रदूषण पर अगर नियन्त्रण नहीं किया गया तो एक दिन मानव जाति बहरी भी हो सकती है। तेज ध्वनि का प्रभाव केवल कानों पर ही नहीं पाचन तन्त्र, मस्तिष्क तथा स्नायु संस्थान पर भी पड़ता है।

भगवान महावीर ने हवा में भी सूक्ष्म जीवों के अस्तित्व को स्वीकार किया है। ताली बजाना, दूसरों को कष्ट भी वैसी कर्ण कटुक भाषा बोलना जैन धर्म में निषिद्ध है।

ओमप्रकाश—ध्वनि प्रदूषण को किस प्रकार रोका जा सकता ?

सुनिवर—महावीर की अहिंसा को अगर अपना लिया जाता तो ध्वनि प्रदूषण की समस्या ही उत्पन्न नहीं होती। किन्तु यह भी निश्चित है उस भूमिका तक पहुँचना राष्ट्र व समाज के लिए अशक्य है और उसकी बात करना भी अव्यावहारिक होगा। विज्ञान द्वारा उत्पन्न की हुई इस समस्या का समाधान विज्ञान ही खोज सकता है। आज कुछ विकसित देशों में इस तरह की गाड़ियां आविष्कृत हो गई हैं कि सैकड़ों गाड़ियां सड़क पर चलती हैं किन्तु कोई आवाज नहीं होती।

रात-रात भर चलने वाले तेज गीतों पर, जो लोगों की नींद हराम करते हैं, जिनको कोई सुनना भी नहीं चाहता, प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है।

भगवान महावीर द्वारा निरूपित अहिंसा की सूक्ष्म व्याख्या को अगर संसार स्वीकार करले और प्रकृति के साथ किसी प्रकार की छेड़-छाड़ न करे तो प्रदूषण की समस्या आसानी से समाहित हो सकती है। किन्तु भगवान जानते थे इसका सम्पूर्ण पालन आम आदमी के लिए अशक्य है। उन्होंने मध्यम मार्ग का प्ररूपण किया। गृहस्थ व्यक्ति को संकल्पजा और विरोधजा हिंसा से बचने का मार्ग उन्होंने बताया। अनिवार्य हिंसा करते समय भी व्यक्ति जितना बच सके, उतना उसे बचने का प्रयास करना चाहिए। यह भगवान महावीर का अहिंसा दर्शन है।

ओमप्रकाश—अहिंसा को जन जीवन में उपयोगिता और जागतिक समस्याओं के निवारण में इसके योगदान के विषय में सुनकर मेरा मन प्रसन्न है अब आप जैन धर्म के कुछ और सिद्धान्तों की भी चर्चा करें जिनका विज्ञान के साथ तालमेल है? इस युग में लोग उन सिद्धान्तों को पसन्द करते हैं जिनकी विज्ञान के साथ संगति होती है।

मुनिवर—असल में धर्म और विज्ञान परस्पर विरोधी नहीं हैं, बल्कि कहना चाहिए वे एक दूसरे के पूरक हैं। सापेक्षवाद सिद्धान्त के प्रणेता महान वैज्ञानिक आल्बर्ट आइन्स-टीम का यह कथन बहुत सत्य है कि धर्म के बिना विज्ञान पंगु है और विज्ञान के बिना धर्म अन्धा है। भगवान महावीर परम वैज्ञानिक थे। उन्होंने अपने परमज्ञान के द्वारा जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, उनमें अनेक सिद्धान्त आज विज्ञान द्वारा सम्मत हैं।

जैन दर्शन का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है—अनेकान्त। इसका अर्थ है वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। वे अनन्त धर्म एक दूसरे से निरपेक्ष नहीं हैं, सापेक्ष हैं। विविध अपेक्षाओं से सत्य को समझना अनेकान्त का आशय है।

इसकी व्याख्या बीसवीं सदी में प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटीन ने सापेक्षवाद के रूप में की। किसी ने आइन्सटीन से सापेक्षवाद के बारे में पूछा तो उन्होंने उदाहरण देकर बताया—एक व्यक्ति जब अपनी पत्नी के साथ बैठता है तो उसे एक घंटा भी पाँच मिनट की तरह लगता है और जब उसे चूल्हे के पास बैठा दिया जाये तो पाँच

मिनट भी एक घण्टे के बराबर लगते हैं। समय वही है पर एक स्थिति में यह समय बड़ा सुखद लगता है, दूसरी स्थिति में वही समय बड़ा दुःखद लगता है।

जैन दर्शन में पदार्थ का एक गुण बताया गया है—अगुरुलघुत्व। पदार्थ अपने स्वरूप में रहता है, उसके परमाणु घटते-बढ़ते नहीं हैं। विज्ञान की यह मान्यता कि तत्त्व जलने हैं उतने ही रहेंगे, इस सिद्धान्त के काफी नजदीक है।

जैन दर्शन में लोक स्थिति का वर्णन करते हुए धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय इन छः द्रव्यों की परिकल्पना की गई है। इन द्रव्यों में आकाश की तुलना विज्ञान द्वारा सम्मत स्पेस से, काल की टाइम से व पुद्गल की मेटर से की जा सकती है।

धर्मास्तिकाय की तरह विज्ञान भी लम्बे समय तक ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करता रहा है। यद्यपि आधुनिक विज्ञान ईश्वर के बारे में मतभेद रखता है। वह इस तथ्य को तो मानता है कि मुंह से बोले गये शब्द एक सेकेंड में पूरे ब्रह्माण्ड का आठ बार चक्कर काट लेते हैं। बशर्ते कि उनको इलेक्ट्रोमैग्नेटिक विकिरण में बदल दिया जाये। इसी कारण हम रेडियो और टेलीविजन पर विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक की आवाज और दृश्यों को पकड़ लेते हैं। इतनी निकटता के बावजूद भी गति और स्थिति में सहयोगी धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय की तरह आधुनिक विज्ञान किसी पदार्थ की सत्ता को एक मत से स्वीकार नहीं कर सका है।

ओमप्रकाश—जीव के बारे में विज्ञान की क्या अवधारणा है ?

सुनिबर—जीव के बारे में विज्ञान एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाया है। कुछेक वैज्ञानिक पुनर्जन्म को स्वीकार करने लगे हैं। पुनर्जन्म की स्वीकृति के साथ जीव के अस्तित्व की स्वीकृति जुड़ी हुई है। डा० इयान स्टीवनसन ने अपनी पुस्तक में पुनर्जन्म सम्बन्धी अनेक प्रमाणिक घटनाओं का वर्णन किया है। परामनोविज्ञान की स्वतन्त्र शाखा का आज विकास हो गया है, जिसमें अनेक वैज्ञानिक इस प्रकार की शोध में लगे हुए हैं। अतीन्द्रियज्ञान और टेलिपेथी के अनेक प्रयोग हमारे सामने आ रहे हैं। जीवित आदमी या पशु-पक्षी के आभामण्डल व मृत या जड़ पदार्थों के आभामण्डल में अन्तर को वैज्ञानिक स्वीकार करने लगे हैं। चेतन प्राणी का आभामण्डल घटता बढ़ता रहता है, उज्ज्वल और

विकृत होता रहता है। जड़ पदार्थ का आभामण्डल सदा एक सरीखा रहता है। चिकित्सा विज्ञान ने तो यहां तक तरक्की कर ली है कि आभामण्डल की तस्वीर के आधार पर छः महीने पूर्व ही डॉक्टर आनेवाले बीमारी को बता देता है। जीव के अस्तित्व के सम्बन्ध में विज्ञान की शोध अभी चालू है, एक दिन विज्ञान भी निर्णायक रूप में जीव को स्वीकार करेगा ऐसी हमको आशा है।

भगवान महावीर ने तपस्या के बारह प्रकार बताये हैं। उनमें एक तप है—कायक्लेश। इसका अर्थ है—शरीर में कष्ट आने पर उसे समभाव से सहना। इसके भी अनेक प्रकार हैं। योगासन करना भी एक प्रकार का कायक्लेश तप है। चिकित्सा विज्ञान द्वारा योगासनों के महत्त्व को स्वीकार किया गया है। आजकल डॉक्टर भी अनेक प्रकार की बीमारियों के शमन के लिए योगासन बताते हैं। सही तो यह है कि व्यक्ति अगर नियमित योगासन करे तो बीमार पड़ने की परिस्थिति ही न आये। कायक्लेश तप द्वारा जहां आत्मा निर्मल होती है वहां शरीर और मन की स्थिरता, विकृतियों का नाश, रक्तशुद्धि व स्वस्थता आदि अनेक उपलब्धियां प्राप्त होती हैं।

तपस्या का एक और प्रकार है—प्रायश्चित्त। निःशल्य होने की यह सुन्दर प्रक्रिया है। शिष्य गुरु के पास आता है और सरल हृदय से अपने दोष को गुरु के सामने निवेदन करता है। गुरु उसे दोष के अनुसार दण्ड देते हैं और उसे विशुद्ध करते हैं।

मनोचिकित्सक भी रोग निवारण के लिए इसी पद्धति को सर्वोत्तम मानते हैं। मनोवैज्ञानिकों का कहना है, ज्यादातर बीमारियां 'साइकोसोमेटिक' (मनोकायिक) होती हैं। शरीर पर प्रकट होने वाली बीमारी की जड़ मन में होती है। मनोविश्लेषक रोगी के मन में गहरे उतरते हैं और उसे सम्मोहित करके बीमारी के यथार्थ कारण को खोजते हैं। इस विधिसे वे उसकी भीतरी ग्रन्थि का विमोचन करते हैं। निजी दोष को स्वीकार करना ही उनकी नजर में रोग का सही निदान है।

ओमप्रकाश—मुनिवर ! ऐसी कोई घटना सुनायें जिससे प्रायश्चित्त और मनोविज्ञान सम्मत चिकित्सा पद्धति की समानता सिद्ध हो सके।

मुनिवर—अमेरिका में नोर्मन विनसेन्ट पोल नाम का एक मनोवैज्ञानिक हुआ है। उसके पास एक अर्धविक्षिप्त महिला आई। शरीर से भी ज्यादा वह मन से बीमार थी। मनोवैज्ञानिक के पृच्छने पर उसने बताया,

“मेरा पति मुझसे हरदम झगड़ा करता रहता है, बड़ा व्यभिचारी है, उससे मुझे बड़ी घृणा है आदि-आदि।” पति को बुलाकर भी पील ने सारी स्थिति की जानकारी की, पर आश्चर्य ! पति को पत्नी से कोई शिकायत नहीं। पील ने उसकी पत्नी को हिप्टोनाइज करके पूछा, तब पता चला कि विवाह से पूर्व उसका किसी अन्य व्यक्ति के साथ प्रेम-सम्बन्ध था। पील ने उसकी मनोग्रन्थि को जान लिया कि वह अपने अपराध को पति पर आरोपित कर रही है। वह स्त्री जब सहज अवस्था में आयी, पील ने कहा—तुम अपने अपराध को पति के सामने सरलता से प्रकट कर दो और पति पर किसी प्रकार का गलत आरोप मत लगाओ। एक बार तो उसका मन सकुचाया। फिर हिम्मत करके उसने वैसा ही किया। धीरे-धीरे वह स्वस्थ होने लगी। मनोवैज्ञानिक बीमारी का निदान जिस पद्धति से करते हैं, वह प्रायश्चित्त का ही दूसरा प्रकार है। इसके द्वारा आत्मशुद्धि तो होती ही है, मानसिक व शारीरिक स्वस्थता भी प्राप्त होती है।

अमेरिका में एक महिला हुई है—लुजी. एल. हे.। उसने मेटाफिजिकल चिकित्सा पद्धति का विकास किया है, जो पूर्णतः आत्मालोचन पर आधारित है। लुजी का मानना है कि सभी प्रकार की बीमारियों का जन्म भावनात्मक विकृति के कारण होता है। उसने अपनी पुस्तक “हील यॉर बोडी” में रूग्ण व्यक्तियों पर किये गये प्रयोगों के आधार पर अनेक बीमारियों के भावनात्मक कारणों व उनके निवारण के उपायों की चर्चा की है। अब तक हजारों रोगियों को उसने इस पद्धति से स्वस्थ बनाया है।

उसके जीवन में ही एक समय ऐसा आ जाता है जब वह स्वयं कैंसर से पीड़ित हो जाती है। डॉक्टर को चेकअप करवाया तो उसने ऑपरेशन की सलाह दी। लुजी ने निश्चय किया कि वह ऑपरेशन नहीं करायेगी। जिस पद्धति से दूसरों का उपचार करती है, उसी का प्रयोग स्वयं पर करेगी। अब उसने स्वयं की वृत्तियों का विश्लेषण किया। आत्मालोचन के द्वारा उसे अनुभव हुआ कि उसके मन में विरोध का भाव इतना तीव्र है कि वही इस बीमारी का कारण है। उसने मैत्री, क्षमा आदि विधायक भावनाओं का निरन्तर प्रयोग किया। परिणामस्वरूप कुछ ही समय के बाद वह पूर्णतः स्वस्थ हो गई। आत्मालोचन की यह चिकित्सा पद्धति प्रायश्चित्त तप का ही एक प्रकार है। दस प्रायश्चित्त के प्रकारों में पहला प्रकार आलोचना

नाम से प्रसिद्ध है। अब तो आप भी मानेंगे कि जैन धर्म के बहुत सारे सिद्धान्त विज्ञान द्वारा समर्थित हैं।

ओमप्रकाश—बड़ा अच्छा समाधान मिला मुझे। अब एक वात और पूछना चाहता हूँ सुनिवर! वह है—जैन-धर्म में खान-पान की पद्धति के सम्बन्ध में। सुना है, जैन-धर्म में खान-पान सम्बन्धी बहुत वर्जनाएँ हैं। क्या यह सही है? इसके पीछे भी क्या कोई विज्ञान-है?

सुनिवर—खान-पान की वर्जनाएँ केवल जैन धर्म में ही नहीं हैं, चिकित्सा विज्ञान द्वारा भी वे स्वीकृत हैं। एक व्यक्ति बिना हिताहित का चिन्तन किये सब कुछ खाता रहेगा तो एक दिन उसका पेट कब्रिस्तान बन जाएगा और जल्दी ही उस व्यक्ति को बुढ़ापा और मृत्यु का प्रास बनना पड़ेगा। जैन धर्म ने खान-पान का पूरा विवेक दिया है और इसे तपस्या के रूप में स्वीकार किया है। तप के बारह भेदों में अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचरी, रसपरित्याग ये चार भेद भोजन से जुड़े हुए हैं। अनशन—उपवास आदि तपस्या करना, ऊनोदरी—भूख से कम खाना, भिक्षाचरी—खाने को जो सहज मिल जाए, उसमें संतोष करना, खाने की इच्छा को संक्षिप्त कर लेना। इसका दूसरा नाम वृत्तिसंक्षेप भी है। रस परित्याग—दूध-दही व अन्य गरिष्ठ पदार्थों का त्याग करना। यह ठीक है कि व्यक्ति इनका पालन पूरी तरह नहीं कर सकता है क्योंकि शरीर की भी अपनी अपेक्षाएँ हैं। कोई श्रम ज्यादा करता है, किसी को भूख ज्यादा लगती है, उस हिसाब से अपनी-अपनी खुराक होती है। फिर भी यथाशक्ति इसका पालन होना चाहिए, ऐसा जैन धर्म का मन्तव्य है। अगर इन चार प्रकार की तपस्याओं को व्यक्ति अपना ले तो शायद चिकित्सा की जरूरत भी न रहे! धर्मशास्त्रों में एक गाथा आती है—

“हियाहारा मियाहारा, अप्पाहारा य जे नरा,

न ते विज्जा तिगिच्छति अप्पाणं ते तिगिच्छुगा ॥

इसका भावार्थ है, जो हितभोजी और परिमितभोजी होते हैं उनको वैद्यों की जरूरत नहीं रहती क्योंकि वे स्वयं ही चिकित्सक होते हैं। महर्षि चरक ने भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। चिकित्सा विज्ञान भी भोजन सम्बन्धी भगवान महावीर के निर्दोषों को सत्य प्रमाणित करता है। वैज्ञानिकों ने अनेक प्रयोगों द्वारा इस तथ्य को सिद्ध कर दिया है कि कम खाना और गरिष्ठ भोजन न करना स्वास्थ्य सुरक्षा व चिरयौवन के लिए उपयोगी है। टेक्सास विश्व-

विद्यालय के शरीर क्रिया विज्ञानी एडवर्ड जे० मसोरी ने बूढ़े चूहों पर एक प्रयोग किया। उन्होंने चूहों को भोजन की सामान्य कैलोरी में ४० प्रतिशत कटौती कर दी, साथ में उनको कुपोषण से भी बचाया। निष्कर्ष यह आया कि वे चूहे पहले की अपेक्षा फूलीले व स्वस्थ पाये गए। उन चूहों की उम्र ५० प्रतिशत बढ़ गई। बुढ़ापे का मुख्य कारण बनता है—भोजन का असंयम और तनावग्रस्त दिमाग। ११५ वर्षीय संत महंत गिरिजी से उनके दीर्घ जीवन का रहस्य पूछा गया तो उन्होंने बताया—संयम ही इसका राज है। शरीर रूपी मशीन के पुर्जे जितने कम घिसेंगे उतनी ही अधिक उम्र तक वह काम देगी।

खान-पान के सम्बन्ध में कुछ पदार्थों के लिए भगवान महावीर ने एकदम निषेध किया है, जैसे—शराब, अण्डा, मांस, धूम्रपान आदि। अध्यात्म विज्ञान ही नहीं, शरीर विज्ञान भी इनका सेवन वर्जनीय मानता है। इन पदार्थों से जहां आत्मा का पतन व मन की मलिनता निष्पन्न होती है, वहां शरीर का तन्त्र भी अव्यवस्थित होता है। अनेक प्रकार की बीमारियां बिना बुलाए अतिथि बन आती हैं। जवानी में ही बुढ़ापा अपना अड्डा जमाने लगता है। अत्यधिक मात्रा में इनका सेवन मृत्यु का कारण भी बन सकता है।

अमेरिका में आयोजित मनोचिकित्सक व नाड़ी तन्त्र विशेषज्ञों के सम्मेलन में एक प्रस्ताव पास किया गया कि शराब मस्तिष्क व अन्य तन्त्रुओं के लिए जहर का काम करती है। इसके सेवन से पागलपन, हिस्टीरिया, मन की दुर्बलता व कई प्रकार की मानसिक बीमारियां उत्पन्न होती हैं। मनुष्य मात्र को मद्यपान से दूर रहना चाहिए। डा० लार्डवर ने कुछ बन्दरों पर मद्यपान का प्रयोग किया। कई दिनों तक निरन्तर शराब पिलाने से उनके जिगर मोटे हो गये, पाचनतन्त्र खराब हो गया और कुछ ही दिनों में उनकी मृत्यु हो गई। महात्मा गांधी ने कहा था—“मैं मदिरापान को चोरी व वेश्यावृत्ति से भी अधिक निन्दनीय मानता हूँ। क्या शराब इन दोनों अपराधों की जननी नहीं है? अपराधों की बढ़ती हुई संख्या पर रोक लगाने के लिए शराब पर रोक लगाना जरूरी है।

अण्डा व मांस भी स्वास्थ्य की दृष्टि से अहितकर है। वैज्ञानिक डा० विलियम्स ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया कि अण्डे की सफेदी में एवीडिन नामक भयानक तत्त्व होता है जो एग्जिमा जैसी बीमारी का कारण बनता है। जिन जानवरों को अण्डे खिलाये गये उनकी

लकवा मार गया और चमड़ी सूज गई। लन्दन के डाक्टर एलेग्जेन्डर ने गहरी खोजबीन करके इस तथ्य को प्रकट किया कि मछली और मांस में यूरिक एसिड की मात्रा होती है। मांस, मछली के सेवन के साथ यह विष व्यक्ति के खून में मिलता है और टी. बी., जिगर, दिल की खराबी, श्वास की बीमारी, गठिया, हिस्टिरिया, सुस्ती व अजीर्ण आदि रोगों के उत्पन्न होने की सम्भावना को प्रकट करता है। मांसाहार निषेध के पीछे मनोवैज्ञानिक कारण भी है जैसे जिस पशु का मांस खाया जाता है उसके हिंसक या गलत संस्कारों का व्यक्ति में संक्रमण होना, मरते समय उस पशु की हाय का लगना।

धूम्रपान निषेध भी आज के शरीर विज्ञान द्वारा सम्मत है। आजकल तो बीड़ी, सिगरेट के हर पैकेट पर यह वैधानिक चेतावनी भी लिखी होती है कि धूम्रपान स्वास्थ्यके लिए हानिकारक है। इसमें काम लिया जाने वाला पदार्थ है—तम्बाकू। विज्ञान की खोज से सिद्ध हो गया है कि तम्बाकू में चौबीस प्रकार के घातक विष होते हैं। जिनके कारण खांसी, टी. बी., आंतों में सूजन, लकवा तथा खून का पानी तक हो सकता है। इसमें एक निकोटिन विष तो इतना खतरनाक है कि कैंसर तक की सम्भावना बनी रहती है। एक शोधपूर्ण निबन्ध छपा था। उसमें बताया गया कि—सिगरेट युद्ध से भी ज्यादा नरसंहारक है। पहले और दूसरे विश्व युद्ध में ५ लाख ६५ हजार अमरीकी नागरिक मारे गये जबकि केवल सिगरेट के कारण इतने ही वर्षों के अन्तराल में ३० लाख व्यक्तियों की मृत्यु हुई। अमेरीका में सन् १९६२ में प्रो० लूथर एल० टेरी की अध्यक्षता में एक ११ सदस्यों की कमेटी बैठी, जिसने अपने रिपोर्ट में कहा था कि गले और फेफड़े के कैंसर से इसी वर्ष अमेरीका में ४१ हजार लोग मरे। उन्होंने यह भी बताया कि गले और फेफड़े के कैंसर का मूल कारण धूम्रपान ही है।

इन पदार्थों के अलावा नशीली दवाइयां, अनेक प्रकार के टूँक्वेलाइजरस, ब्राण्डी, व्हीस्की व अनेक प्रकार के उन्मादक पेय पदार्थ जैन धर्म में वर्जित हैं। शरीर विज्ञान की दृष्टि से सब वर्जनाएं मान्य हैं। जो व्यक्ति चिरंजीवी और सुख की जिन्दगी जीना चाहते हैं उनके लिए ये सब नियम, उपनियम स्वीकार करने योग्य हैं।

ओमप्रकाश—माना कि ये वर्जनाएं उपयोगी हैं पर दुनिया में बहुत सारे लोग तो ऐसे हैं जो इन नियमों का पालन किए बिना भी जी रहे हैं।

मुनिवर—दुनिया प्रवाहपाती है। बहुतों के मन में धर्म, अधर्म, कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य, उचित, अनुचित का चिन्तन भी नहीं होता। कइयों का लक्ष्य केवल आराम की जिन्दगी जीना, शरीर की हर मांग को पूरी करना, इन्द्रियों के चलाये चलना मात्र होता है। खान-पान व रहन-सहन का भी इस जीवन पर प्रभाव पड़ता है, इसका विचार कुछेक व्यक्ति करते हैं। जब परिणाम सामने आता है तब ही आदमी अपने कृत्य के बारे में सोचता है। आसाम की घटना है—एक व्यक्ति अपने बूढ़े बाप का कंधा पकड़े चल रहा था। बाप ८० वर्ष के लगभग और बेटा ६० वर्ष के लगभग रहा होगा। किसी ने आश्चर्यवश पूछ लिया—यह उल्टा क्रम कैसे? बूढ़े बाप ने कहा—यह खाद्य संयम का ही प्रभाव है कि मैं ८० वर्ष की उम्र आने पर भी अपने को स्वस्थ अनुभव कर रहा हूँ और बूढ़ापे का मेरे पर कोई असर नहीं है। मेरा बेटा ६० वर्ष की उम्र में ही मेरे से ज्यादा बूढ़ा और रोगों का अजायबघर बन गया है। मेरे बेटे ने मांस, शराब, अण्डा आदि का सेवन कर असमय में ही अपनी जवानी को खो दिया जबकि मैंने आज तक इन पदार्थों को छूआ भी नहीं, शाकाहारी भोजन करता हूँ, नित्य धूमता हूँ और कुपोषण से बचता हूँ। बूढ़े बाप के कथन में सच्चाई छिपी थी। जो व्यक्ति भोजन का विवेक रखते हैं और अभक्ष्य पदार्थों का परहेज करते हैं, उनका मन शांत रहता है और चिरकाल तक वे स्वस्थता का अनुभव करते हैं।

व्यक्ति को दुनिया की ओर नहीं देखना चाहिए। मेरा अपना हित किसमें है, यह चिन्तन पहले होना चाहिए। जैन धर्म को भले ही कोई कष्ट साध्य या वर्जनाप्रधान कहे पर इसके सिद्धांतों को विज्ञान की कसौटी पर कसने से स्वतः सिद्ध हो जाता है कि उनका कथन कितना भ्रांतिपूर्ण है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ० रमन्ना राजधानी दिल्ली में आचार्यवर के सम्पर्क में आये। जैन दर्शन को विशेष रूप से समझने के लिए आचार्यश्री ने उनको युवाचार्यवर के पास भेजा। युवाचार्यश्री से बातचीत के दौरान उन्होंने कई बार कहा—“जैन दर्शन का यह सिद्धान्त विज्ञान को भी मान्य है।” न केवल वैज्ञानिक, नास्तिक कहलाने वाले लोग भी जैन दर्शन की वैज्ञानिकता को स्वीकार करते हैं। आचार्यवर के लखनऊ प्रवास में कम्युनिस्ट नेता कॉमरेड यशपाल जो धर्म में विश्वास नहीं रखते थे, मिले। आचार्यवर से जैन दर्शन

की व्याख्या सुनकर उन्होंने कहा—“जैन धर्म तो परम वैज्ञानिक है।”
उन्होंने जैन दर्शन को पढ़ने की उत्सुकता प्रकट की।

प्रोफेसर महोदय ! अब तो आपको संतोष हो गया होगा कि जैन धर्म सत्य पर आधारित है और उसके सिद्धान्त विज्ञान से सम्मत हैं।

ओमप्रकाश—सुनिवर ! जैन धर्म के सिद्धांतों की इस रूप में व्याख्या सुनकर मैं परम प्रसन्न हूँ। अब मैं अपने मित्रों के बीच दावे के साथ कहूँगा कि जैन धर्म परम वैज्ञानिक धर्म है। उनके मीठे तानों को सुनकर मैं मौन नहीं रहूँगा। बेरी जिज्ञासाओं का शमन कर आपने मेरे पर असीम उपकार किया है।

सुनिवर—उपकार नहीं, मैंने अपने कर्तव्य की पूर्ति की है। आप जैसे सुपात्र और ज्ञान के ग्राहक व्यक्ति को इतना समय देकर मैं स्वयं आत्मतोष का अनुभव कर रहा हूँ।

ओमप्रकाश—यह तो आपकी उदारता है जिसे मैं कभी भुला नहीं सकता।

सुनिवर—आप जैसे पढ़े-लिखे व्यक्ति अगर जैन दर्शन व योग से सम्बन्धी साहित्य का अध्ययन करें तो आपको और भी नई जानकारियाँ होंगी। ज्ञान तो समन्दर है इसमें जितने गहरे उतरेंगे उतने ही कीमती रत्न आपको हासिल होंगे। न केवल स्वयं का अपितु दूसरों का भी आप हित साध सकेंगे।

ओमप्रकाश—मैं आपके अनमोल वचनों को शिरोधार्य करता हूँ।

नमस्कार महामन्त्र

(धर्म स्थान, संत एक पट्ट पर विराजमान हैं, एक महिला अपने पुत्र के साथ प्रवेश करती है, संतों को वन्दन कर वह अपने आसन पर बैठ जाती है।)

कमला—मुनिराज ! बड़ी परेशान रहती हूँ कई दिनों से।

मुनि मतिधर—कहो बहिन ! क्या बात है ?

कमला—मेरा यह एक मात्र लड़का है। उम्र वारह वर्ष की है, शरीर से स्वस्थ है, फिर भी पता नहीं यह रात के समय क्यों डरता है। मैंने इसे बहुत वार समझाया भी कि तुम्हारा यह डर काल्पनिक है, इसमें कुछ भी वास्तविकता नहीं है। मेरे समझाने का इस पर अब तक कोई असर नहीं हुआ। आखिर हारकर आपके पास इसे लेकर आयी हूँ।

मुनि मतिधर—क्या कारण है इसके डरने का ?

कमला—कारण तो मैं भी नहीं जान सकी कि क्या है। पर देखती हूँ, रात को जब कभी घर में कोई आहट होती है, इसकी नींद टूट जाती है, दिल की धड़कन बढ़ जाती है और मुझे पुकारता है—मां ! ए मां ! लगता है घर में तो कोई अजनबी व्यक्ति घुस गया है। कभी-कभार नींद में ही चिल्लाने लग जाता है। पूछती हूँ तो कहता है, मां ! सपने में कोई मुझे मारने आ रहा था। कभी अचानक ही बैठ जाता है और मुझे जगाकर कहता है—मां ! देख वे भूत खड़े हैं ? कभी कहता है—वह साँप मेरी ओर आ रहा है। महाराज ! कहते हुए संकोच होता है, इतना बड़ा हो गया फिर भी डर के मारे कभी-कभी बिस्तर में पेशाब तक कर देता है। और क्या कहूँ इसके डर की बात, मेरे से अब भी यह दूर नहीं सो सकता !

मुनि मतिधर—अब तक कोई उपचार भी किया इसके लिए ?

कमला—कई दिनों पूर्व इसे एक डॉक्टर की दवाई दिलाई थी किन्तु कुछ फर्क नहीं पड़ा। एक प्रसिद्ध तांत्रिक ने इस पर तंत्र के प्रयोग भी किये। दरगाह के पीरजी से इसके हाथ पर ताबीज भी बंधवाया, पर समय और धन की बर्बादी के सिवाय कुछ भी परिणाम नहीं आया।

मुनि मतिधर—इसकी बीमारी शारीरिक नहीं है, मानसिक व भावनात्मक है। विकृत भावों से प्रभावित चित्त इस तरह अकारण ही भयभीत होता रहता है। ऐसी स्थिति में बाहरी उपचार से ज्यादा भीतरी उपचार कामयाब होता है। नमस्कार महामंत्र का जप इसका उत्तम निदान है। इसके निरन्तर स्मरण से व्यक्ति के भाव बदलते हैं और वह स्वस्थता का अनुभव करता है।

तपन—कौन सा है वह महामंत्र मुनिराज !

मुनि मतिधर—वह मंत्र है—णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। इसे नमस्कार महामंत्र कहते हैं।

तपन—यह क्या ! इस मंत्र में किसी व्यक्ति का नाम तो आया ही नहीं। इस मंत्र के द्वारा हम किसका स्मरण करते हैं ?

मुनि मतिधर—यही तो इस मंत्र की विशेषता है। इसमें किसी व्यक्ति का नाम नहीं किन्तु सभी गुणयुक्त आत्माओं का समावेश हो गया है। नाम और रूप तो मात्र पहचान के माध्यम हैं। वास्तव में वन्दन तो पवित्र आत्मा को ही किया जाता है, नाम चाहे कुछ भी हो।

कमला—मुनिवर ! मेरा लड़का पहली बार आपके पास आया है। कृपा कर इसे विस्तार से मन्त्र के बारे में बतायें।

मुनि मतिधर—वत्स ! इस महामन्त्र के पांच पद हैं। ये पांचों पद आत्मा की अलग-अलग भूमिकाओं का निर्देश करते हैं। पहले पद में अर्हंतों को नमस्कार किया गया है। अर्हत् उन आत्माओं को कहते हैं जो सर्वोच्च योग्यता से सम्पन्न हैं, राग-द्वेष से मुक्त हैं, परमज्ञान के धनी हैं। शास्त्रीय शैली में कहें तो जिनके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार घनघाती कर्म नष्ट हो गये हैं। इसके साथ छत्र, चंवर, भामण्डल आदि आठ प्रातिहार्य गुणों से जो संयुक्त होते हैं।

तपन—मुनिवर ! वे अरिहंत हमारी तरह मनुष्य रूप में होते हैं या देव रूप में और वे इसी धरती पर रहते हैं या देव लोक में।

मुनि मतिधर—अरहंत हमारे देव अर्थात् आराध्य होते हैं। वे हमारे जैसे मनुष्य ही होते हैं। वे जब तक शेष चार कर्मों को नष्ट नहीं कर देते तब तक इसी धरती पर रहते हैं। कर्ममुक्त होने पर वे निर्वाण पद को पा लेते हैं।

दूसरे पद में सिद्धों को नमस्कार किया गया है। सिद्ध उन आत्माओं को कहते हैं जिन्होंने परम साध्य को पा लिया, जन्म मरण का वीज

(कर्ममात्र) जिनका नष्ट हो गया, सभी आवरण जिनके नष्ट गए, व अपने चिन्मय स्वरूप में जो विराजमान है।

तपन—सिद्ध कहाँ रहते हैं मुनिवर ?

मुनि मतिधर—कर्मों का भोग जिनका बाकी है वे ही संसार में रहते हैं।

सिद्धों के इस संसार में रहने का कोई कारण नहीं रहा। वे चिन्मय स्वरूप आत्माएँ मोक्ष में अवस्थित रहती हैं।

तीसरे पद में आचार्यों को नमस्कार किया गया है। आचार्य अरहन्तों की अत्युपस्थिति में धर्म-शासन के एक मात्र अधिकारी होते हैं। वे आचार धर्म का दृढ़ता से पालन करते हैं और शिष्य-शिष्याओं को भी आचार पालन की प्रेरणा देते हैं।

चौथे पद में उपाध्यायों को नमस्कार किया गया है। उपाध्याय उनको कहते हैं जिनका ज्ञान सागर की तरह विशाल होता है, जो धर्म संघ में श्रुत की परम्परा को विकसित करते हैं।

पाँचवें पद में साधुओं को नमस्कार किया गया है। साधु वे होते हैं जो संयम की साधना में तत्पर रहते हैं। आचार्य के अत्युशासन को श्रद्धा से स्वीकार करते हैं। जागरूक रहते हुए धर्म की अखण्ड आराधना करने का प्रयास करते हैं।

दुनिया में इस तरह का यह प्रथम मंत्र है जिसमें सभी विशिष्ट आत्माओं का समावेश हो जाता है। इसके पीछे जैन धर्म की उदार दृष्टि है। इसमें गुण की महिमा बताई गई है, व्यक्ति विशेष की नहीं।

तपन—एक प्रश्न मेरे मन को कुरेद रहा है कि यह मंत्र शब्दों का समूह ही तो है फिर इसका अतिरिक्त प्रभाव क्या हो सकता है ?

मुनि मतिधर—तुम शब्द की शक्ति से परिचित नहीं हो शिष्य ! स्वामी विवेकानन्द के जीवन का एक प्रसंग है, सुनो।

जब वे विदेश यात्रा पर थे, एक जगह उन्होंने शब्द की शक्ति पर प्रवचन दिया। भीड़ में से एक व्यक्ति उनके पास आकर बोला—महात्माजी ! शब्द की ताकत पर आपने बड़ा वर्णन किया पर मेरी समझ में कुछ नहीं आया।

तपन—फिर उन्होंने क्या किया ?

मुनि मतिधर—विवेकानन्द ने अपना तेवर बदलते हुए उस व्यक्ति से कहा—बेवकूफ ! इतनी छोटी-सी बात भी समझ में नहीं आई, बड़े मूर्ख हो ! सामने वाला व्यक्ति गुस्से में आ गया और स्वामीजी को गालियाँ

निकालने लगा। स्वामीजी शांत भाव से उसकी गालियों को सुनते रहे और सुस्फुराते रहे।

कुछ क्षण बाद वे बोले—मित्र ! एक छोटे से शब्द ने तुम्हारे भीतर बैठे राक्षस को जगा दिया और तुम अनर्गल बोलने लग गये, फिर भी कहते हो कि शब्द में क्या शक्ति है। वह व्यक्ति स्वामीजी के चरणों में प्रणत हो गया और अपने कृत्य पर पछताने लगा। इस घटना प्रसंग से तुमको भी विश्वास हो गया होगा कि शब्द में असीम शक्ति छिपी होती है। नमस्कार महामन्त्र के वर्णों की संयोजना तो और भी महत्त्वपूर्ण है। मन्त्र की महिमा बताते हुए आचार्यों ने लिखा है— 'यह महामन्त्र सब पापों को नाश करने वाला व मंगलों में प्रहला मंगल है।'

तपन—इस मन्त्र से पापों का ही नाश होता है या कुछ और भी लाभ मिलता है ?

मुनि मतिधर—इस महामन्त्र के स्मरण से आन्तरिक व बाह्य दोनों तरह के लाभ होते हैं। आन्तरिक लाभ हैं—पापों का शमन, कषायों का अल्पीकरण, चित्त की प्रसन्नता, विचारों की पवित्रता आदि। बाह्य लाभ हैं—शारीरिक व मानसिक व्याधियों का नाश, बुद्धि का विकास, पारस्परिक प्रेम की वृद्धि, ग्रह व उपद्रवों की शांति, भौतिक अभिसिद्धियाँ आदि।

कमला—मुनिवर ! आप इसको कोई ऐसी घटना सुनायें जिससे महामन्त्र का प्रभाव प्रकट होता हो।

मुनि मतिधर—अवश्य। एक वार मगध के सम्राट् श्रेणिक ने अपनी राजधानी में एक सुन्दर राजमहल बनवाना शुरू किया। कुछ ऐसा ही संयोग बनता कि जैसे ही महल बनकर तैयार होता, ढह जाता। ज्योतिषियों ने राजा से निवेदन किया—राजन् ! महल की सुरक्षा के लिए बत्तीस लक्ष्णों वाले पुरुष की बलि देनी होगी। राजा ने नगर में दिंदोरा पिटवा दिया कि कोई अपने पुत्र को बलि चढ़ाने हमें अर्पित करेगा उसे उतना ही सोना बदले में दे दिया जायेगा। भद्रा नाम की स्त्री सोने के लालच में आकर अपने लड़के अमर को बलि देने के लिए तैयार हो गई। रानी को जब इस बात का पता चला तो उसने राजा से बहुत अनुनय किया कि ऐसा अमानवीय कार्य न करवायें। रानी की बात का कोई असर नहीं हुआ। निरुपाय रानी खेतना ने अमर कुमार को नमस्कार महामन्त्र की आराधना की बात कही। ज्योंही बालक

अमर कुमार को अग्नि-कुंड में डाला गया, उसने स्थिरचित्त होकर नमस्कार महामन्त्र का ध्यान लगाया। आश्चर्य ! जाव्वल्यमान अग्निशिखा ठंडी हो गई और वहाँ एक सिंहासन बन गया। अमर कुमार नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से मृत्यु की गोद में जाकर भी सुरक्षित रह गया।

तपन—यह घटना तो बहुत प्राचीन समय की है। क्या इस समय भी ऐसी घटनाएं घटित होती हैं जो महामन्त्र के प्रभाव को बताती हैं ?

मुनि मतिधर—इस महामन्त्र का प्रभाव जितना अतीत में था उतना ही आज है और भविष्य में भी रहेगा। कुछ ही वर्षों पहले की बात है। अहमदाबाद का एक व्यक्ति जो कि परम्परा से वैष्णव था। उसने एक पुस्तक में नमस्कार महामन्त्र की महत्ता के बारे में पढ़ा। उसके मन में मन्त्र के प्रति श्रद्धा जागी और नियमित जप करना शुरू कर दिया। वह जिस मकान में रहता था उसी में एक प्रेतात्मा रहती थी। वह कभी उपद्रव भी करती थी। प्रतिदिन तीन घंटे जप का प्रभाव कि कुछ ही दिनों के प्रयोग से वह प्रेतात्मा उस भाई के पास आकर बोली—“भाई साहब ! अब मैं यहाँ टिक नहीं सकती, दूसरी जगह जा रही हूँ।” परिवार सदा के लिए भयमुक्त हो गया।

एक गुजराती पत्रिका “मांगलिक” में दो भाइयों की घटना पढ़ी। जिनमें वर्षों से अनबन और वैरभाव चल रहा था। छः महीने के मन्त्र प्रयोग से, साथ ही मैत्री भाव की अनुप्रेक्षा से परस्पर का मनोमालिन्य धुल गया। ३६ का अंक ६३ में बदल गया। अब तो मानोगे महामन्त्र के प्रभाव को ?

तपन—सच्चाई को इंकार नहीं किया जा सकता।

मुनि मतिधर—बिच्छू, सांप के काटने पर इस मन्त्र के सफल प्रयोगों के किस्से अनेकों घटित होते रहते हैं। इसके अलावा ग्रहों की शान्ति के लिए भी इस महामन्त्र का प्रयोग किया जाता है।

कमला—इस महामन्त्र का स्मरण व प्रयोग तो बहुत लोग करते होंगे। क्या सबको ही लाभ प्राप्त होता है ?

मुनि मतिधर—नहीं, यह जरूरी नहीं है। इसमें भी अपनी-अपनी पात्रता का फर्क रहता है। वर्षों सब जगह समान रूप से होती है पर पानी तो जिसके पास जितना बड़ा पात्र होगा उतना ही मिलेगा। वैसे ही मन्त्र का असर होता है, लेकिन होता है अपनी भद्रा और भाषना के अनुसार। भद्रा से जपा हुआ मन्त्र एक प्रकार का कवच बन जाता

है। कवच पहने हुए योद्धा की तरह मन्त्र की साधना करने वाले को भी बाहरी व भीतरी आक्रमणों को झेलने की अपार क्षमता प्राप्त हो जाती है। क्रोधादि विकार उसकी आत्मा को कलुषित नहीं करते।

कमला—मन्त्र के जप में श्रद्धा की सघनता परमावश्यक है ही, क्या और भी कोई प्रयोग साथ में जोड़ना चाहिए।

मुनि मतिधर—श्रद्धा के साथ ही, जिस लक्ष्य को व्यक्ति पाना चाहता है उसके अनुरूप अनुप्रेक्षा का प्रयोग भी जोड़ देना चाहिए।

तपन—मुनिवर ! यह अनुप्रेक्षा शब्द मेरे लिए नया है। इसका अर्थ स्पष्ट करावें।

मुनि मतिधर—अनु और प्रेक्षा दो शब्दों का यह युग्म है। प्रेक्षा का अर्थ होता है 'गहराई से देखना।' अनुप्रेक्षा का अर्थ—जो सत्य देखा व जाना या जिसे देखना व जानना है उसी का चिन्तन तथा बार-बार विचार करना। जैसे—कलह निवारणके लिए मैत्री की अनुप्रेक्षा, भय निवारण के लिए अभय की अनुप्रेक्षा, रोग मुक्ति के लिए आरोग्य भाव की अनुप्रेक्षा आदि।

एक बात और ध्यान देने की है, वह है—विधिवत् किया हुआ जप ही फलदायी होता है। इसलिए जप की विधि का सम्यग् ज्ञान होना भी जरूरी है। अविधि या रूढ़ि से जप करने वालों के लिए कबीर जैसे सन्त कवि को कहना पड़ा—

कर में तो माला फिरे, जीभ फिरे सुख मांहि,
मनवा तो चिहु दिशि फिरे, यह तो सुमिरन नांहि।

केवल हाथ में लेकर माला फेरने से व मुंह से नमस्कार महामन्त्र का पाठ करने से वह सिद्ध नहीं हो जाता है। मन्त्र जप के प्रकार व इसकी विधियों का ज्ञान होना भी जरूरी है।

तपन—यह जानकारी आपको ही देनी होगी मुनिराज !

मुनि मतिधर—मन्त्र का जप करने के मुख्य रूप से दो प्रकार हैं—पहला मानस जप, दूसरा वाचिक जप। मानस जप का अर्थ है केवल मन में मन्त्र का स्मरण करना, वाचिक जप का अर्थ है बोलकर स्पष्ट रूप से मन्त्र का जप करना।

नमस्कार महामन्त्र का जप करने की कई विधियां हैं। पहली विधि है—पाँचों पदों को अलग-अलग स्थान और रंगों के साथ जोड़ देने की। जैसे—णमो अरहंताणं के जप को ज्ञान केन्द्र (मस्तक में चोटी का स्थान) पर श्वेत रंग के साथ, णमो सिद्धाणं के जप को दर्शन

केन्द्र (भृकुटि मध्य) पर लाल रंग के साथ, णमो आयरियाणं के जप को विशुद्धि केन्द्र (कण्ठ का स्थान) पर पीले रंग के साथ, णमो उव्वम्मायाणं के जप को आनन्द केन्द्र (हृदय स्थान) पर हरे रंग के साथ, णमो लोए सव्व साहूणं के जप को शक्ति केन्द्र (रीढ़ की हड्डी का अन्तिम छोर) पर नीले रंग के साथ जोड़ दें ।

दूसरी विधि है पांच पदों को श्वास के साथ जोड़ देने की, जैसे— प्रथमपद के स्मरण के साथ श्वास ग्रहण किया, दूसरे में श्वास छोड़ा, तीसरे में फिर ग्रहण किया, चौथे में छोड़ा, पांचवें के 'णमो लोए' पद में श्वास ग्रहण किया और सव्व साहूणं में छोड़ा । तीसरी विधि में एक ही श्वास में पांचों पदों का स्मरण एक साथ किया जाता है । ये विधियां मन को स्थिर बनाने में बड़ी सहयोगी बनती हैं । जिसको जो सुगम लगे उस विधि का प्रयोग किया जा सकता है ।

कई व्यक्ति हाथ में माला लेकर भी जप किया करते हैं । एक बार माला फेरने में १०८ बार मन्त्र का जाप हो जाता है । इसमें भी माला दाहिने हाथ में हृदय स्थल के निकट रखी जाती है । फिर पूर्व या उत्तर दिशा में मुंह करके अंगूठे और मध्यमा अंगुलि द्वारा मणकों पर मन्त्र का जाप किया जाता है । माला की अपेक्षा अंगुलियों के पीरवों पर मन्त्र के स्मरण को अधिक लाभकारी माना गया है । चार अंगुलियों के बारह पीरवों पर नौ बार चक्राकार जप करने से १०८ बार मन्त्र जप हो जाता है । इसे एक नवकरवाली भी कहते हैं ।

तपन—मन्त्र का जप करते समय व्यक्ति को और किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ।

मुनि मतिधर—मन्त्र जप करते समय चित्त की स्थिरता का विशेष प्रयत्न होना चाहिए । इसके साथ समय और स्थान का भी विवेक रखना चाहिए । स्थान एकान्त व स्वच्छ होना चाहिए । जहां बच्चे खेलते हों, भोजन पकता हो, लोगों का आवागमन ज्यादा होता हो ऐसे स्थानों का वर्जन करना चाहिए । समय की दृष्टि से ब्रह्ममुहूर्त का समय अति उत्तम है । मन्त्र का अनुष्ठान गहरी निष्ठा और दृढ़ संकल्प पूर्वक करना चाहिए । इसके साथ नियमितता को भी नहीं भूलना चाहिए ।

तपन—मुनिराज नमस्कार महामन्त्र के बारे में आपने विस्तार से समझाकर मुझे कृतार्थ किया । ऐसे महान् मन्त्र के प्रति मैं श्रद्धानत हूँ । मैं आपके वचनों को शिरोधार्य कर शीघ्र ही इस महामन्त्र के जप में लग जाऊंगा ।

कमला—महामुने ! यह भी बताने की कृपा करें कि इस जप का आरम्भ तपन को कब और किस रूप में करना चाहिए ?

मुनि मतिघर—अक्षय तृतीया का शुभ दिन सामने है । रात को सोने से पहले पूर्वाभिमुख होकर इस महामन्त्र का जप प्रारम्भ कर देना चाहिए, साथ ही आनन्द केन्द्र (सीने के मध्य जो गड्ढा है) पर अभय भावना की अनुप्रेक्षा भी जोड़ देनी चाहिए ।

कमला—(पुत्र से) बेटे ! हाथ जोड़कर मुनिवर से संकल्प करो कि मैं प्रतिदिन महामन्त्र का स्मरण करूंगा ।

तपन—मुनिवर ! मैं आपकी साक्षी से संकल्प करता हूँ कि प्रतिदिन नमस्कार महामन्त्र का जाप करूंगा ।

कमला—अपना अमूल्य समय और मार्गदर्शन देकर आपने महती कृपा की सुनिराज !

(दोनों वन्दन कर लौट जाते हैं ।)

सम्यक्त्व

(संतों का स्थान, संत अपने आसन पर बैठे हैं, विमल, कमल दो भाई मुनि से बात कर रहे हैं ।)

विमल—कई दिनों से हम दोनों भाई सोच रहे थे कि मुनिवर के पास जाना है किन्तु कुछ तो अध्ययन का भार, कुछ आलस्य के कारण आपकी सेवा का अवसर प्राप्त नहीं हुआ ।

कमल—यह सौभाग्य आज ही मिलने को था ।

मुनि—अच्छा किया, अब पहले अपना-अपना परिचय दो ।

विमल—हम दोनों ईश्वरदासजी जैन के पुत्र हैं । मैं ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ता हूँ ।

कमल—मैं नवीं कक्षा में पढ़ता हूँ ।

विमल—आप कुछ समय दिलाने की कृपा करें तो हम आपसे कुछ जानना चाहते हैं ।

मुनि—अवश्य पूछो, जो तुम जानना चाहते हो । हम संतों का समय तो स्व और पर दोनों के लिए होता है ।

कमल—मुनिराज ! मां के मुँह से हमने कई बार सुना कि इस बार गमीं में जैन विश्व भारती चलना है, इन दोनों लड़कों को भी ले जाना है । वहाँ आचार्यश्री के दर्शन करके इन दोनों को सम्यक्त्व दिलानी है ।

मुनि—यह तो बहुत अच्छी बात है ।

विमल—अच्छी तो होगी ही, मां जिसके लिए कहती है । पर यह सम्यक्त्व क्या चीज है, हम तो समझ नहीं पाए ।

मुनि—सुनो ! सम्यक्त्व का अर्थ है—दृष्टिकोण का सम्यग् होना । जो पदार्थ जैसे है उनको उसी रूप में समझना । सम्यक्त्व की प्राप्ति के बिना व्यक्ति की दृष्टि में विपर्यास बना रहता है । वह अनात्म तत्त्वों में आत्मा को और आत्म तत्त्वों में अनात्मा को मान बैठता है ।

कमल—जो पदार्थ जैसे है उनको उसी रूप में समझना, यही अगर सम्यक्त्व है, तब तो हर व्यक्ति के लिए यह सुलभ हो जाएगी ।

मुनि—नहीं-नहीं, इतना आसान नहीं है। तत्त्व की गहराई में उतरने वाले बहुत कम लोग होते हैं। संसार के अधिकतर लोग तो ऐसे हैं जिनकी नजर में चेतन और अचेतन में कोई भेद ही नहीं है।

विमल—इस भेद को कैसे जाना जा सकता है ?

मुनि—इसके लिए जीव और अजीव का समग्र ज्ञान करना जरूरी है। इसका विस्तृत रूप नौ तत्त्व और षड् द्रव्य है। इसके साथ ही तीन तत्त्वों की भी सम्यग्-जानकारी और श्रद्धा होनी जरूरी है ?

कमल—वे फिर कौन से हैं ?

मुनि—वे हैं देव, गुरु और धर्म ? देव-वीतराग, अरहन्त जिन्होंने श्रेय को पा लिया, गुरु-मोक्ष मार्ग को बताने वाले, धर्म-मोक्ष प्राप्ति का मार्ग। इन तीनों की सही पहचान होनी जरूरी है। यह सम्यक्त्व की व्यावहारिक परिभाषा है।

विमल—तो क्या निश्चय दृष्टि से परिभाषा कुछ और है ?

मुनि—हां, निश्चय दृष्टि से सम्यक्त्व है—अनन्तानुबन्धी कषाय की चार व सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय इन तीन प्रकृतियों की सम्पूर्ण अनुदयावस्था या आंशिक अनुदयावस्था में होने वाली उपलब्धि।

कमल—मुनिराज ! कुछ समझे नहीं।

मुनि—ये जैन दर्शन के पारिभाषिक शब्द हैं, मैं तुमको समझाने की चेष्टा करूंगा। मोहनीय कर्म के दो भेद हैं १. दर्शन मोहनीय २. चरित्र मोहनीय। सम्यक्त्व मोहनीय आदि तीन दर्शन मोहनीय की प्रकृतियां हैं और अनन्तानुबन्धी कषाय की चार प्रकृतियां चरित्र मोहनीय की हैं। इसका अर्थ है—एक सीमा तक क्रोध, मान, माया और लोभ का अल्पीकरण। अनन्तानुबन्धी क्रोध की पत्थर की रेखा से, मान की पत्थर के त्तम्भ से, माया की बांस की जड़ से, लोभ की कुमि रेशम के रंग से तुलना की जा सकती है। सम्यक्त्व के अधिकारी व्यक्ति में इस तरह के तीव्र क्रोध, मान, माया व लोभ नहीं होने चाहिए।

विमल—निश्चय सम्यक्त्व की परिभाषा के अनुसार कौन सम्यक्त्वी है, कौन नहीं, क्या पता चलेगा ?

मुनि—ठीक बात है। यह निश्चय तो ज्ञानी पुरुष ही कर सकते हैं, हम तो व्यवहार के स्तर पर ही सोचते हैं। उसी के आधार पर कहते हैं, असुक व्यक्ति सम्यक्त्वी है। जिस प्रकार धुएँ को देखकर अग्नि का,

हलुवे की सुगन्ध से हलुवे का निश्चय हो जाता है, वैसे ही बाहरी लक्षणों से व्यक्ति के सम्यक्त्वी होने का निश्चय किया जा सकता है ?

कमल—वे लक्षण कौन से हैं जिनसे सम्यक्त्वी की पहचान होती है ?

मुनि—वे लक्षण पांच हैं :—१. शम २. संवेग ३. निर्वेद ४. अनुकम्पा
५. आस्तिक्य ।

१. शमः—क्रोधादि कषायों का उपशमन

२. संवेगः—मोक्ष की अभिलाषा

३. निर्वेदः—संसार से विरक्ति

४. अनुकम्पाः—प्राणी मात्र के प्रति दया का भाव

५. आस्तिक्यः—आत्मा, परमात्मा, बन्धन, मुक्ति में विश्वास करना ।

ये पांच लक्षण जिस व्यक्ति में मिलते हैं उसे सम्यक्त्वी कहा जाता है ।

विमल—जैन धर्म में सम्यक्त्व को इतना महत्त्व क्यों दिया गया ?

मुनि—सम्यक्त्व अध्यात्म की नींव है और मुक्ति महल की पहली सीढ़ी है ।

सम्यक्त्व दशा में व्यक्ति कभी अप्रशस्त गति में जमन नहीं करता ।

भगवान् महावीर ने सम्यग् दर्शन (सम्यक्त्व) पर बल देते हुए कहा है—सम्यग् दर्शन के बिना सम्यग् ज्ञान व सम्यग् ज्ञान के बिना सम्यग् चरित्र और सम्यग् चरित्र के बिना मुक्ति सम्भव नहीं है । सम्यक्त्व-प्राप्ति का अर्थ है—मुक्ति गमन की अर्हता का प्रमाण पत्र पा लेना ।

श्रीमद् जयाचार्य ने एक गीत में लिखा है कि इस जीव ने सम्यक्त्व प्राप्त किये बिना अनन्त बार चारित्र धर्म का पालन किया किन्तु श्रेयस् की प्राप्ति नहीं हुई । सम्यक्त्व प्राप्त होने पर ही जीव की सद्गति सम्भव है । जिस तरह पानी शुद्ध होने पर भी गन्दे बर्तन में रखा होने से गन्दा कहलाता है, न ही उसे पीने का भी मन करता है । उसी तरह सम्यक्त्व रहित व्यक्ति का अच्छा ज्ञान भी पात्रता के अभाव में अज्ञान कहलाता है । इस दृष्टि से सम्यक्त्व को महत्त्वपूर्ण माना गया है ।

कमल—क्या सम्यक्त्व का अधिकारी हर व्यक्ति हो सकता है ?

मुनि—इसमें जाति, कुल, रंग व लिंग का कोई भेद नहीं है । हर व्यक्ति सम्यक्त्व का अधिकारी हो सकता है बशर्ते कि उसके क्रोधादि कषाय हलके हों, सत्य के प्रति समर्पण हो, चित्त सरल व निर्मल हो ।

विमल—सम्यक्त्व के अधिकारी की व्यावहारिक पहचान क्या हो सकती है ?

मुनिवर—व्यावहारिक रूप में सम्यक्त्वी वह होता है जो कषाय की ग्रन्थि को

लम्बे समय तक अपने भीतर नहीं पालता। जो वर्ष भर तक या संवत्सरी महापर्व के दिन भी किसी प्रकार की ग्रन्थि को बनाये रखता है वह व्यक्ति सम्यक्त्व को पाकर भी खो देता है। इसीलिये जैन परम्परा में बल दिया जाता है कि व्यक्ति संवत्सरी के दिन तो अवश्य ही सरलतापूर्वक सभी से क्षमायाचना कर ले और भीतरी ग्रन्थियों से मुक्त हो जाये।

कमल—सम्यक्त्व के कितने प्रकार होते हैं सुनिराज ?

मुनि—प्राप्ति के उपायों के आधार पर इसके दो प्रकार बताये गये हैं।

१. निसर्गजः—बिना बाहरी निमित्त के प्राप्त होने वाली सम्यक्त्व। कर्मों का हल्कापन होने से यह प्राप्त होती है। बरसाती नदी में बहता-बहता पत्थर जिस तरह गोल हो जाता है उसी तरह जीवन की लम्बी यात्रा में कदाचित् यह स्थिति व्यक्ति को प्राप्त हो जाती है, वह सम्यक्त्वी बन जाता है।

२. निमित्तजः—बाहरी निमित्त से प्राप्त होने वाली सम्यक्त्व। यह सम्यक्त्व स्वाध्याय, शास्त्र भवण व गुरु के वचनों का निमित्त पाकर प्राप्त होती है।

विमल—आपके कथन से लगता है सम्यक्त्व की प्राप्ति महान् सौभाग्य का उदय है, किन्तु यह भी तो सम्भव है कि ऐसे सौभाग्य को पाकर भी व्यक्ति उससे वंचित रह जाए। वे कौन से भटकाव हैं जिनसे सम्यक्त्वी व्यक्ति को सदा सावधान रहना चाहिए ?

मुनि—पांच दोष हैं जिनसे सम्यक्त्वी व्यक्ति को सदा बचकर रहना चाहिए।

१. शंका—स्वीकृत तत्त्व के प्रति मन में संदेह होना।
२. कांक्षा—मिथ्यामत्त को ग्रहण करने की अभिलाषा।
३. विचिकित्सा—धर्म के फल में संशय करना।
४. परपाषण्ड प्रशंसा—धर्म से प्रतिकूल चलने वाले व्यक्तियों की प्रशंसा करना।
५. परपाषण्ड परिचय—धर्म से प्रतिकूलगामी व्यक्तियों के नजदीक जाना, उनसे परिचय करना।

बच्चों ! ये पांच दोष ही सम्यक्त्वी के लिए भटकाव हैं।

कमल—मुनिवर ! भटकाव से बचने व निधि को सुरक्षित रखने के लिए एक सम्यक्त्वी व्यक्ति को किन-किन बातों का ध्यान रखना जरूरी है ?

मुनि—सम्यक्त्वी को इस दृष्टि से पांच बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए—

१. स्थैर्यः—अपने चित्त को स्वीकृत लक्ष्य में स्थिर रखना, इधर-उधर मन को भटकने नहीं देना ।
२. प्रभावनाः—जिस तत्त्व को स्वीकार किया है वह ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुंचे, सत्य धर्म की प्रभावना हो ऐसा प्रयत्न करना ।
३. भक्तिः—देव, गुरु और धर्म के प्रति मन को भक्तिमय बनाए रखना ।
४. कौशलः—तत्त्वज्ञान के अर्जन में तत्पर रहना । वीतराग वाणी में निष्णात बनने का प्रयत्न करना ।
५. तीर्थ सेवाः—धर्म संघ की वृद्धि के लिए सतत प्रयत्नशील रहना और श्रद्धा में कमजोर व्यक्तियों को मजबूत बनाना ।

इनको सम्यक्त्व के पांच भूषण भी कहा गया है । जैसे शरीर वस्त्रों व अलंकरणों से सुशोभित होता है वैसे ही सम्यक्त्व इन पांच गुणों से विभूषित होती है ।

विमल—सम्यक्त्व प्राप्ति से क्या-क्या लाभ है ?

मुनि—सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि सम्यक्त्व जिसे प्राप्त है उसे सुक्ति का आरक्षण प्राप्त हो जाता है, अनिश्चितता की स्थिति समाप्त हो जाती है । निश्चित अवधि के बाद वह व्यक्ति परमपद निर्वाण को पा लेता है । कषाय मन्द होनेसे सम्यक्त्वी का जीवन शांत और सुखी होता है । अनाग्रही होने के कारण उसमें ग्राहक बुद्धि का विकास हो जाता है । बाहर से दरिद्र होने पर भी सम्यक्त्वी अपने को दीन-हीन महसूस नहीं करता । दृष्टि सम्यग् होते ही वह दश प्रकार के मिथ्यातत्त्वों से अपने को बचा लेता है ।

कमल—दस मिथ्यातत्त्व कौन से हैं ?

- | | |
|---------------------------|-----------------------------|
| १. अधर्म को धर्म समझना | २. धर्म को अधर्म समझना |
| ३. कुमार्ग को मार्ग समझना | ४. मार्ग को कुमार्ग समझना |
| ५. अजीव को जीव समझना | ६. जीव को अजीव समझना |
| ७. असाधु को साधु समझना | ८. साधु को असाधु समझना |
| ९. असुक्त को सुक्त समझना | १०. सुक्त को असुक्त समझना । |

विमल—क्या कारण है कि जीव को सम्यक्त्व मी प्राप्ति नहीं होती है ।

मुनि—दुनिया के बहुत सारे लोग तो ऐसे हैं जिनको अपने स्वरूप के बारे में कोई जिज्ञासा भी नहीं है, वे सम्यक्त्व की महत्ता को समझते ही

नहीं। कई जो इसके महत्त्व को समझते हैं वे तीव्र कषाय और आग्रह-बुद्धि के कारण सम्यक्त्व से वंचित रह जाते हैं।

कमल—सम्यक्त्व का वर्णन सुनकर इसकी प्राप्ति के लिए हमारे मन में आकर्षण पैदा हुआ है।

विमल—मुनिवर ! आप हम दोनों को सम्यक्त्व प्रदान करावें।

मुनि—जब तुम कुछ दिनों के बाद गुरुदेव के दर्शन करने जा ही रहे हो तो उनके श्रीमुख से ही इसे ग्रहण करना अच्छा रहेगा।

कमल—सम्यक्त्व ग्रहण करते समय क्या कुछ भेंट भी चढ़ानी होगी उनके चरणों में ?

मुनि—भेंट तो अपनी आस्था की करनी होगी। जैसे कुछ नियम सम्यक्त्व स्वीकृति के साथ दिलाए जाते हैं, जैसे—स्वीकृत आस्था पर दृढ़ रहना, अण्डा, मांस व शराब का सेवन न करना, आत्म हत्या या किसी दूसरे की हत्या न करना, वृक्षों को नहीं काटना, संवत्सरी के दिन व्रत रखना आदि।

विमल—आप की अत्यन्त कृपा से हमें सम्यक्त्व को समझने का मौका मिला। मां कई बार कहा करती थी, अरे ! तुम लोग संतों के दर्शन करने जाया करो। किन्तु इतना उत्साह नहीं था। आज पहली बार महसूस हुआ कि संतों के पास बैठने में बहुत लाभ है। सम्यक्त्व की व्याख्या सुनकर हमारी जिज्ञासा और बढ़ गई है। षड्द्रव्य, नव तत्त्व, देव, गुरु और धर्म के बारे में भी हम आपसे जानना चाहते हैं, पर अभी नहीं। इसके लिए हम दूसरी बार आपसे समय लेंगे अभी हमने आपका बहुत समय ले लिया, क्षमा करें।

मुनि—सुझे तो तुम जैसे जिज्ञासुओं को समय देने में खुशी ही होती है। मैं चाहता हूँ तुम लोग इसी तरह तत्त्व को समझते रहो और धर्म के मर्म को हृदयङ्गम कर जीवन में उतारने का प्रयास करो।

देव, गुरु और धर्म

(धर्मस्थान, मुनिराज पट्ट पर आसीन है, उनके सामने विमल, कमल दोनों भाई कर बद्ध बैठे हैं।)

विमल, कमल—(वंदना करते हुए) वन्दे मुनिवरम् वन्दे मुनिवरम् ।

मुनिराज—आज तो एक ही दिन में दूसरी बार आ गये हो ।

विमल—तहत मुनिवर ! यह आपकी ही कृपा है । एक समय था जब दादीजी व मां हमको कहते कहते थक जाती किन्तु यहाँ आनेकी प्रेरणा ही नहीं जगती थी । किन्तु अब तो आपके वचनों ने हमको इस तरह बांध दिया है कि जब घर से बाहर निकलते हैं तो पाँव धर्मस्थान की ओर ही बढ़ने लगते हैं ।

कमल—महाराज ! जहाँ कुछ उपलब्धि नजर आती है व्यक्ति स्वतः ही खींचा चला आता है । हमको भी यहाँ आने में एक सार्थकता का अहसास होने लगा है ।

मुनिराज—ऐसी भावना पैदा होना भी व्यक्ति का सौभाग्य है ।

विमल—पर इस सौभाग्य को जगाने वाले आप ही हैं । हम तो जो पुस्तकों व पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ते थे उसी को परिपूर्ण ज्ञान मान रहे थे, अब लग रहा है कि ज्ञान का विशाल समन्दर तो अभी हमारे से अज्ञात ही पड़ा है । हमें अपनी नादानी पर बड़ी हंसी आ रही है । साथ में अफसोस भी है कि आज तक हम परम तत्त्व से वंचित ही रहे । घर में गंगा होते हुए भी उसमें डुबकी नहीं लगा सके ।

मुनिराज—खैर, “बीती ताहि विसारदे, आगे की सुधलेय” कहावत के अनुसार तुम भी बीते समय पर विचार मत करो । अब भी तुमने करवट ली है यह अच्छा है, तुम्हारे शुभ भविष्य का सूचक है । अब कहो, कोई जिज्ञासा हो तो या फिर मैं ही अपनी इच्छा से किसी विषय का विश्लेषण करूँ ।

कमल—जिज्ञासा तो आपने जगादी है, अब हम ही अपनी बात प्रारम्भ कर दें । मुनिवर ! सम्यक्त्व की व्याख्या में आपने देव, गुरु और धर्म

पर सुदृढ़ आस्था रखने की बात कही थी। आज हम उपरोक्त तीनों शब्दों के बारे में जानकारी करना चाहेंगे।

मुनिराज—वत्स ! देव, गुरु और धर्म ये तीन रत्न हैं जिनकी सम्यक् पहचान होना जरूरी है। पहचान के अभाव में कई बार रत्न के स्थान पर व्यक्ति कंकरों को बटोर लेता है। सम्यक्त्व की स्वीकृति के साथ ही व्यक्ति इस आस्था को जगाता है—

“अरहंतो महदेवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो,
जिणपणत्तं तत्तं, इय सम्मत्तं मए गहियं”

इस शास्त्रोक्त गाथा का अनुवाद है—

देव मेरे दिव्य अर्हन्, श्रेष्ठ सारे लोक में,
साधना घन साधु मेरे सुगुरु पथ आलोक में,
धर्म वह जो साधना पथ केवली उपदिष्ट है,
आत्म निष्ठा मय अमल सम्यक्त्व मुझको इष्ट है ॥

संक्षेप में देव, गुरु व धर्म की इतनी सी पहचान है। अर्हत्-देव होते हैं, साधु जो साधना पथगामी है—गुरु होते हैं, केवलियों द्वारा प्ररूपित साधना पथ-धर्म होता है।

विमल—पर इतने मात्र से तो मन को संतोष नहीं हुआ।

कमल—हमें इन तीनों विषयों पर विस्तार से समझाने की कृपा करावें।

मुनिराज—तो फिर एक-एक शब्द को ही मैं खोलकर समझा देता हूँ। पहला शब्द है—देव। जैसा की बताया जा चुका है, कि अर्हत् हमारे देव हैं। अर्हत्-पंच परमेशी में प्रथम पद के अधिकारी हैं। अर्हत् उस महान् आत्मा को कहते हैं जिन्होंने चार घनघाती कर्मों का नाश कर दिया।

कमल—चार घनघाती कर्म कौनसे होते हैं ?

मुनिराज—कर्मों के आठ प्रकार हैं—(१) ज्ञानावरणीय (२) दर्शनावरणीय (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयुष्य (६) नाम (७) गोत्र (८) अन्तराय। इनमें ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार घनघाती कर्म कहलाते हैं।

विमल—इन चार को ही घनघाती कहने का क्या कारण है ?

मुनिराज—आत्मा के मौलिक गुण आनन्द व पराक्रम को नष्ट करने के कारण इनको घनघाती कर्म कहा है। ज्ञानावरणीय का नाश होने से अर्हत् अनन्तज्ञान के धनी होते हैं। दर्शनावरणीय कर्म का नाश होने से उनका दर्शन असीम हो जाता है। मोहनीय कर्म का नाश होने से

वे राग द्वेष मुक्त हो जाते हैं और चारित्रिक क्षमता से वे परिपूर्ण होते हैं। अन्तराय कर्म का क्षय होने से उनमें अनन्त पराक्रम होता है। इन चार गुणों के अलावा ऐसी आत्माओं में आठ प्रातिहार्य गुण और पाये जाते हैं।

कमल—आठ प्रातिहार्य गुण से क्या मतलब ?

मुनिराज—प्रातिहार्य गुण से तात्पर्य है—विशेष चामत्कारिक अतिशय। इन आठ प्रातिहार्यों में कुछ देवताओं द्वारा निर्मित व कुछ योगजन्य होते हैं। ये संख्या में आठ होते हैं—(१) अशोक वृक्ष (२) पुष्प वृष्टि (३) दिव्य ध्वनि (४) देव दुन्दुभि (५) स्फटिक सिंहासन (६) भामण्डल (७) छत्र (८) चामर। ये सब अर्हत्तों के साथ जुड़े होते हैं।

विमल—पर उपरोक्त चामत्कारिक अतिशय तो कोई इन्द्रजालिक भी मन्त्र के प्रयोग से जनता को दिखा सकता है।

मुनिराज—ऐसा भी होता है, पर अर्हत्तों के ये बिना किसी मन्त्रादि के प्रयोग से निष्पन्न होते हैं। ज्ञानावरणादि कर्मों के क्षय होने से प्राप्त होने वाले चार गुण मूल हैं, अशोक वृक्ष आदि आठ गुण तो सहभावी हैं।

कमल—तो क्या ये चार गुण प्रकट होते ही शेष आठ गुण स्वतः निष्पन्न हो जाते हैं ?

मुनिराज—यहां भी एक बात समझने की है। चार गुण सामान्य केवलियों में भी पाये जाते हैं किन्तु आठ प्रातिहार्य उनमें प्रकट नहीं होते। आठ प्रातिहार्य गुण केवल उनमें ही पाये जाते हैं जिनके तीर्थङ्कर गोत्र बंधा होता है। धर्म तीर्थ की स्थापना करने के कारण अर्हत्तों को तीर्थङ्कर भी कहते हैं।

कमल—अर्हत्तों को अन्य नामों से भी पुकारा जाता है क्या ?

मुनिराज—अर्हत्तों को कई नामों से पुकारा जाता है जैसे—सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, यथार्थवादी, जिन, देवाधिदेव आदि। उनके लिये कुछ भी अज्ञात नहीं होता इसलिये वे सर्वज्ञ व सर्वदर्शी कहलाते हैं। यथार्थ तत्त्व का निरूपण करने से वे यथार्थवादी कहे जाते हैं। उन्होंने क्रोधादि कषायों को शान्त करके अपनी आत्मा पर विजय प्राप्त कर ली इसलिये जिन कहलाते हैं। वे देवों के भी देव होते हैं इसलिये देवाधिदेव कहे जाते हैं। ये सब अर्हत्तों के पर्यायवाची शब्द हैं।

विमल—मुनिवर ! क्या वे देव हम मनुष्यों की तरह आकारवान् होते हैं या शक्तिस्वरूप, निराकार ?

मुनिवर—जब तक आयुष्य का भोग वाकी रहता है तब तक वे शरीरधारी या साकार होते हैं और शेष चार कर्मों का नाश कर जब वे मुक्त हो जाते हैं, सिद्धत्व को पा लेते हैं तो निराकार हो जाते हैं ।

कमल—क्या अर्हतों का कोई नाम भी होता है ?

मुनिवर—नाम और रूप तो हमारी पहचान के प्रमुख अंग हैं । इनसे हटकर कोई भी संसारी आत्मा नहीं रह सकती है ।

विमल—अब बतायें, हम देव रूप में किस नाम का स्मरण करें ?

मुनिवर—यों तो हर युग में २४ धर्मदेव तीर्थङ्कर होते हैं । इस युग में भी ऋषभ आदि चौबीस तीर्थङ्कर हुए हैं । हमारे आसन्न उपकारी व वर्तमान तीर्थ के प्रवर्तक होने के कारण हम भगवान महावीर का नाम देवरूप में स्मरण करते हैं ।

कमल—पर भेरुं, भवानी, रामदेवजी, पीतरजी को भी तो दुनिया देव मानकर पूजती है, इसके पीछे क्या कारण है ?

मुनिवर—ये सब लौकिक देव हैं । लोक परम्परा में प्रचलित इस तरह के अगणित देव हैं पर इनको धार्मिक देव नहीं कहा जा सकता ।

विमल—क्या वर्तमान काल में कोई धर्म देव हमारे लोक में हैं ?

मुनिवर—हमारी धरती के अलावा एक दूसरी धरती है जिसका नाम महाविदेह क्षेत्र है, जहां अभी सीमंधर स्वामी आदि अनेक धर्मदेव हैं । वह ऐसी धरती है जहां इस भूभाग से किसी मनुष्य का पहुंच पाना असंभव है । हमारे इस भरत क्षेत्र में अभी कोई अर्हत् नहीं है । उनका चलाया हुआ शासन है । अर्हतों की अनुपस्थिति में उनके शासन की संभाल आचार्य करते हैं । वे धार्मिक गुरु कहलाते हैं ।

कमल—देव के स्वरूप को हमने जाना, अब आप गुरु के बारे में बताने की कृपा करें ।

मुनिवर—शुद्ध साधुओं को गुरु कहा जाता है ।

विमल—शुद्ध साधु की परिभाषा क्या है ?

मुनिवर—जो तप, संयमयुक्त साधना के द्वारा अपनी आत्मा को भावित करता है ।

कमल—मुनिवर ! साधना का भी कोई प्रारूप है ?

मुनिवर—हां, है । भगवान महावीर ने पांच महाव्रत रूप साधना साधुओं के लिये विहित बतलायी है । वे पांच महाव्रत हैं—१. अहिंसा २. सत्य ३. अचौर्य ४. ब्रह्मचर्य ५. अपरिग्रह । एक शुद्ध साधु किसी भी प्रकार की जीव हिंसा नहीं करता है, न कभी मिथ्या संभाषण करता है, न

कभी कोई प्रकार की चोरी करता, ब्रह्मचर्य का पूर्णरूप से पालन करता है, किसी प्रकार के धन-धान्य का संग्रह नहीं करता है। दूसरे शब्दों में कहें तो गुरु वह होता है जो व्रतों की सम्पूर्ण आराधना करता है।

कमल—व्रतों की सम्पूर्ण आराधना तो बड़ी कठिन होती है। वह कौन-सी पद्धति है जिससे साधु इनकी सम्पूर्ण आराधना कर लेते हैं।

सुनिवर—इन पांच व्रतों के सम्पूर्ण पालन के लिये आठ नियम और बतलाये गये हैं, जिनको शास्त्रों में अष्ट प्रवचन माता का नाम दिया गया है। जिस तरह मां अपने बच्चे का पूरा ध्यान रखती है उसी तरह ये समिति गुप्तियां साधु की पूरी सुरक्षा करती हैं। ये समितियां पांच और गुप्तियां तीन हैं। समिति का अर्थ है—सम्यक् प्रवृत्ति और गुप्त का अर्थ है—निवृत्ति यानि योगों की चंचलता समाप्त कर आत्मलीन होने का अभ्यास।

कमल—ये पांच समितियां और तीन गुप्तियां कौन-कौन सी हैं, थोड़ा विस्तार से बताने की कृपा करें।

सुनिवर—यही बत रहा हूँ। पांच समितियों में पहली है, ईर्या समिति—हर कदम देखकर चलना, दूसरी है भाषा समिति—विचारपूर्वक बोलना, तीसरी है एषणा समिति—भोजन, पानी आदि वस्तुओं को विधिपूर्वक ग्रहण करना, चौथी है आदान निक्षेप समिति—वस्त्र, पात्र आदि उपयोगी वस्तुओं को संभालकर रखना, पांचवीं है उच्चार प्रस्वण समिति—मल-मूत्र आदि का विधि से उत्सर्ग करना, जिससे किसी को घृणा न हो। तीन गुप्तियों में पहली है मनोगुप्ति—मन की चंचलता को रोकना, दूसरी है वचन गुप्ति—वाणी की चंचलता को रोकना, तीसरी है कायगुप्ति—शरीर की चंचलता को रोकना। ये आठ नियम कवच के समान हैं। समिति, गुप्ति से भावित साधु के व्रतों को कोई खतरा नहीं रहता। खेत की सुरक्षा के लिये जैसे बाड़ का महत्त्व है वैसे ही महाव्रतों की रक्षा के लिये इनका महत्त्व है।

विमल—साधु की परिभाषा और उसके महाव्रतों के बारे में आपने बताया पर एक कठिनाई भी है हमारे सामने सुनिवर !

सुनिवर—वह क्या ?

विमल—बात ऐसी है। साधु के रूप में घूमने वालों की इस दुनिया में कमी नहीं है। हम किसको शुद्ध साधु कहें व किसको अशुद्ध ?

सुनिवर—यही प्रश्न आज से दो शताब्दियों पूर्व महामना आचार्य भिक्षु से

किसी ने पूछा था—आ० भिक्षु ने एक युक्ति से इसका समाधान दिया। उन्होंने बताया एक वैद्य से एक अन्धा व्यक्ति पूछता है कि वैद्यराजजी! इस नगर में सवस्त्र व्यक्ति कितने हैं और निर्वास्त्र कितने? वैद्य ने औषध के प्रयोग से उसका अन्धापन मिटा दिया। अब वह स्वयं सवस्त्र और निर्वास्त्र का निर्णय कर लेता है। स्वामीजी ने इस युक्ति के द्वारा उसे समझाया कि शुद्ध साधु का मापदण्ड मैं तुमको बता देता हूँ, कौन शुद्ध साधु, कौन अशुद्ध इसका निर्णय तुम स्वयं कर लो। वत्स! तुम्हारी जिज्ञासा का भी यही समाधान है, जो पाँच महाव्रतों का पालन करे वह शुद्ध साधु है और वही गुरु रूप में नमस्कार के योग्य है।

कमल—पर यह भी तो अन्तरङ्ग पक्ष है। व्यक्ति के अन्दर कौन भाँकता है। हमारा निर्णय तो बाहरी वेशभूषा व व्यवहार को देखकर ही होता है।

मुनिवर—यह कठिनाई तो है। बाहर जो कुछ दिखता है वह सब सही हो कोई जरूरी नहीं। व्यक्ति अपने आपको छिपाना बहुत जानता है। होता कुछ है, दिखाता कुछ और है। पर सच्चाई भी लम्बे समय तक आवृत नहीं रहती है। कागज के फूल दूर से आकर्षक लग सकते हैं किन्तु पास में आते ही उनकी कृत्रिमता प्रकट हो जाती है। व्यवहार के द्वारा भी हम काफी हद तक सत्य के निकट पहुँच सकते हैं। शुद्ध साधु के हर व्यवहार में साधना की झलक दिखाई देगी। वह गृहत्यागी और अकिञ्चन होगा। वह अपने कार्यों से दूसरों को कष्ट नहीं पहुँचायेगा। वह स्वच्छन्द और उच्छृङ्खल नहीं होगा। अपने शास्ता के अनुशासन का पालन करेगा।

कमल—क्या बाहरी वेश-भूषा का भी कोई सम्बन्ध है साधु से?

मुनिवर—बाहरी वेश-भूषा भी साधु की पहचान का कारण बनती है, इस दृष्टि से उसका भी महत्त्व है। साधु अगम गृहस्थ की तरह वेशभूषा रखे तो वह साधु के रूप में पहचाना नह। जाता।

एक बार की बात है—एक व्यक्ति अपने छोटे लड़के को साथ लेकर संतों के दर्शनार्थ आया। एक मुनि उस समय दांत साफ कर रहा था। बच्चा उस मुनि को वन्दना करने पास में आया। मुंह पर मुखवस्त्रिका न देखकर वह बिना हाथ जोड़े एक क्षण यों ही खड़ा रहा। फिर दौड़कर अपने पिता के पास आ गया और बोला, “बापू! वो तो कोई आदमी है, साधु कौनी।” पिता उसकी नादानी पर

हंमा । पर इस हकीकत को नकारा नहीं जा सकता कि लोक व्यवहार की दृष्टि से वेशभूषा भी साधु के पहचान का कारण बनती है । किन्तु निश्चय दृष्टि से साधु की पहचान वेशभूषा या बाह्य परिवेश नहीं है । भ० महावीर ने भी कहा—“नवि मूँडिएण समणो”—मुण्डन करा लेने से कोई श्रमण नहीं बन जाता । अन्तरङ्ग साधना ही साधु की सही पहचान है ।

विमल—हमारे यहां गुरु को इतना महत्त्व क्यों दिया गया जबकि सच्चा मार्ग दिखाने वाले तो अरहन्त होते हैं ?

मुनिवर—मार्ग दिखाने वाले तो अरहन्त हैं पर उस मार्ग पर चलने की प्रेरणा देने वाले गुरु ही होते हैं । प्रकाश होने पर भी अगर आंख नहीं है तो व्यक्ति के लिये सर्वत्र अन्धकार है वैसे ही अहंता ने मार्ग तो बतला दिया पर ज्ञान की आंख अगर नहीं खुली तो सही रास्ता सामने होने पर भी व्यक्ति उन्मार्ग की ओर प्रस्थान कर सकता है । यह ज्ञान की आंख खोलने वाले गुरु ही होते हैं । जुलसीदासजी से पूछा गया—गुरु और भगवान् दोनों में सबसे पहले किसको वन्दन करना चाहिए । उन्होंने बताया—पहले गुरु को वन्दन करना चाहिए क्योंकि उन्होंने भगवान् से परिचय करवाया ।

“गुरु गोविन्द दीऊं खड्या कांके लागू पाय,
बलिहारी गुरुदेव की गोविन्द दियो बताय ॥”

एक राजस्थानी लेखक ने लिखा है—

“गुरु कीजै जाण, पाणी पीजै छ्वाण ।”

गुरु की सही पहचान होनी जरूरी है । गुरु अगर स्वार्थी और लालची होगा तो वह परमार्थ का मार्ग नहीं बता सकेगा । निःस्वार्थी और त्यागी गुरु ही आत्म कल्याण का रास्ता बता सकते हैं और परम लक्ष्य तक पहुंचा सकते हैं । भिक्षु स्वामी ने तराजू की दण्डी के दृष्टान्त से गुरु की महत्ता को समझाया है । जिस तरह तराजू की दण्डी में तीन छिद्र होते हैं, बीच वाले छिद्र में अगर थोड़ा भी फर्क होता है तो सन्तुलन गड़बड़ा जाता है, वस्तु का सही तोल नहीं हो सकता वैसे ही देव, गुरु और धर्म में मध्यवर्ती पद गुरु का है । गुरु अगर ठीक होते हैं तो देव और धर्म की भी ठीक पहचान हो जाती है । गुरु अगर आचारहीन और गलत होते हैं तो देव और धर्म दोनों की सही अवगति नहीं हो पाती है । स्वयं बंधा हुआ दूसरों को क्या बन्धन मुक्त कर सकता है ?

आगे उन्होंने बताया—गुरु अगर ब्राह्मण होता है तो शिव को देव बतायेगा और ब्रह्मभोज को धर्म कहेगा। वह अगर भोपा होगा तो धर्मराज को देव और भोपों को भोजन कराना व दक्षिणा देने को धर्म कहेगा। वह अगर कामड़िया होगा तो रामदेवजी को देव व जम्मे की रात जगाना, कामड़ियों को भोजन कराना धर्म बतायेगा। वह यदि सुल्ला होगा तो अल्लाह को देव बतायेगा व हलाल करने को धर्म कहेगा। गुरु अगर त्यागी, तपस्वी श्रमण निर्ग्रन्थ होता है तो अर्हत्तों को देव व वीतराग द्वारा भाषित तत्त्व को धर्म बतायेगा। इसलिये गुरु की परख होनी बहुत जरूरी है क्योंकि देव और धर्म की सही पहचान गुरु पर ही निर्भर करती है।

विमल—इसी सन्दर्भ में एक प्रश्न फिर शेष रह गया, सभी शुद्ध साधुओं को अगर गुरु मान लिया जायेगा तो क्या सामान्य व्यक्ति के सामने कठिनाई उपस्थित नहीं होगी, वह किस-किसका स्मरण करेगा व किसको छोड़ेगा? एक समस्या यह भी आएगी कि अगर सभी साधु गुरु बन जायेंगे तो उनका शिष्य कौन रहेगा?

सुनिवर—यौं तो सभी साधु स्वयं में गुरु की तरह पूज्य हैं। फिर भी वे सब एक आचार्य के शिष्य कहलाते हैं। 'णमो आयरियाणं' में धर्माचार्य को नमस्कार किया गया है। आचार्य धर्म संघ का नेतृत्व करते हैं, साधु-साधवियों की साधना में सहयोगी बनते हैं, अर्हत्तों के उत्तराधिकारी होते हैं। इसलिए नाम-स्मरण विशेष रूप से उनका ही किया जाता है। उदाहरणार्थ—तेरापंथ धर्म में सात सौ से अधिक साधु-साधवियां हैं। गुरु होते हुए भी वे सब अपने को शिष्य मानते हैं और गुरु के रूप में आचार्य श्री तुलसी को स्वीकार करते हैं।

कमल—गुरु की पहचान के बाद अब हम आप से धर्म के बारे में जानना चाहते हैं।

सुनिवर—आचार्यवर ने अपनी कृति जैन सिद्धांत दीपिका में धर्म की एक छोटी सी परिभाषा बतायी है—आत्मशुद्धिसाधनं धर्मः—आत्मा की शुद्धि के साधन को धर्म कहते हैं।

विमल—आत्मशुद्धि के साधनों के बारे में भी भिन्न-भिन्न अवधारणाएं हैं जैसे कोई व्यक्ति स्नान करने को, कई पूजा पाठ करने को शुद्धि का साधन मानते हैं, कोई और कुछ मानते हैं। आपका इससे क्या अभिप्राय है?

सुनिवर—अपेक्षा भेद से आत्मशुद्धि के साधनों के भी कई भेद किये जा सकते

हैं। मैं उन सब भेदों की चर्चा न करके मुख्य दो भेदों की चर्चा कर देता हूँ। पहला संवर दूसरा निर्जरा। जिस क्रिया के द्वारा कर्मों की रुकावट हो वह संवर है। जिसके द्वारा पूर्व संचित कर्मों का नाश हो वह निर्जरा है। इन दो साधनों में सभी साधन समाहित हो जाते हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप व क्षमा आदि दश धर्म इनका ही विस्तार है।

विमल—मुनिवर : अभी आपने जो व्याख्या की वह सिद्धान्तपरक थी। हमारा निवेदन है आप धर्म की व्यावहारिक व्याख्या करें जिससे वह सीधी हमारे गले उतर जाये।

मुनिवर—आचार्य भिक्षु ने धर्म को सरल ढंग से समझने की एक सुन्दर पद्धति हमको बतायी है। उन्होंने बहुत संक्षेप में धर्म को समझने के कुछ गुर बताये, जैसे—१. धर्म त्याग में है, भोग में नहीं २. धर्म भगवान् की आज्ञा में है, आज्ञा से बाहर नहीं ३. धर्म संयम में है, असंयम में नहीं ४. धर्म उपदेश द्वारा हृदय परिवर्तन में है, बल प्रयोग में नहीं ५. धर्म अनमोल है, मूल्य से खरीदा नहीं जाता। ये पांच सूत्र ऐसे हैं जिनमें धर्म की पूरी व्याख्या का समावेश हो गया है। कौन-सा कार्य धर्म है, कौन-सा नहीं, यह उपरोक्त कसौटी के द्वारा जाना जा सकता है।

कमल—तो क्या कुएं, बावड़ी, धर्मशाला व अनाथालय बनाना, भूखे को भोजन कराना व प्यासे को पानी पिलाना आदि कार्य धर्म नहीं है ?

मुनिवर—आत्म धर्म के अलावा भी धर्म शब्द का प्रयोग लोक व्यवहार में किया जाता है। कुएं, बावड़ी बनाना आदि कार्यों में धर्म शब्द कर्त्तव्य अर्थ का वाचक बन जाता है। यह लोक का उपकार है, जनता का सहयोग है, इसे आत्म धर्म की कोटि में नहीं लिया जा सकता। धर्म ही अगर कहना चाहें तो लोक धर्म कहा जा सकता है। अगर कुएं बनाना आदि कार्यों में आत्म धर्म मान लिया जाये तो धर्म के अधिकारी सिर्फ धनिक व्यक्ति ही रह जायेंगे। गरीब तो धर्म की आराधना कभी कर ही नहीं सकते। धर्म कुछ ही व्यक्तियों की बपौती नहीं है। वह तो सार्वजनीन व सर्व कल्याणकारी है।

विमल—पर, भूखे को भोजन कराना या किसी को पानी पिलाना आदि कार्य तो बिना करुणा के होते नहीं हैं अतः इनको धर्म मानने में क्या दिक्कत है ?

मुनिवर—करुणा के भी दो रूप हैं, पहली—मोहजन्य करुणा, दूसरी—मोह-

रहित करुणा । भोजन कराने व पानी पिलाने में मोहजन्य करुणा की प्रधानता रहती है । आत्मा का नहीं शरीर का पोषण वहां ध्येय रहता है । इस प्रवृत्ति के द्वारा त्याग को नहीं भोग को बढ़ावा मिलता है । इन सब कारणों से इसे भी लोक धर्म की संज्ञा ही दी जायेगी ।

विमल—मां-बाप की सेवा व देश की रक्षा के लिये युद्ध करना तो धर्म का ही अङ्ग होगा ?

सुनिवर—आत्मधर्म की कसौटी एक ही है जो ऊपर बतायी गयी । मां-बाप से लेकर राष्ट्र तक व्यक्ति का स्वार्थ जुड़ा है । जहां कुछेक के साथ अपनापन है वहां परायापन भी सुनिश्चित है । स्व की सुरक्षा, माता-पिता की सेवा करना हर व्यक्ति का नैतिक दायित्व है और अपने कर्त्तव्य की पूर्ति है । इसे आत्मधर्म न कहकर लौकिक धर्म ही कहना चाहिये ।

कमल—क्या धर्म भी कई तरह का होता है ?

सुनिवर—शुद्ध आत्मधर्म तो एक ही तरह का है जिसे लोकोत्तरधर्म भी कहते हैं । आत्मधर्म के अलावा लौकिक कर्त्तव्य, दायित्व के लिए भी धर्म शब्द का प्रयोग होता है, जैसे—ग्रामवासियों का अपने ग्राम के प्रति कर्त्तव्य ग्रामधर्म, राष्ट्र के प्रति नागरिकों का कर्त्तव्य राष्ट्रधर्म, अपने कुल के प्रति उसके सदस्यों का दायित्व कुलधर्म आदि आदि । कर्त्तव्य के सिवाय स्वभाव अर्थ में भी धर्म शब्द का प्रयोग होता है । जैसे—अग्नि का धर्म उष्णता है, पानी का धर्म शीतलता है, आंख का धर्म देखना है, इसी प्रकार सब इन्द्रियों का अपना अलग-अलग धर्म है ।

विमल—क्या धर्म शाश्वत है और इसमें परिवर्तन की कोई गुंजायश नहीं है ?

सुनिवर—जैसा कि बताया गया धर्म शब्द अनेकार्थक है धर्म को अगर हम अध्यात्म धर्म के संदर्भ में देखें तो वह शाश्वत और अपरिवर्तनशील है । अहिंसा, सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये अध्यात्म धर्म के शाश्वत सिद्धान्त हैं । इनमें न तो कभी परिवर्तन हुआ और न भविष्य काल में होने का है । अध्यात्म धर्म के अलावा लोक व्यवहार और नैतिक कर्त्तव्य अर्थ में प्रयुक्त धर्म शाश्वत नहीं है और परिवर्तनशील भी है ।

कमल—सुनिवर ! एक वैभव सम्पन्न व्यक्ति धर्म क्यों स्वीकार करेगा ?

क्योंकि उसके ऐश अराम और वैभव की कोई कमी नहीं। त्याग और संयम की बात तो अभाव ग्रस्त व्यक्तियों को रुचती है।

मुनिवर—त्याग और संयम की बात अभाव और भाव से नहीं, व्यक्ति के विवेक से जुड़ी हुई है। आज तक अनेक राजा महाराजाओं व ऐशवर्य सम्पन्न व्यक्तियों ने धर्म को अपनाया है। भगवान् महावीर ने भी राजघराने में जन्म लिया था। राजकीय सुखों को छोड़कर ही उन्होंने साधना का पथ स्वीकार किया था।

एक बात यहां और समझने की है, वह है धर्म भौतिक सुख सुविधा या स्वर्ग पाने की दृष्टि से नहीं किया जाता है। धर्म का उद्देश्य है आत्मशोधन, स्वरूप का बोध व अनन्त शक्तियों का जागरण आदि। भौतिक सुख या स्वर्ग तो पुण्य के फल हैं, जो गौण रूप से स्वतः प्राप्त हो जाते हैं।

कमल—धर्म और पुण्य को सामान्य आदमी एक ही अर्थ में लेता है। क्या इनमें भी अन्तर है ?

मुनिवर—सामान्य जन ही नहीं कोशकारों ने भी इनको पर्यायवाची शब्द बताया है। किन्तु अध्यात्म शास्त्र इनको भिन्न-भिन्न मानता है। धर्म है—व्यक्ति की सत्प्रवृत्ति, आत्म स्वभाव, कर्म निर्जरा व आत्म उज्वलता का हेतु, जबकि पुण्य है आत्मा की वैभाविक दशा, भव भ्रमण का हेतु व धर्म का गौणफल। जैसे—खेती अनाज के लिये की जाती है पर तुड़ी उसके साथ स्वतः निष्पन्न हो जाती है।

हां, लोक व्यवहार में धर्म और पुण्य को एक भी कह दिया जाता है। जनता की भलाई के लिये किये जाने वाले कार्यों को धर्म और पुण्य की संज्ञा दे दी जाती है किन्तु शुद्ध धर्म का सम्बन्ध नितान्त आत्मा से जुड़ा है। उसमें लौकेषणा के लिये तनिक भी अवकाश नहीं।

विमल—मुनिवर धर्म का आचरण व्यक्ति को किस समय करना चाहिये ?

मुनिवर—भगवान् महावीर ने कहा—धर्म का आचरण व्यक्ति को हर क्षण करना चाहिये। “समयं गोयम मा पमायए” सूक्त के द्वारा वे हर क्षण जागरूक रहने का संदेश देते हैं। तीन तरह के व्यक्ति ही कल के लिये धर्म की बात सोच सकते हैं—(१) जिसकी मृत्यु के साथ मैत्री हो, (२) जो मृत्यु आने पर इधर इधर पलायन कर सकता हो (३) जो अमर बनकर इस धरती पर आया हो। तीनों प्रकारों में किसी एक प्रकार का भी व्यक्ति हमको दृष्टिगत नहीं होता। ऐसे में धर्म को बढ़ापे के लिये नहीं छोड़ना चाहिये। एक ऋण का भी भरोसा नहीं

किया जा सकता। व्यक्ति का हर पल धर्म का आराधना में बीतना चाहिये।

कमल—देव, गुरु, धर्म के स्वरूप से आपने हमको परिचित कराया। सम्यक्त्व प्राप्ति के लिए क्या इनकी जानकारी कर लेना मात्र पर्याप्त है ?

सुनिवर—कोरी जानकारी कर लेना मात्र पर्याप्त नहीं है। इन तीनों तत्त्वों पर व्यक्ति की घनीभूत श्रद्धा भी होनी जरूरी है। ज्ञान के बिना श्रद्धा और श्रद्धा के बिना ज्ञान अपूर्ण है। दोनों की संयुक्ति होना जरूरी है। पक्षी के लिए आंख और पांख की तरह जीव के लिए ज्ञान और श्रद्धा है। श्रद्धा होने से ही सम्यक्त्व का स्पर्श होता है। जैन दर्शन तो ज्ञान व श्रद्धा से भी आगे की बात करता है और वह है आचरण। आचरण अगर सम्यक् नहीं है तो भी अधूरापन है। सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर आचरण के अभाव में लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव नहीं है। जिस तरह व्यक्ति किसी स्थान विशेष पर पहुँचना चाहता है तो उसे रास्ते का ज्ञान, उस पर विश्वास व उस पर गतिशीलता इस त्रिपुटी को अपनाना जरूरी है वैसे ही मोक्ष-प्राप्ति के लिए सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यग् चरित्र का योग होना अनिवार्य है। इतने सारे विश्लेषण के बाद तुम ही बताओ—देव, गुरु और धर्म के बारे में तुम क्या समझे ?

कमल—विमल—सुनिवर ! आपके इस मार्मिक विवेचन को सुनकर जैसा हम समझे हैं, उसके अनुसार देव—अरहन्त है, गुरु—अहिंसा आदि व्रतों को पूर्ण रूप से पालन करने वाले साधु और धर्म—अर्हंतों द्वारा भाषित मार्ग है।

सुनिवर—बिलकुल सही बताया। उपसंहार में यही कहना है—इस पहचान को कभी भूलना मत। श्रद्धा से विचलित करने वाले अनेक प्रलोभन व भटकाव इस दुनिया में हैं, तुम सजग होकर इस श्रद्धा को सुदृढ़ बनाये रखना।

विमल—उर्वरा भूमि में बोये गए बीज कभी निरर्थक नहीं जाते, उसी तरह हमको दिया हुआ ज्ञान कभी निष्फल नहीं होगा। श्रद्धा में मजबूत रहकर ही हम आपके समय और श्रम की कीमत को चुका सकेंगे। सुनिवर ! आपके इस अमूल्य अनुदान को हम कभी भुलायेंगे नहीं।

नौ तत्त्व, षड् द्रव्य

(संतों का स्थान, मुनिराज आसन पर विराजे हुए हैं, सामने विमल कमल दोनों भाई बद्धाञ्जलि होकर वंदन कर रहे हैं।)

विमल कमल—मत्थएण वंदामि, मत्थएण वंदामि।

मुनिराज—लगता है, उस दिन की चर्चा ने तुम लोगों के मन में और अधिक जिज्ञासा को जगा दिया है।

विमल—बिलकुल सही फरमाया, मुनिवर!

कमल—आपने सम्यक्त्व के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए बताया था कि सम्यक्त्वी को नौ तत्त्व व षड् द्रव्य का ज्ञान होना जरूरी है। इसके साथ ही आपने, देव, गुरु और धर्म की जानकारी और उन पर सुदृढ़ श्रद्धा रखने पर बल दिया था। देव, गुरु व धर्म के विषय को हमने समझा, आज हम नौ तत्त्व व षड् द्रव्य के विषय में आपसे जानना चाहते हैं।

मुनिराज—मूल तत्त्व दो ही हैं—जीव और अजीव। हम जब मोक्ष के साधक-बाधक तत्त्वों की चर्चा करते हैं तो इनके जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये नौ भेद किये जाते हैं। दिग्गम्बर परम्परा में पुण्य और पाप को बन्ध में अन्तर्निहित कर लेने से मूल तत्त्वों में उनकी गणना नहीं की गई, अतः वहां तत्त्वों की संख्या सात ही मान्य है। लोक स्थिति की जब व्याख्या करते हैं तो इन दो तत्त्वों के धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय ये छः भेद कर दिए जाते हैं।

विमल—हम इनके बारे में विस्तार से जानना चाहते हैं।

मुनिराज—तुम्हारी जिज्ञासा को देखकर मैं एक-एक तत्त्व की अलग-अलग व्याख्या करना उचित समझता हूँ। नौ तत्त्वों में सबसे पहला है—जीव। जीव उसे कहते हैं जो चेतनामय हो, जिसमें सुख-दुःख का संवेदन हो व जानने की क्षमता हो। अपेक्षा की विविधता से जीव

अनेक भेद किए जाते हैं। ज्यादा गहराई में नहीं जाकर में मुख्य भेदों की ही चर्चा करना चाहूंगा। जीव की शुद्ध-अशुद्ध अवस्था के आधार पर इसके दो भेद किए जाते हैं—१. सिद्ध-कर्म सुक्त विशुद्ध चेतना २. संसारी-कर्मबद्ध आत्मा की अशुद्ध अवस्था। सिद्ध जीवों के सिद्धत्व प्राप्ति की अन्तिम अवस्था के आधार पर तीर्थ सिद्ध आदि पन्द्रह भेद किए जाते हैं। उत्तरकालीन अवस्था सबकी समान होती है। संसारी जीवों में अवस्था की विविधता होती है। इसलिए उनके दो से लेकर ५६३ तक भेद किए जाते हैं।

कमल—पांच सौ तरेसठ भेद ! महाराज ! सुनते-सुनते बोर हो जायेंगे। हम तो धर्म में प्राथमिक कक्षा के विद्यार्थी हैं। हमें तो जीव के मुख्य भेदों के बारे में बतलाएं।

मुनिराज—घबराओ मत। मैं तुम्हारी ग्रहण-क्षमता के अनुसार ही बतला रहा हूँ। मोक्ष जाने की योग्यता और अयोग्यता के आधार पर जीव के भव्य-अभव्य, सुख-दुःख की प्राप्ति व निवृत्ति के लिए गमन करने व न करने वालों के आधार पर त्रस व स्थावर, जीवन के आरम्भ में अपेक्षित पौद्गलिक सामग्री की प्राप्ति और अप्राप्ति के आधार पर पर्याप्त व अपर्याप्त और आंखों से दिखाई न देने और दिखाई देने के आधार पर सूक्ष्म व बादर आदि दो-दो भेद किए जाते हैं।

विमल—क्या नहीं दिखने वाले सब जीव सूक्ष्म होते हैं ?

मुनिराज—यह कोई नियम नहीं है। नहीं दिखने वाले बहुत जीव बादर भी होते हैं। पर इतना तो निश्चित है कि जो दिखते हैं वे सब बादर ही हैं। अब जीव के तीन भेद करते हैं। लिंग के आधार पर स्त्री, पुरुष व नपुंसक, व्रत के आधार पर संयमी, असंयमी, संयमासंयमी और मानसिक संवेदन होने न होने के आधार पर संज्ञी, असंज्ञी, नो संज्ञी—नो असंज्ञी भेद हो जाते हैं।

कमल—संज्ञी, असंज्ञी, नो संज्ञी—नो असंज्ञी शब्द हमारे लिए एकदम नये हैं, इनसे आपका क्या तात्पर्य है ?

मुनिवर—जिनमें मानसिक संवेदना होती है वे संज्ञी जीव कहलाते हैं। इस विभाग में गभोत्पन्न पांच इन्द्रियों वाले जीव व औपपातिक नारक और देवता आते हैं। जिनमें मानसिक संवेदन नहीं सिर्फ ऐन्द्रियिक चेतना होती है वे असंज्ञी जीव कहलाते हैं। एकेन्द्रिय जीवों से लेकर चार इन्द्रिय वाले जीव व सम्मूर्च्छिम पांच इन्द्रिय वाले जीव इस वर्ग में आते हैं। तीसरे वर्ग में केवलज्ञानी आते हैं। ये पूर्ण

ज्ञान के धनी होते हैं। आत्मिक उपयोग विकसित होने के कारण मानसिक संवेदन की वहाँ अपेक्षा नहीं रहती है। इस दृष्टि से उनको नो संज्ञी कहा गया है। असंज्ञी अवस्था ज्ञानावरणीय आदि घाति कर्मों के उदय के कारण उत्पन्न स्थिति है। केवलियों के इन कर्मों का क्षय होने से उनको नो असंज्ञी कहा गया है।

विमल—आपने एक बात अभी कही कि जिनमें मानसिक संवेदन नहीं होता है वे जीव असंज्ञी कहलाते हैं; यहाँ एक जिज्ञासा उठती है कि इस प्रकार के जीवों को सुख-दुःख की अनुभूति कैसे होगी? अगर सुख-दुःख की अनुभूति ही नहीं तो फिर उनमें जीवत्व कैसे?

मुनिराज—मन नहीं तो क्या, ऐन्द्रियक चेतना तो है ही। उनको भी सुख-दुःख का अनुभव होता है पर मनुष्य की तरह व्यक्त नहीं होता है। मन न होने पर भी ये जीव सुख की प्राप्ति व दुःख की निवृत्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। इनमें भी नाड्योतन्त्रीय चेतना विद्यमान रहती है। सामने आना, जाना व अस्पष्ट बोलना आदि क्रियाएँ भी असंज्ञी जीवों में जीवत्व को प्रमाणित करती हैं।

कमल—पर एकेन्द्रिय पृथ्वी आदि जीवों में ये क्रियाएँ भी देखने को नहीं मिलती हैं।

मुनिराज—सूक्ष्म क्रियाएँ उनमें भी होती हैं। सुख-दुःख का संवेदन उनमें भी होता है। भगवान ने पृथ्वीकाय के जीवों की कष्टानुभूति की तुलना मूक, बधिर, अन्धे व पंगु पुरुष के कष्ट से की है। ऐसे व्यक्ति को कष्ट होता है पर वह बता नहीं पाता। वनस्पति में जीवत्व अनेक वर्षों पूर्व महान् वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु ने सिद्ध कर दिया था। प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो गया है कि वनस्पति प्रसन्नता का भाव लेकर आने वाले व्यक्ति को देखकर प्रफुल्लित होती है और क्रूर भावों वाले व्यक्ति को देखकर सिकुड़ जाती है। इसलिए असंज्ञी जीवों के जीवत्व में आशंका करना व्यर्थ है।

जीव तत्त्व का लम्बा-चौड़ा विस्तार है। हम जब चार गतियों के आधार पर चर्चा करते हैं तो जीव के चार भेद हो जाते हैं—नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव। इन्द्रियों के आधार पर एक इन्द्रियवाले, दो इन्द्रियवाले, तीन इन्द्रियवाले, चार इन्द्रियवाले, पांच इन्द्रियवाले, यों पांच भेद हो जाते हैं। इस तरह और भी अनेक भेद किये जा सकते हैं।

जीव तत्त्व को सुनने के बाद अब अजीव तत्त्व के बारे में सुनो।

जिसमें चैतन्य न हो, जानने व सुख-दुःख के संवेदन की पवृत्ति न हो वह अजीव है। इसके मुख्य भेद पांच हैं—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय। जब हम लोकस्थिति का वर्णन करते हैं तो जीवास्तिकाय जिसका विवेचन प्रथम तत्त्व के रूप में कर दिया गया है, साथ में और जोड़ देते हैं। ये षड् द्रव्य भी कहलाते हैं। द्रव्य शब्द का प्रयोग अन्य धर्म-दर्शनों में व विज्ञान जगत में भी हुआ है। अस्तिकाय शब्द जैन दर्शन का पारिभाषिक शब्द है। इसका अर्थ है, प्रदेश-समूह। ये पांचों द्रव्य जीव व जगत के उपकारी हैं। जैसे—धर्मास्तिकाय चलने में व अधर्मास्तिकाय ठहरने में सहयोगी है।

कमल—वात समझ में नहीं आई। चलने व ठहरने में वृद्ध, बीमार या छोटे बच्चे को तो सहारे की जरूरत रहती है पर क्या प्राणी मात्र को धर्मास्तिकाय व अधर्मास्तिकाय का सहारा जरूरी है ?

मुनिराज—गति, स्थिति चाहे प्राणी की ही चाहे जड़ पुद्गल की, इन तत्त्वों का सहारा लेना जरूरी है। जैसे—मछलियां अपनी ताकत से चलती हैं पर जल को उनको सहारा है। गाड़ी अपनी ऊर्जा से चलती है पर चिना पटरी के गति सम्भव नहीं है। उड़ते हुए पक्षी के लिए वृक्ष ठहरने में निमित्ति बनता है। यद्यपि रुकने की प्रक्रिया में पक्षी स्वतंत्र है फिर भी वृक्ष उसमें सहयोगी बनता है। वैसे ही चेतन व अचेतन पदार्थों में गतिस्थिति स्वसापेक्ष होते हुए भी धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय का सहयोग अनिवार्य है।

विमल—क्या आकाशास्तिकाय के अलावा अन्य द्रव्य भी लोक व अलोक दोनों में व्याप्त हैं ?

मुनिराज—शेष पांच द्रव्यों में काल को छोड़कर चार द्रव्य लोक परिमाण हैं और व्यवहारिक काल जो सूर्य व चन्द्रमा की गति से सम्बन्ध रखता है वह सिर्फ मनुष्य लोक में है।

विमल—लोक-अलोकव्याप्त आकाश को क्या असीम कहा जा सकता है ?

मुनिराज—अलोकाकाश को असीम कहा जा सकता है, लोकाकाश को नहीं। जहां तक जीव व पुद्गल की गति है वहीं तक लोकाकाश है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्सटीन द्वारा की हुई लोक-अलोक की व्याख्या जैन दर्शन से काफी सामंजस्य रखती है। उन्होंने बताया—‘लोक परिमित है, लोक से परे अलोक अपरिमित है। लोक के परिमित होने का कारण यह है कि द्रव्य अथवा शक्ति लोक के बाहर नहीं जा

सकती। लोक के बाहर उस शक्ति (द्रव्य) का अभाव है जो गति में सहायक होती है।” आइन्सटीन ने यह भी लिखा है कि लोक का व्यास एक करोड़ अस्सी लाख प्रकाश वर्ष है। एक प्रकाश वर्ष उस दूरी को कहते हैं जो प्रकाश की किरण १,८६,००० मील प्रति सेकेण्ड के हिसाब से एक वर्ष में तय करती है।

कमल—मुनिवर ! ऊपर यह जो नीला-नीला रंग दिखाई देता है, क्या आकाश वही है या कुछ और भी है ?

मुनिराज—ऊपर दिखाई देने वाला नीला रंग जिसे जन प्रचलित भाषा में आकाश कहते हैं, वह तो रज कणों का समूह मात्र है, जो इतनी दूरी के कारण हम सबको नीला दिखाई देता है। यहां जिस आकाशास्तिकाय की चर्चा की जा रही है वह तो सर्वत्र व्याप्त है, अरूपी/आकार रहित है।

चौथा द्रव्य है, काल। यह प्रतिक्षण वर्तता रहता है इसलिए वर्तमान-क्षणवर्ती है।

कमल—अन्य सब द्रव्यों के साथ अस्तिकाय शब्द आया है, काल को अस्तिकाय क्यों नहीं कहा गया, मुनिवर !

मुनिराज—इसका कारण है काल के प्रदेशों का कोई समूह नहीं होता। धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों के प्रदेशों का समूह होने से उनको अस्तिकाय कहा जाता है। क्षण आया और गया। न वह रुकता है और न दो क्षण आपस में कभी मिलते हैं। अतीतकाल, भविष्यत्काल ये सब हमारी कल्पनाएं मात्र हैं। वास्तव में काल वही है जो वर्तमान में वर्तता है।

अब तुम पांचवे द्रव्य के बारे में समझो। इसका नाम है पुद्गलास्तिकाय। गलन मिलन का स्वभाव है जिसमें, ऐसे प्रदेश समूह को पुद्गलास्तिकाय कहते हैं।

विमल—गलन मिलन स्वभाव से क्या तात्पर्य है ?

मुनिराज—टूटना/बिखरना, जुड़ना/संयोग होना ये गुण पुद्गल में विशेष रूप से पाये जाते हैं जैसे—सोने को तोड़कर उसके कंगन, हार, मुकुट आदि बनाये जाते हैं। ऐसा ही जोड़ तोड़ पदार्थ मात्र में होता रहता है।

आधुनिक विज्ञान भी प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटीन के बाद से पदार्थ (मैटर) का ऊर्जा (एनर्जी) में व ऊर्जा का पदार्थ में परिवर्तन स्वीकार करने लगा है। विज्ञान सम्मत १०३ तत्त्वों में जिनमें ६२ तत्त्व स्थायी

हैं, जुड़ने व टूटने की प्रक्रिया चालू रहती है। कोयला (कार्बन) को जलाने से वह ऑक्सीजन के साथ संयुक्त होकर कार्बनडाइ ऑक्साइड बन जाता है। पानी का बर्फ व भाप बनना पर्याय परिवर्तन का स्पष्ट उदाहरण है। बिजली का बल्व जलाते ही विद्युत ऊर्जा के पुद्गल, प्रकाश व उष्मा के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। इस तरह के अनेक विज्ञान सम्मत उदाहरणों से पुद्गल का गलन-मिलन स्वभाव स्वतः सिद्ध है।

कमल—क्या पुद्गल के अलावा धर्मास्तिकाय आदि अन्य द्रव्यों में यह गुण नहीं पाया जाता ?

मुनिराज—सब द्रव्यों के अपने-अपने पृथक्-पृथक् गुण धर्म हैं। गलन मिलन स्वभाव रूप गुण-धर्म मात्र पुद्गल में ही पाया जाता है।

षड् द्रव्यों में मात्र पुद्गलास्तिकाय ही रूपी/आकारवान है, शेष द्रव्य अरूपी/आकार रहित हैं। आकाश, काल और पुद्गल इन तीन द्रव्यों को विज्ञान भी पूरी तरह समर्थन देता है। आकाश की तुलना स्पेस से, काल की तुलना टाइम से, पुद्गल की तुलना मीटर से विज्ञान में की जाती है।

धर्मास्तिकाय की तरह विज्ञान भी लम्बे समय तक ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करता रहा है। आधुनिक विज्ञान ईश्वर के बारे में एक मत नहीं है। विज्ञान यह तो मानता है कि मुंह से बोले गये शब्द एक सेकेण्ड में पूरे ब्रह्माण्ड का आठ बार चक्कर काट लेते हैं बशर्ते कि उनको इलेक्ट्रोमैग्नेटिक विकिरण में बदल दिया जाये। इसी कारण हम रेडियो और टेलीविजन पर विश्व के एक छोर से दूसरे छोर तक की आवाज और दृश्यों को पकड़ लेते हैं। जैन धर्म की मान्यता है कि धर्मास्तिकाय के सहारे हमारे द्वारा बोले गये शब्द पूरे लोक में फैल जाते हैं। इन्हीं निकटता के बावजूद भी गति और स्थिति में सहयोगी धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय की तरह विज्ञान किसी पदार्थ की सत्ता को एक मत से स्वीकार नहीं कर सका है। जीव के बारे में भी विज्ञान एक निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाया है।

तीसरा द्रव्य है—पुण्य। शुभ कर्म पुद्गलों का नाम पुण्य है। कई बार शुभ प्रवृत्ति को ही पुण्य का नाम दे दिया जाता है, किन्तु शुभ प्रवृत्ति का सुख्य फल तो आत्मा की विशुद्धि/कर्मों की निर्जरा है। गौण फल के रूप में पुण्य का बन्धन होता है। जैसे—खेती अनाज के

लिए की जाती है न कि तुष्टी के लिए। वह तो उसके पीछे स्वतः निष्पन्न हो जाती है।

विमल—क्या धर्म और पुण्य में अन्तर है ?

मुनिराज—बहुत अन्तर है। धर्म आत्मा की उज्ज्वल प्रवृत्ति है, मुक्ति का साधन है। पुण्य पौद्गलिक है, भौतिक सुख का कारण है और भव भ्रमण को बढ़ाने वाला है। पुण्य के नौ प्रकार हैं—१. अन्न पुण्य २. पान पुण्य ३. स्थान पुण्य ४. शय्या पुण्य ५. वस्त्र पुण्य ६. मन पुण्य ७. वचन पुण्य ८. काय पुण्य ९. नमस्कार पुण्य : वास्तव में ये भेद पुण्य के नहीं, पुण्य के कारणों के हैं।

मुनि को अन्न, पानी, स्थान, पाट-बाजोट, वस्त्र का दान करने से आत्मा उज्ज्वल होती है, कर्मों की अत्यधिक निर्जरा होती है। इनसे जिन पुण्य प्रकृतियों का बन्ध होता है, उनको क्रम से अन्न पुण्य, पान पुण्य, स्थान पुण्य, शय्या पुण्य व वस्त्र पुण्य कहते हैं।

कमल—पर मुनि को ही देने से पुण्य का बन्ध होता है, ऐसा प्रतिबन्ध क्यों ?

मुनिराज—इसके पीछे मुनि के संयम में पोषण देने व उसकी साधना में सहयोगी बनने का भाव प्रमुख है, इसलिए मुनि को ही यहां पात्र बताया गया है।

कमल—क्या दूसरों को देना पुण्य नहीं तो पाप है ?

मुनिराज—पाप शब्द नहीं कहकर हम उसे लौकिक दान कह सकते हैं। उसे हम आध्यात्मिक दान की कोटि में नहीं ले सकते हैं। आगे जो चार पुण्य हैं, वे मन, वचन व काया की सत्प्रवृत्ति और देव, गुरु व धर्म के प्रति नमस्कार से जुड़े हैं। इन क्रियाओं से कर्म निर्जरा व उसके साथ पुण्य का बन्ध होता है। एक बात यहां और ध्यान रखने की है कि इन सत्प्रवृत्तियों के पीछे जिन कर्म प्रकृतियों का बन्ध होता है वे जब तक उदय में न आए तब तक द्रव्य पुण्य कहलाते हैं और जब वे कर्म उदय में आते हैं तब भाव पुण्य कहलाते हैं।

कमल—क्या पुण्य की उत्पत्ति धर्म के बिना स्वतंत्र नहीं होती ?

मुनिराज—ऐसा सम्भव नहीं। अनाज के बिना अगर भूसी हो, आग के बिना अगर धुंआ हो तो धर्म के बिना पुण्य की उत्पत्ति हो सकती है।

अब हम चौथे पापतत्त्व के बारे में सुनो। अशुभ कर्म पुद्गलों का नाम पाप है। वह पाप अठारह प्रकार का है—१. प्राणातिपात, २. मृषावाद, ३. अदत्तादान, ४. मैथुन, ५. परिग्रह, ६. क्रोध, ७. मान, ८. माया, ९. लोभ, १०. राग, ११. द्वेष, १२. कलह, १३. अम्याख्यान

१४. पैशुन्य, १५. परपरिवाद, १६. रति अरति, १७. मायामृषा,
१८. मिथ्या दर्शन शल्य पाप ।

ये १८ भेद पाप बन्धन के कारणों के आधार पर बताए गये हैं । जैसे—झूठ बोलना आत्मा की असत्प्रवृत्ति है, अधर्म है । इसके साथ बन्धने वाला कर्म जब उदय में आता है तब मृषावाद पाप कहलाता है । उदय में जबतक न आये तबतक वह द्रव्य पाप है । इसी तरह अन्य पाप के भेदों को समझ लेना चाहिए ।

कमल—महामुने ! कलह पाप तक का अर्थ सहज गम्य है, उसके आगे आए हुए शब्दों का अर्थ कठिन है, स्पष्ट करने की कृपा करें ।

मुनिराज—अध्याख्यान पापका अर्थ है—किसी पर मिथ्या आरोप लगाने से आत्मा के साथ चिपकने वाला पुद्गल समूह । इसीतरह पैशुन्य अर्थात् चुगली करने से, पर परिवाद अर्थात् निंदा करने से, रति-अरति यानि असंयम में रुचि और संयम में अरुचि से, मायामृषा अर्थात् माया सहित झूठ बोलने से, मिथ्या दर्शन शल्य अर्थात् विपरीत श्रद्धा रूप आत्मा के साथ चिपकने वाला पुद्गल समूह ।

कमल—पुण्य की तरह क्या पाप की उत्पत्ति भी स्वतंत्र नहीं होती है ?

मुनिराज—अधर्म के साथ ही पाप की उत्पत्ति संभव है, स्वतन्त्र नहीं ।

पहले असत्प्रवृत्ति होती है तदनन्तर उसका अशुभ बन्धन पाप के रूप में होता है । पांचवां तत्त्व है—आस्रव । कर्म ग्रहण करने वाली आत्मा की अवस्था को आस्रव कहते हैं, उसके पाँच भेद हैं—

१. मिथ्यात्व आस्रव-विपरीत श्रद्धा रूप २. अवत आस्रव-अत्याग भावरूप ३. प्रमाद आस्रव-धर्म के प्रति अनुत्साह रूप ४. कषाय आस्रव-क्रोधादि विकार रूप, किन्तु याद रखना गुस्से में चेहरेपर तनाव व आँखों में लाली आती है वह सारा योग आस्रव है । कषाय आस्रव में केवल आत्मिक उत्तप्ति को लिया गया है ५. योग आस्रव—इसके दो भेद हैं (१) शुभ योग (२) अशुभ योग । मन, वचन काया की सत्प्रवृत्ति शुभयोग और असत्प्रवृत्ति अशुभ योग आस्रव है ।

कमल—पुण्य की चर्चा में आपने कहा था—शुभ प्रवृत्ति से आत्मा की विशुद्धि व कर्मों की निर्जरा होती है, यहाँ आप प्रवृत्ति को आस्रव के भेद में बता रहे हैं । इसका अर्थ हुआ प्रवृत्ति बन्धन की भी हेतु है । एक ही योग से कर्म का बंधन और कर्म का टूटना दोनों कैसे होंगे ?

मुनिराज—इसमें कहीं विरोध नहीं है । हम देखते हैं जिस तरह एक दीप जलता है तो प्रकाश होता है साथ में काजल भी उत्पन्न होता है उसी तरह

एक ही प्रकार का योग बन्धन व निर्जरा दोनों काम करता है। योगों की प्रवृत्ति के पीछे दो कारण हैं जिनसे दो कार्य निष्पन्न होते हैं। पहला—मोहनीय कर्म का उपशम, क्षय, क्षयोपशम जो कि कर्म तोड़ने में निमित्तभूत है, दूसरा—नाम कर्म का उदय भाव जो कि बन्धन का निमित्तभूत है।

कमल—बन्धन और निर्जरा साथ-साथ होगी फिर तो जीव की मुक्ति होना कभी संभव ही नहीं।

मुनिराज—कषाय जैसे जैसे क्षीण होने लगता है बन्धन भी वैसे वैसे स्वल्प होने लगता है, अशुभ योग का अस्तित्व फिर रहता नहीं, मात्र शुभ योग की प्रवृत्ति होती है, उसमें भी आत्मा की उज्वलता ज्यादा होती है, बन्धन बहुत स्वल्प होता है। बाह्य की रजों की तरह कर्म स्पर्श मात्र करते हैं पर टिक नहीं पाते हैं। एक अवस्था ऐसी भी आती है जब व्यक्ति सम्पूर्णतया कर्ममुक्त हो जाता है।

आस्रव के पन्द्रह भेद और किए जाते हैं जो योग आस्रव के अवान्तर भेद हैं—

१. प्राणातिपात आस्रव
२. मृषावाद आस्रव
३. अदत्तादान आस्रव
४. मैथुन आस्रव
५. परिग्रह आस्रव
६. श्रोत्रेन्द्रिय आस्रव
७. चक्षु इन्द्रिय आस्रव
८. घ्राणेन्द्रिय आस्रव
९. रसनेन्द्रिय आस्रव
१०. स्पर्श-नेन्द्रिय आस्रव
११. मन आस्रव
१२. वचन आस्रव
१३. काय आस्रव
१४. भण्डोपकरण आस्रव
१५. शुचिकुशाग्र मात्र आस्रव।

कमल—भण्डोपकरण व शुचि कुशाग्रमात्र आस्रव के अर्थ को समझाने की कृपा करें।

मुनिराज—पहला है—वस्त्र, पात्र आदि को यत्न से न रखने रूप। दूसरा है—स्वल्प मात्र भी दोष सेवन प्रवृत्ति रूप।

छट्टा तत्त्व है संवर। कर्मों का निरोध करने वाली आत्मा की प्रवृत्ति संवर है। संवर, आस्रव तत्त्व का प्रतिपक्षी है। आस्रव की तरह संवर के भी २० भेद हैं।

१. सम्यक्त्व संवर
२. व्रत संवर
३. अप्रमाद संवर
४. अकषाय संवर
५. अयोग संवर।

इनमें पहले दो संवर त्याग करने से होते हैं। अप्रमाद आदि तीन तपस्या व साधना के द्वारा प्राप्त उज्वलता से निष्पन्न होते हैं। मुख्य भेद ये पांच ही हैं। शेष पन्द्रह भेद व्रत संवर के अन्तर्गत आ जाते हैं। वे ये हैं—६. प्राणातिपात विरमण ७. मृषावाद विरमण

८. अदत्तादान विरमण ९. मैथुन विरमण १०. परिग्रह विरमण
 ११. श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह १२. चक्षु इन्द्रिय निग्रह १३. घ्राणेन्द्रिय निग्रह
 १४. रसनेन्द्रिय निग्रह १५. स्पर्शनेन्द्रिय निग्रह १६. मन निग्रह
 १७. वचन निग्रह १८. काय निग्रह १९. भण्डोपकरण रखने में अयतना
 न करना २०. शच्चिकुशाग्रमात्र दोष सेवन न करना ।

कमल—प्राणातिपात आदि आस्रवों को योग आस्रव के भेद बताए गए, वैसे ही प्राणातिपात विरमण आदि संवर के भेदों को अयोग संवर के नहीं कहकर व्रत संवर के भेद बताए गए इसका क्या कारण है ?

मुनिराज—इसका कारण है—प्राणातिपात आदि प्रवृत्तियाँ सब योग रूप हैं। इसीलिए उनको योग आस्रव के भेदों में लिया। अयोग संवर शुभ अशुभ दोनों तरह की प्रवृत्ति का निरोध होने पर घटित होता है। प्राणातिपात आदि प्रवृत्तियों का त्याग करने का अर्थ है अशुभ प्रवृत्ति को छोड़ना। शुभ प्रवृत्ति तो तेरहवें गुणस्थान तक चालू रहती है अतः प्राणातिपात विरमण आदि संवर व्रत संवर के भेद के रूप में लिये गये हैं।

सातवाँ तत्त्व है—निर्जरा। शुभ योग की प्रवृत्ति से होने वाली आत्मा की आंशिक उज्वलता निर्जरा है। इसके १२ भेद हैं—१. अनशन-उपवास आदि तपस्या २. ऊनोदरी—भूख से कम खाना ३. भिक्षाचरी—नाना प्रकार के अभिग्रहों से अपनी चर्चों को संयमित करना, इसका दूसरा नाम वृत्ति संक्षेप भी है ४. रस परि त्याग—दूध, दही आदि विगय का त्याग ५. काय क्लेश—आसनादि के द्वारा शरीर को साधना ६. प्रतिसंलीनता—इन्द्रियों को विषयों से दूर हटाना ७. प्रायश्चित्त—अतिचार विशुद्धि का उपाय ८. विनय—निरभिमानता ९. वैयावृत्त्य-आचार्य, तपस्वी, ऋण आदि की सेवा १०. स्वाध्याय—मर्यादापूर्वक सत्साहित्य का अध्ययन ११. ध्यान—एकाग्र चिंतन या योग निरोध १२. व्युत्सर्ग—विसर्जन करना। विसर्जन के कई प्रकार हैं, जैसे—वस्त्र, पात्र, शरीर आदि का विसर्जन। इनमें पहले छः भेद बाह्य तप के हैं और अन्तिम छः भेद आध्यन्तर तप के हैं।

कमल—इन भेदों का आधार क्या है ?

मुनिराज—अतःशन आदि छः निर्जरा के भेद शरीर से ज्यादा सम्बन्ध रखते हैं। वे बाहर से दिखाई देने वाले हैं। प्रायश्चित्त आदि छः भेद अन्तर्मान से ज्यादा सम्बन्धित हैं। लक्ष्य भेद से निर्जरा दो प्रकार की

होती है (१) सकाम निर्जरा—मोक्ष यानी आत्म विशुद्धि के लक्ष्य से की जाने वाली, (२) अकाम निर्जरा—अन्य किसी उद्देश्य से की जाने वाली ।

आठवां तत्त्व है—बंध । आत्म प्रदेशों के साथ कर्मों का एकीभूत हो जाना बंध है । इसकी चार अवस्थाएं हैं—१. प्रकृति बंध—कर्मों का स्वभाव । जैसे—ज्ञानावरणीय कर्म का स्वभाव ज्ञान को आवृत करना २. स्थिति बंध—कर्मों की स्थिति, कालावधि ३. अनुभाग बंध—कर्मों का तीव्र या मंद फल । ४. प्रदेश बंध—कर्म और आत्मा का एकीभाव । बंध शुभ अशुभ दोनों प्रकार का होता है ।

विमल—बंध व पुण्य-पाप में क्या अन्तर है, स्पष्ट करने की कृपा करें ।

मुनिराज—पुण्य-पाप जब तक आत्मा के साथ बंधे हुए हैं, वह अवस्था बंध है । जब वे बंधे हुए कर्म पुद्गल उदय में आते हैं तब पुण्य-पाप कहलाते हैं ।

नौवां तत्त्व है—मोक्ष । कर्मों की आंशिक उज्ज्वलता निर्जरा है और उनकी सम्पूर्ण उज्ज्वलता मोक्ष है । मोक्ष प्राप्ति के बाद आत्मा अपने स्वरूप में विराजमान हो जाती है । कर्ममुक्त आत्मा जन्म मरण से सदा के लिए छुटकारा पा लेती है ।

कमल—मोक्षप्राप्ति के बाद क्या मुक्त आत्मा संसार में पुनः नहीं आती ?

मुनिराज—संसार में रहने का कारण कर्म है, वह नहीं रहा तो मुक्त आत्मा संसार में पुनः कैसे आयेंगी ।

कमल—मुनिवर ! इस दुनिया में वे नहीं आती तो फिर कहां और किस रूप में रहती हैं ?

मुनिवराज—वे लोक के सर्वोपरि भाग मुक्ति में रहती हैं और ज्ञानदर्शनमय स्वरूप में अवस्थित रहती हैं ।

कमल—वहां खान-पान की क्या व्यवस्था रहती है ?

मुनिराज—शरीरधारी को खान-पान की व्यवस्था चाहिए । मुक्त आत्माएं तो अशरीरी/शरीर रहित होती हैं ।

विमल—मुनिवर ! मुक्त आत्माएं अगर संसार में नहीं आयेंगी तो क्या संसार एक दिन खाली नहीं हो जायेगा ?

मुनिराज—घबराने की जरूरत नहीं । संसार न आज तक खाली हुआ है और न भविष्य में भी होगा । मुक्त होने वाले जीव बहुत सीमित होते हैं, संसारी जीव तो उनसे अनन्त गुणा अधिक हैं ।

कमल—मुनिवर ! अगर वे मुक्त आत्माएं सदा मुक्ति में ही रहती हैं तो क्या एक दिन वह स्थान भर नहीं जायेगा ?

मुनिराज—यह आशंका वैसी ही है कि एक हॉल में एक बल्ब का प्रकाश है वहां सौ बल्बों का प्रकाश कैसे समायेगा । जैसा कि बताया गया मुक्त आत्माएं अशरीरी होती हैं, अपने शुद्ध चिन्मय स्वरूप में प्रतिष्ठित रहती हैं तब स्थान संकुलता की समस्या के लिए कहां अवकाश है । शरीर-विज्ञानी बताते हैं—मनुष्य के छोटे-से शरीर में छः सौ खरब कोशिकाएं होती हैं । आकारवान कोशिकाएं इतनी मात्रा में रह सकती हैं तो निराकार अनन्त आत्माएं एक स्थान में क्यों नहीं समा सकती ।

विमल—मोक्ष प्राप्ति के साधन कौन-से हैं ?

मुनिराज—मोक्ष प्राप्ति के चार साधन हैं—१. ज्ञान—पदार्थों को जानना, २. दर्शन—सम्यक् श्रद्धा, ३. चारित्र्य—संवर व निर्जरा की करणी, ४. तप—तपस्या, आतापना आदि ।

नौ तत्त्वों में मूल तो जीव-अजीव हैं, बाकि तत्त्व इन दो के ही भेद हैं । जैसे—आश्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये जीव के व पुण्य, पाप और बंध ये अजीव के हैं । जीव का बाधक तत्त्व है—अजीव । आश्रव यानी जीव की शुभ-अशुभ प्रवृत्ति । उस प्रवृत्ति के द्वारा जीव, अजीव के साथ बंधता है, वह अवस्था बंध है । बंधे कर्म जब उदय में आते हैं तब पुण्य-पाप कहलाते हैं । फिर संवर और निर्जरा की साधना के द्वारा जीव नौवें तत्त्व मोक्ष को पा लेता है । यह है नौ तत्त्वों का संक्षिप्त विश्लेषण ।

कमल—मुनिवर ! इन नौ तत्त्वों को आप कोई रूपक के द्वारा समझायें तो हमारे लिए सहजगम्य होगा ।

मुनिराज—आचार्य भिक्षु ने नौ तत्त्वों को तालाब के रूपक से समझाया है । जीव एक तालाब रूप है । अजीव अतालाब रूप है, तालाब का प्रतिपक्ष है । पुण्य-पाप तालाब से निकलते हुए पानी के समान है । आस्रव तालाब का नाला है । नाले को बन्द कर देने की तरह संवर है । चलीचकर या मोरी आदि से पानी को बाहर निकालने के समान निर्जरा है । तालाब के अन्दर का पानी बंध है । खाली तालाब से उष्मित मोक्ष है । नव तत्त्वों के ज्ञान का लक्ष्य है—जीव रूपी तालाब में घुसे हुए कर्म रूपी जल को हटा देना । जिस दिन हम खाली तालाब बन जायेंगे वह दिन धन्य होगा ।

कमल—आपने संक्षेप में नव तत्त्व घर विवेचन कर हमारे पर महती कृपा की ।

विमल—नव तत्त्व की विवेचना सुनकर धर्म के प्रति हमारी आस्था बढ़ी है,
स्वाध्याय की रुचि जगी है ।

सुनिराज—इस रुचि को तुम और बढ़ाते रहना । जैसे-जैसे तुम गहराई में
उतरोगे, वैसे-वैसे तुमको ज्ञान का अपूर्व खजाना उपलब्ध होगा ।
ठीक ही तो कहा है—किनारे पर खड़े रहने वाले को शंख और
सीपियाँ ही मिलती हैं, अनमोल रत्न तो समुद्र के अतल में उतरने
वालों को ही हस्तगत होते हैं ।

(दोनों वंदन कर घर की राह लेते हैं ।)

आत्मवाद

(रमेश का अध्ययन कक्ष, दीवार पर भगवान महावीर व आचार्य तुलसी की तस्वीरें टंगी हैं, सुरेश, राजेश व रमेश परस्पर बातचीत कर रहे हैं।)

राजेश—अरे मित्र ! नई खबर सुनी है क्या ?

सुरेश—क्या, क्या ?

राजेश—हमारे शहर में पहली बार रंसियन सर्कस लगी है। मेरा एक मित्र कुछ दिनों पूर्व बीकानेर से आया था। वहां वह इस सर्कस को देखकर आया था, बड़ी प्रशंसा कर रहा था। आज ७ बजे से १० बजे तक इसका पहला शो दिखाया जायेगा। साढ़े छः बजे ही तैयार हो जाना। हम समय से पहले पहुँचकर आगे की सीट पर बैठ जायेंगे।

सुरेश—बहुत अच्छा बताया। अवश्य चलेंगे।

राजेश—मित्र ! रमेश तुम भी तैयार रहना।

रमेश—मैं तो आज नहीं चल पाऊंगा।

सुरेश—क्यों भई, क्या कठिनाई है आज ?

रमेश—तुमको पता होना चाहिए, इस शहर में गत पांच दिनों से महान् घमँ गुरु आचार्य श्री तुलसी व युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ आये हुए हैं। रात के समय साढ़े आठ से दस बजे तक इन महान् विभूतियों के सारगर्भित प्रवचन होते हैं। ऐसे दुर्लभ अवसर से मैं स्वयं को एक दिन भी वंचित नहीं रखना चाहता।

सुरेश—अरे यार, एक दिन प्रवचन नहीं भी सुना तो कौन-सा नुकसान हो जायेगा। सुनो, यह सर्कस अगर नहीं देखोगे तो बाद में पछताओगे।

रमेश—तुमने कभी उनका प्रवचन सुना नहीं तभी ऐसी बातें कर रहे हो। प्रवचन को बेकार चीज समझ रहे हो। बात भी ठीक है, पैसे से प्राप्ति चीज का लोग मूल्यांकन करना जानते हैं, प्रवचन तो सुप्त में ही सुनने को मिल जाता है। (एक क्षण रुक कर) मेरा तुम दोनों को भी सुझाव है कि यह सर्कस तो दो दिन बाद ही देख लेना। ये महान् गुरु कल तक यहाँ रहने वाले हैं। तुम भी मेरे साथ चलो और उनके दो प्रवचनों को सुन लो, स्वतः ही प्रवचन के महत्त्व को जान जाओगे।

राजेश—प्रवचन का विषय क्या है ?

रमेश—आज के प्रवचन का विषय है—“आत्मा से परमात्मा बनने की प्रक्रिया ।”

राजेश—(मुंह मचकोड़ते हुए) व्यर्थ है प्रवचन । तुम जैसे उनके अनुयायी और अन्धभक्त ही ऐसा प्रवचन सुनने आते होगे, हमारे जैसे व्यक्तियों का ऐसे विषय में कोई आकर्षण नहीं ।

रमेश—व्यर्थ है या सार्थक यह तो प्रवचन सुनकर कहना । जिसके बारे में तनिक भी जानकारी नहीं उस पर तत्काल निर्णय दे देना कोई बुद्धिमानी नहीं है ।

राजेश—अरे, कोई जीवन से सम्बन्धित विषय होता तो अवश्य सुनता परन्तु यह तो आत्मा-परमात्मा की बात है । ये तो शास्त्रों के गपोड़े हैं । पुराणपन्थी लोगों को जाल में फँसाने का तरीका है । मेरी दृष्टि में तो विषय ही गलत है ; आत्मा यदि नहीं है तो परमात्मा बनने की बात तो आकाश में फूल खिलाने जैसी है ।

रमेश—अरे वाह ! आत्मा ही नहीं तो फिर हम क्या जड़ हैं ? हमारा तो जीवन ही आत्मा पर टिका हुआ है । यह शरीर भी जब तक आत्मा है तभी तक हमारे लिए उपयोगी है । आत्मा जिस दिन इस शरीर से निकल जायेगी उस दिन सब क्रियायें बन्द हो जायेंगी । फिर यह शरीर जिसको तुम सब कुछ मानते हो वह यहीं पड़ा रहेगा और आत्मा नये शरीर को धारण करने के लिए निकल पड़ेगी ।

राजेश—लगता है पूरी तरह भरमाये हुए हो । अरे, यह तो पाँच महाभूतों का पिण्डमात्र है । ये जब परस्पर मिलते हैं तो शरीर में चेतना का संचार होता है और ये जब बिखर जाते हैं तो शरीर चेतना रहित हो जाता है । आत्मा नाम की कोई स्वतन्त्र वस्तु है ही नहीं ।

रमेश—पाँच महाभूत जो स्वयं अचेतन हैं वे मिलकर कैसे चैतन्य को पैदा कर सकेंगे ? क्या मिट्टी के कणों से भी तेल निकल सकता है और क्या पानी में से मक्खन को मिकाला जा सकता है ?

राजेश—पाँच महाभूतों को तुम भूले मत मानो पर आत्मा है, यह भी कैसे सिद्ध कर सकते हो ? क्या कभी उसको आँखों से देखा है ? सुझे अगर साक्षात् दिखादो तो मैं आत्मा को मान सकता हूँ ।

रमेश—आत्मा को इन चर्म चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता । उसको देखने के लिए तो ज्ञान की आँख चाहिए । आकार वाले पदार्थ ही हम आँखों से देख सकते हैं । इनमें भी बहुत सारे सूक्ष्म पदार्थ ऐसे हैं जिनको

देखने में आँख असमर्थ रहती है। फिर आत्मा तो निराकार (आकार-रहित) है। बुद्धिगम्य नहीं, अनुभूतिगम्य है।

राजेश—जो निराकार है वह अदृश्य है और जो अनुभूतिगम्य है वह बुद्धि की पहुँच से परे है, ऐसे में आत्मा पर विश्वास कैसे किया जा सकता है ?

रमेश—बहुत सारे पदार्थ ऐसे हैं जिनकी दृश्य जगत् में कोई सत्ता नहीं है, जो आकाररहित हैं और ऐसे भी हैं जो व्यक्ति की समझ से परे हैं केवल अनुभूतिगम्य ही हैं फिर भी उनको इन्कार नहीं किया जा सकता। अपने प्रिय मित्र का मिलना और बिछुड़ना व्यक्ति के हर्ष और विषादका कारण बनता है, कोई कहे, उस खुशी और मायूसी को हाथ में लेकर दिखाओ तो क्या दिखाया जा सकता है ? किसी को रात में कोई सुन्दर स्वप्न आता है, कोई कहे उसे प्रत्यक्ष दिखाओ तो क्या यह संभव है ? दिन के प्रकाश में ग्रह, नक्षत्र व तारे सब अदृश्य हो जाते हैं तो क्या वे समाप्त हो जाते हैं ? अतीत में होने वाले दादा, पड़दादा आज हमारे सामने नहीं हैं किन्तु उनका होना असंदिग्ध है। ऐसे और भी बहुत सारे प्रसंग हैं जिनको ज्ञानी पुरुष साक्षात् देख सकते हैं, सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति उनको समझ ही नहीं पाता फिर भी उनको नकारा नहीं जा सकता। अगर नकार दिया जाए तो व्यवहार का ही लोप हो सकता है। इसलिए निराकार और अनुभूतिगम्य होने से आत्मा के अस्तित्व में संदेह नहीं किया जा सकता।

सुरेश—एक प्रश्न मेरा भी है रमेश ! तुम आत्मा को निराकार और अनुभवगम्य बता रहे हो पर हमारे शरीर का तो एक निश्चित आकार है। इस आकार वाले शरीर में वह निराकार आत्मा कहाँ रहती है ?

रमेश—एक छोटीसी कहानी से मैं इस बात को समझाऊँगा। एक बादशाह था, जो आत्मा परमात्मा में विश्वास नहीं करता था। उसका वजीर परम आस्तिक था। प्रति दिन कुछ समय धार्मिक उपासना व ईश्वर भक्ति में लगाया करता था। एक दिन बादशाह ने अपने वजीर से कहा—वजीर ! तुम आत्मा में परम विश्वास रखते हो, मुझे बताओ कहाँ रहती है वह आत्मा ? वजीर के लिए यह प्रश्न अजीब पहेली था। तत्काल उत्तर न दे पाने के कारण वजीर ने तीन दिन का समय माँगा। बादशाह से इजाजत लेकर वजीर अपने घर पर आया। अब वह रात दिन एक ही चिन्तन में खोया रहता कि बादशाह को क्या उत्तर दिया जाए ? उसका लड़का बड़ा होशियार था। अपने पिता को यों गुम-शुम देखकर समझ गया कि कोई न कोई

सलमन भरी बात पिताश्री के दिमाग में घुमड़ रही लगती है। उसने अपने पिता से सारी बात की जानकारी ली। लड़के ने कहा — पिताश्री ! इस प्रश्न का उत्तर तो आप मेरे पर छोड़ दीजिए और बादशाह को बोल दें, इस प्रश्न का उत्तर मैं क्या, मेरा लड़का ही दे देगा।

राजेश—लड़का अपने पिता से भी ज्यादा बुद्धिमान था ?

रमेश—हाँ, मित्र।

राजेश—फिर लड़के ने क्या किया ?

रमेश—निश्चित दिन लड़का बादशाह के पास हाजिर हुआ। बादशाह से उसने एक बर्तन में दूध मंगवाया। लड़का दूध के बर्तन को हाथ में लेकर कुछ क्षण अपलक निहारता रहा। बादशाह उसके इस अभिनय से कुछ समझ नहीं पाया। उसने लड़के से कहा—अरे, दूध में क्या गिर गया जो इतनी देर से देख रहे हो ? लड़के ने कहा—गिरा तो कुछ भी नहीं पर मैंने सुना है—दूध में घी होता है, उसी को ढूँढ रहा हूँ। बादशाह ने कहा—बड़ा मूर्ख लड़का है, घी क्या यों दिखाई देता है ? घी पाने के लिए तो दूध को जमाना पड़ता है फिर उसे मथना पड़ता है, तब मक्खन निकलता है, उसके बाद उसे तपाना पड़ता है, तब कहीं घी तैयार होता है। लड़के ने कहा—तो क्या घी अभी इसमें नहीं है ? बादशाह ने कहा—घी तो इसमें है पर अभी अदृश्य है। लड़के ने कहा—बादशाह ! आपके प्रश्न का उत्तर भी आपको मिल गया होगा। घी की तरह ही आत्मा हमारे इस शरीर के कण कण में विद्यमान है, पर उसको पाने के लिए मन को स्थिर करके ध्यान लगाना पड़ता है, तपस्या और साधना करनी पड़ती है। बादशाह को अपने प्रश्न का समाधान मिल गया।

मैं सोचता हूँ इस कहानी से तुमको भी उत्तर मिल गया होगा कि जिस तरह फूलों में सुगन्ध, तिलों में तेल, दूध में घी रहता है उसी तरह आत्मा भी शरीर के अणु-अणु में विद्यमान है। आत्मा का शुद्ध रूप निराकार है पर संसारी आत्मा जब तक कर्म शरीर से जुड़ी है तब तक वह निराकार नहीं रहती है। किन्तु जिस दिन सब आवरण हट जायेंगे उस दिन वह अपने निराकार व शुद्ध स्वरूप में विराजमान हो जाएगी।

राजेश—मित्र ! उस निराकार और आत्मा की शुद्ध अवस्था को जानने का भी क्या कोई तरीका है ?

रमेश—निराकार स्वरूप को इन चर्म चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता और न किसी वैज्ञानिक उपकरण के सहारे भी। ज्ञान नेत्र उद्घाटित होने पर ही उसे जाना/देखा जा सकता है। भगवान ने उस अवस्था का वर्णन करते हुए बताया है—

“सर्वे सरा णियट्ठंति, तक्का जत्थण विज्जई, मई तत्थ ण गाहिया।”
सब स्वर जहां से लौट आते हैं, तर्क की जहां तक पहुंच नहीं है और बुद्धि का जो विषय नहीं है ऐसी उस अवस्था को केवल अनुभव ही किया जा सकता है। पहाड़ की तलहटी में खड़ा व्यक्ति पहाड़ पर क्या दृश्य है, जान नहीं सकता। ऊपर चढ़कर ही वह उन नयनाभिराम दृश्यों को देख सकता है। वैसे ही आत्मा के स्वरूप को ज्ञान के शिखर पर आरूढ़ होकर ही जाना जा सकता है।

राजेश—तुम ज्ञान के जिस शिखर पर आरूढ़ होने की बात कह रहे हो वह तो कुछेक योगियों के लिए ही संभव है पर आधुनिक विज्ञान की पहुँच तो सर्वत्र है, क्या विज्ञान द्वारा आत्मा का अस्तित्व स्वीकृत है ?

रमेश—विज्ञान इस विषय में एक मत नहीं है। जैन दर्शन सम्मत आत्मस्वरूप को वह भले नहीं मानता हो पर जीवन के आधारभूत सूक्ष्मत्व को वह अवश्य स्वीकार करता है। शरीर और इन्द्रियों से आगे भी कोई एक ऐसी महाशक्ति है जो हर प्राणी में विद्यमान है।

कुछ वैज्ञानिकों ने आत्मा को सिद्ध करने का प्रयत्न भी किया है। अमेरिका के डॉ॰ विलियम मैकडूगल ने एक ऐसी मशीन का निर्माण किया जो ग्राम के हजारों भाग तक को बता सके। उन्होंने उस मशीन को मरणासन्न व्यक्ति से जोड़ दिया। वह रोगी जब तक जीवित रहा, मशीन की सुई एक बिन्दु पर स्थिर थी, ज्यों ही रोगी के प्राण निकले, सुई उस बिन्दु से पीछे हट गई। मरने के साथ ही रोगी का वजन आधा छटांक घट गया। मैकडूगल ने और भी ऐसे प्रयोग किये और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जीवन का आधारभूत तत्त्व अतिसूक्ष्म है और उसका निश्चित वजन भी है।

स्वीडिश के एक वैज्ञानिक डॉ॰ नेल्स जैकबसन ने भी इसी तरह का प्रयोग किया। उसने मरणोन्मुख व्यक्ति को अत्यधिक संवेदनशील तराजू पर लेटा दिया, जैसे ही उसकी मृत्यु हुई तराजू की सुई २१ ग्राम पीछे चली गई। डॉ॰ जैकबसन ने बताया—मरते समय शरीर से एक तत्त्व निकलता है जो भारयुक्त होता है और वही आत्मा है।

राजेश—क्या जैन दर्शन भी आत्मा को भारयुक्त मानता है ?

रमेश—तीर्थंकरों ने आत्मा के लिए कहा है—“अरूबी सत्ता” उस आत्मा का कोई रूप/आकार नहीं है। अमूर्त पदार्थ का कोई वजन नहीं होता। यह शुद्ध अवस्था की दृष्टि से प्रतिपादन किया गया है। विज्ञान के मंतव्य को जैन दर्शन सांसारिक आत्मा की दृष्टि से स्वीकार करता है। संसारी आत्मा शुद्ध नहीं होती, वह सदा शरीर के साथ जुड़ी रहती है। स्थूल शरीर समाप्त होने पर भी तेजस् और कार्मण ये दो अतिसूक्ष्म शरीर सदा साथ में रहते हैं। मृत्यु होने पर भी इन दो शरीरों से सम्बन्ध नहीं छूटता। इसीलिए संसारी आत्मा को किसी दृष्टिसे मूर्त/आकारवान् कहा गया है। इस दृष्टि से विज्ञान की खोजों के साथ जैन दर्शन का सामञ्जस्य स्थापित किया जा सकता है।

सुरेश—वह महाशक्ति जिसे जैन दर्शन आत्मा कहता है और वैज्ञानिकों ने भी जिसे किसी रूप में स्वीकार किया है, क्या उसका उत्पादन मस्तिष्क से नहीं होता है ?

रमेश—वैज्ञानिकों ने इसकी भी खोज की है। रूस के एक वैज्ञानिक ने कुत्ते पर प्रयोग किया। उसने कुत्ते के मस्तिष्क को निकाल दिया, फलस्वरूप वह जड़वत् हो गया। तदनन्तर कुत्ते को होश नहीं रहा, न वह मालिक को पहचान सका और न सामने भोजन रखने पर भी उसने तनिक ध्यान दिया। इंजेक्शनों के द्वारा उसे पोषक तत्व दिये जाते।

सुरेश—इस प्रयोग से मेरे तर्क की ही पुष्टि होती है मित्र !

रमेश—इसको गहराई से समझने का प्रयास करो। उस महाशक्ति या चेतना का उत्पादक मस्तिष्क नहीं हो सकता क्योंकि मस्तिष्क निकालने के बाद भी कुत्ते में चेतना के लक्षण विद्यमान थे वह, जीवित रहा। शारीरिक, मानसिक स्थूल क्रियाएँ/बंद हो जाने पर भी सूक्ष्म क्रियाएँ जैसे रक्तसंचरण, श्वासोच्छ्वास की क्रिया, शारीरिक पोषण बराबर चल रहा था।

संसार में इस तरह के अगणित प्राणधारी हैं जिनके मस्तिष्क है ही नहीं लेकिन वे चेतनायुक्त हैं। वनस्पति में जीवत्व है पर उसमें दिमाग नहीं है। एक पागल आदमी का मस्तिष्क निष्क्रिय हो जाता है तो भी उसमें चेतना विद्यमान रहती है। इसलिए मस्तिष्क को चेतना का उत्पादक या आत्मा का स्थान नहीं कहा जा सकता। वह मानसिक चेष्टाओं व स्मृति का साधन मात्र है। चेतना आत्मा का स्वभाव है और वह शरीर में सर्वत्र व्याप्त है। निराकार होने से उस शुद्ध अवस्था

को यन्त्रों से देखा नहीं जा सकता, ज्ञान नेत्र के द्वारा ही अनुभव किया जा सकता है ।

राजेश—आत्मा को यन्त्रों से नहीं देखा जा सकता पर कुछ लक्षण तो होंगे जिससे आत्मा की हमको प्रतीति हो सके ।

रमेश—कई बार ऐसा होता है, हम किसी वस्तु को प्रत्यक्ष नहीं देखते हैं किन्तु बाह्य लक्षणों से उसका होना निश्चित कर लेते हैं । जैसे—आकाश में धुँआ देखकर अग्नि का निश्चय कर लेते हैं । भौंहरे में बैठा आदमी रोशनदान से बाहरी उजाले को देखकर अनदेखे सूर्य का ज्ञान कर लेता है । वैसे ही कुछ लक्षणों से हमें आत्मा की निश्चित प्रतीति हो जाती है । पहला लक्षण—मैं सुखी हूँ या दुःखी हूँ, इस तरह का अनुभव आत्मा को ही हो सकता है, शरीर को नहीं । दूसरा लक्षण—सुख की प्राप्ति और दुःख की निवृत्ति के लिए प्रयास करना । तीसरा लक्षण—चलना, खाना, देखना, सूँघना आदि शरीर की क्रियाएँ, ये सब आत्मा के अस्तित्व को उजागर करती हैं ।

सुरेश—पर ये सब काम तो इन्द्रियों व हाथ, पैरों द्वारा सम्पन्न होते हैं, आत्मा को बीच में लाना क्या जरूरी है ?

रमेश—कितनी अधूरी समझ है । जैसे—स्वीच ऑन करने मात्र से बल्ब नहीं जल जाता है अगर पावर हाउस से बिजली का संचार न होता हो । वैसे ही हाथ, पाँव, इन्द्रियां कुछ भी काम नहीं कर सकती अगर शरीर में चेतना का संचरण न हो । ये इन्द्रियां, हाथ और पैर तो साधन मात्र हैं । अगर संचालक आत्मा नहीं है तो ये सब निष्क्रिय हो जाते हैं । मृत व्यक्ति के हाथ, पैर भी क्या कोई प्रयोजन साध सकते हैं ।

सुरेश—यह तो खैर सच है कि जीवित व्यक्ति में ही ये क्रियाएँ दृष्टिगत होती हैं, मृत में नहीं ।

रमेश—अब आगे सुनो, आत्मा का चौथा लक्षण है—ग्रहण किये हुए पदार्थों की चिरकाल तक स्मृति बनाए रखना । पाँचवाँ लक्षण है—निर्णय देने की क्षमता । छठा लक्षण है—हँसना, रोना, खेलना आदि क्रियाओं का सम्पादन ।

राजेश—पर ये सब कार्य तो कम्प्यूटर और रोबोट भी आदमी से ज्यादा बेहतर कर सकते हैं । बल्कि कहना चाहिए आदमी इनकी क्षमता के सामने पिछड़ गया है । आदमी से भूल हो सकती है पर कम्प्यूटर कभी भूल नहीं करता । आदमी गलत निर्णय दे सकता है पर एक

कम्प्यूटर ऐसा नहीं कर सकता। रोबोट मनुष्य की तरह सब क्रियायें करता है। झाड़ू लगाना, भोजन पकाना, परोसना आदि कामों में रोबोट का आश्चर्यकारी उपयोग है। अब तो युद्ध-क्षेत्र में सैनिकों का कार्यभार भी रोबोट संभालनेवाला है। इन सब लक्षणों से क्या कम्प्यूटर और रोबोट की तरह आत्मा में अजीबत्व सिद्ध नहीं हो जाता।

रमेश—नहीं, नहीं। कम्प्यूटर और रोबोट तो यन्त्र हैं, मनुष्य के द्वारा संचालित है। आत्मा चैतन्यमय है, कोई मशीन इसका संचालन नहीं करती है। अगर यन्त्र में कहीं कोई खराबी हो जाये तो कम्प्यूटर गलत निर्णय भी दे सकता है। एक बार एक अमरीकी कम्प्यूटर ने खराबी के कारण विश्वयुद्ध की घोषणा कर दी थी। तत्काल भूल को जान लिया गया नहीं तो इसका भारी दुष्परिणाम भी हो सकता था। एक वैज्ञानिक कहानी पढ़ी है। कहते हैं कि एक विज्ञान का विद्यार्थी था। उसके मन में रोबोट बनाने की धुन सवार हो गई। रोबोट पूरा तैयार हो गया। परीक्षण के लिए उसने बटन दबाया। तत्काल रोबोट तीव्र गति से चल पड़ा। चलने के साथ ही उसके हाथ भी ऊपर-नीचे हो रहे थे। अब जो भी उसके सामने आता, उसके शरीर पर वह चोट करता। उसको रोक पाना प्रयोगकर्ता विद्यार्थी के भी वश की बात नहीं थी। विद्यार्थी चिल्लाया—अरे, इसके सिर पर बटन है, उसे कोई दबाओ, नहीं तो यह वश में नहीं आने वाला है। जैसे-तैसे ऊपर चढ़कर किसी ने उसका बटन दबाया तब वह रुका।

कम्प्यूटर और रोबोट बहुत सारा मनुष्य का काम करते हैं पर वे स्वप्रेरित नहीं हैं, परप्रेरित हैं। बिना मानव के प्रयोग किये ये कोई प्रवृत्ति नहीं कर सकते। इसी तरह जिस मशीन का जो कार्य निश्चित है वह वही काम कर सकती है, मनुष्य की तरह वह इच्छानुसार काम नहीं कर सकती है। ये मशीनें विद्युत् शक्ति या बैटरी प्रणाली के द्वारा काम करती हैं पर आत्मा अपनी चैतन्य शक्ति के द्वारा ही काम करती है। शक्ति का स्रोत बन्द होते ही कम्प्यूटर का काम रुक जाता है। इन सब कारणों से कम्प्यूटर और रोबोट से आत्मा की तुलना नहीं की जा सकती, न उसमें अजीबत्व भी सिद्ध किया जा सकता है।

आत्मा का सातवां लक्षण है—सजातीय की उत्पत्ति। संसार के समस्त

प्राणी अपने समान जातीय प्राणी को उत्पन्न करते हैं। अपनी सन्तति को बढ़ाते हैं। कम्प्यूटर या अन्य मशीनें कभी अपने समान प्रजाति को उत्पन्न नहीं करती।

आत्मा का आठवां लक्षण है—आहार, भय आदि दस संज्ञाओं की अवस्थिति। आहार आदि संज्ञायें आत्मवान प्राणी में ही मिलती हैं, किसी अजीव वस्तु में नहीं। रोबोट कभी भोजन नहीं करता है। इसी तरह अन्य संज्ञाओं की बात समझनी चाहिए।

राजेश—गाड़ी में पेट्रोल व डीजल डालना पड़ता है, क्या यह उसका भोजन नहीं है ?

रमेश—उचित है तुम्हारी जिज्ञासा। पेट्रोल व डीजल डालने से गाड़ी चलती है, इसी तरह बहुत सारी मशीनें भी जिनमें समय-समय पर तेल डालना पड़ता है, पंखों में कार्बन डाला जाता है, और उदाहरण भी हो सकते हैं पर इससे यह नहीं कहा जा सकता कि वे भोजन करते हैं। न उनमें आहार की प्रक्रिया देखी जाती है और न उनको भूख की अनुभूति भी होती है। आत्मवान प्राणी क्षुधापूर्ति के लिए स्वयं प्रयत्न करता है। शरीर में कहीं त्रण या कोई प्रकार की रुग्णता हो तो प्राणी उसके निवारण हेतु पुरुषार्थ भी करता है जबकि गाड़ी या कोई मशीन अपनी क्षति पूर्ति के लिए किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करती।

आत्मा का नौवां लक्षण है—जिज्ञासा व आकांक्षा का होना। हर तत्त्व को जानने की भावना व कुछ नया पाने की इच्छा आत्मा में ही पायी जाती है, जड़ में नहीं।

ऊपर बताये गये सभी आत्मा के व्यावहारिक लक्षण हैं। निश्चय में आत्मा का लक्षण है उसकी चेतना शक्ति। अस्तित्व की दृष्टि से प्राणी मात्र में चेतना की अनन्त शक्ति है पर अभिव्यक्ति की असमानता के कारण किसी की चेतना कम विकसित होती है, किसी की ज्यादा।

सुरेश—हर प्राणी में आत्मा है फिर सभी प्राणियों में चेतना की समान अभिव्यक्ति क्यों नहीं होती ?

रमेश—ज्ञान व मोह की प्रबलता व न्यूनता इसमें निमित्तभूत बनती है। फिर भी चेतना के न्यूनतम लक्षण तो हर प्राणी में उपलब्ध होंगे ही। हमारे आचार्यों ने कहा है—केवल ज्ञान का अनन्तवां भाग हर जीव में

विकसित रहता ही है अगर इतना ही न हो तो जीव-अजीव में अन्तर ही न रहे ।

सुरेश—अनन्तशक्ति सम्पन्न आत्मा स्वतन्त्र है या परतन्त्र ?

रमेश—सुक्त आत्मा पूरी तरह स्वतन्त्र है, कोई भी उस पर कर्मों का बन्धन नहीं है । संसारी आत्मा स्वतन्त्र, परतन्त्र दोनों तरह की है । वह कर्म से जुड़ी हुई है, कर्मों का ग्रहण और उनका भोग ये दो प्रवृत्तियाँ उसमें पायी जाती है । कर्म ग्रहण में हर प्राणी स्वतन्त्र है पर कर्मों को भोगने में वह परतन्त्र है । किसी ने सुरापान किया उसमें व्यक्ति की स्वतन्त्रता है पर उसका परिणाम भोगने में वह परतन्त्र है । किसी से कर्ज लेने में व्यक्ति स्वतन्त्र है पर उसे वापस भुगताने में वह परतन्त्र है । इसी तरह कर्म भोग की बात को समझना चाहिए ।

कर्म भोग की बात भी निकाचित बन्धन सापेक्ष कही गई है । ऐसा कर्मों का ग्रहण जो तीव्र आसक्ति या क्रूरता के द्वारा हुआ हो । दलिक बन्धन अर्थात् कर्मों के ढीले बन्धन को तपस्या, स्वाध्याय, सेवा आदि सत्प्रवृत्ति के द्वारा आत्म प्रदेशों में ही भोग लिया जाता है । यह वैसा ही है जैसे गरिष्ठ भोजन हो जाने से अजीर्ण हो गया तो व्यक्ति ने कोई ऐसी दवा ले ली कि उसका कुप्रभाव शरीर पर नहीं हुआ । तपस्या आदि पुरुषार्थ अगर आत्मा नहीं करती, उस हालत में कर्म भोग के लिए वह पूरी तरह परतन्त्र है ।

राजेश—मित्र ! एक जिज्ञासा शेष रह गई है कि क्या सभी प्राणियों में आत्मा समान है ?

रमेश—चेतना के विकास में न्यूनाधिकता हो सकती है पर आत्मा चाहे चींटी की हो चाहे हाथी की, सब में समान है । असंख्य आत्म प्रदेश सब में समान रूप से व्याप्त हैं ।

सुरेश—क्या बाहरी आकार के आधार पर आत्मा में संकोच या विस्तार नहीं होता ?

रमेश—आत्मा में संकोच व विस्तार प्राणी के बाहरी आकार के आधार पर होता है पर आत्म प्रदेश न घटते हैं न बढ़ते हैं । इसकी हम दीपक के प्रकाश से तुलना कर सकते हैं । दीपक को बड़े हाल में रखते हैं तो उसका प्रकाश पूरे हाल में फैल जाता है, छोटी कोटड़ी में रखें तो वह उस कोटड़ी तक सिमट जाता है, एक घड़े के नीचे रखें तो प्रकाश

घड़े के आकार जितना हो जाता है और ढक्कन के नीचे रखें तो वह एकदम सीमित क्षेत्र में समा जाता है ।

इसी तरह आत्म प्रदेश एक समान होने पर भी उनमें संकोच व विस्तार होता रहता है । एक व्यक्ति बच्चा, जवान, बूढ़ा इस तरह नाना अवस्थाओं को प्राप्त करता है पर आत्मा उसमें एक ही रहती है सिर्फ प्रदेशों में संकोच विस्तार होता रहता है ।

राजेश—तुम तो गड़े हुए मतीरे के समान निकले । हमको पता ही नहीं था तुम्हारा ज्ञान इतना गहरा है ।

सुरेश—इतने वर्षों से साथ में रहते हैं पर पहली बार जाना है कि हमारा मित्र जैन दर्शन का अच्छा विद्वान है ।

रमेश—मैं कोई विद्वान नहीं हूँ, जैन दर्शन का विद्यार्थी मुझे अवश्य कह सकते हो । सौभाग्य से मैंने जैन कुल में जन्म लिया, घर पर जैन धर्म का प्रचुर साहित्य है । पिताजी को पढ़ते देखकर मुझ में भी रुचि जागृत हुई और अब तक मैं कई पुस्तकों को पढ़ चुका हूँ ।

सुरेश—क्या जैन दर्शन की जानकारी हेतु कोई व्यवस्थित पाठ्यक्रम भी है ?

रमेश—इसी उद्देश्य से जैन विश्वभारती अनेक वर्षों से एक सप्ताहिक पाठ्यक्रम चला रही है । इसके साथ ही पत्राचार पाठमाला का भी दो वर्षों का विशेष कार्यक्रम चालू है । मैं स्वयं पत्राचार पाठमाला की परीक्षा दे चुका हूँ और सप्ताहिक पाठ्यक्रम भी पूरा कर चुका हूँ ।

सुरेश—तभी तो हमको पराजित कर दिया ।

राजेश—मित्र ! बड़ा उपकार किया तुमने । हम तो इस शरीर को ही सब कुछ मान रहे थे । आत्मा परमात्मा के नाम से ही हमको एलर्जी थी । तुम ने हमारी आँखों से पर्दा हटा दिया ।

सुरेश—(रमेश से)—तुम्हारी इस सारगर्भित चर्चा से हमारे मन में भी प्रवचन सुनने का आकर्षण जगा है । सर्कस तो कई दिन चलेगा, फिर देख लेंगे । ऐसे महान पुरुषों के प्रवचनों का लाभ हम नहीं गंवायेंगे ।

पुनर्जन्म

(संतों का स्थान, मुनि आसन पर विराजमान हैं, एक महिला संतोष अपने पुत्र महेन्द्र के साथ संतों की वन्दना कर रही है ।)

मुनिराज—आज मध्याह्न में कैसे आना हुआ बहिन ! और साथ में यह लड़का कौन है ?

संतोष—मुनिराज ! यह मेरा बड़ा बेटा महेन्द्र है । इसको आपके श्रीचरणों की सन्निधि में लाई हूँ ।

मुनिराज—लड़का तो ठीक लगता है ।

संतोष—वैसे तो ठीक है, लेकिन.....।

मुनिराज—लेकिन,.....क्या बात है कहो ।

संतोष—मुनिवर ! आपको तो पता ही है कि हमारा पूरा परिवार धर्म के रंग में रंगा हुआ है । दो वर्ष पहले तक इसमें भी धर्म के संस्कार थे । अब यह केरल में क्रिश्चियन कालेज में पढ़कर आया है । वहाँ कम्प्यूनिस्ट विचारधारा वाले लोगों के बीच रहकर यह पूरा बदल गया है । बकालात का अध्ययन कर रहा है, इसी कारण यह हर बात में तर्क करता है । धर्म से तो मानो इसको नफरत हो गई है । मैं सामायिक करती हूँ तो मेरी खिन्ही उड़ाता है । उपवास करती हूँ तो मुझसे कहता है—क्यों भूख निकालती हो, ये त्याग बेकार है, आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक की बातें शास्त्रों की गप्पें मात्र हैं । आप देखिये १० दिन से बराबर इसे आपके दर्शनों के लिये प्रेरणा दे रही हूँ किन्तु उत्साह ही नहीं है इसमें । आज भी आपके दर्शन करने के लिये नहीं, मेरे संकल्प को पूरा करने व मुझे राजी करने के लिये आया है ।

मुनिराज—(महेन्द्र से)—क्यों भई ! यही बात है ?

महेन्द्र—झूठ क्यों बोलूँ, बात ऐसी ही है । मां मुझे कई दिनों से कह रही थी और आज तो इसने संकल्प कर लिया कि यदि तू संतों के दर्शन नहीं करेगा तो मैं भोजन नहीं करूँगी । ऐसी स्थिति में आना जरूरी हो गया ।

मुनिराज—चाहे किसी तरीके से आना हुआ, तुम यहां आए अच्छी बात है !
अब बताओ—क्या त्याग, तपस्या व साधना तुम्हारी दृष्टि में
बेकार है ?

महेन्द्र—हां, मेरा ऐसा ही मानना है ।

मुनिराज—इसके पीछे तुम्हारा क्या चिन्तन है ?

महेन्द्र—मेरी दृष्टि में मनुष्य का यह शरीर सुख भोगने के लिये है दुःख पाने
के लिये नहीं, खाने को सब मिलता है, फिर क्यों उपवास करें,
मनोरंजन के प्रचुर साधन हैं फिर क्यों संयम व साधना करें। परलोक
सुधारने की आशा में इस जीवन को क्यों खराब करें। फिर किसने
देखा है परलोक को ।

मुनिराज—प्राप्त पदार्थों को छोड़ना क्या दुःखों को निमन्त्रण देना है ?

महेन्द्र—इसके अतिरिक्त क्या कहा जा सकता है ? पदार्थ को भोगने का सुख
प्रत्यक्ष और अनुभवगम्य है, उसे कैसे नकारा जा सकता है ।

मुनिराज—तब तो दुनिया में सबसे अधिक अभाग्य हम हैं जिन्होंने सब कुछ
त्यागकर अकिञ्चनता का रास्ता स्वीकार किया है ।

महेन्द्र—अभाग्य तो क्यों कहूँ ! किन्तु इतना अवश्य कहूँगा कि आपने अपने
सौभाग्य को ठुकराकर अच्छा नहीं किया ।

मुनिराज—महेन्द्र ! तुम अपनी बात को बुद्धि के तराजू से तोल रहे हो, पर अनु-
भव के क्षेत्र में उत्तरे बिना सच्चाई को नहीं समझ सकते । किनारे पर
खड़े रहने वाला क्या सागर की गहराई का अन्दाज लगा सकता है ?

महेन्द्र—सूर्य के प्रकाश की भांति जो साफ है उसे कैसे झुठलाया जा सकता है ।

मुनिराज—तुमको अभी काच और हीरे की पहचान नहीं है । तभी ऐसी बात
कह रहे हो । जिस दिन सही पहचान हो जायेगी उस दिन तुम भी
त्याग को बुरा नहीं कहोगे । मेरा अनुभव तो यह है कि संसार के सब
सुखों से भी अधिक त्याग का सुख है, स्वर्ग के सुख भी उसके सम्मुख
फीके पड़ जाते हैं ।

महेन्द्र—स्वर्ग के सुख और नरक के दुःख केवल मन्दबुद्धि लोगों को इहलौकिक
सुखों से वञ्चित रखने के लिए बताये जाते हैं । किसने देखा है स्वर्ग-
नरक को । गोदवाले को छोड़कर पेटवाले की आशा करने की तरह
प्राप्त सुखों को छोड़कर अप्राप्त सुखों के लिए वर्तमान जीवन में कष्ट
क्यों उठायें ।

मुनिराज—महेन्द्र ! ये ज्ञानियों के वचन हैं इनमें सन्देह के लिए कहीं अवकाश
नहीं । वे ज्ञानी जो प्राणीमात्र के कल्याण की भावना रखते हैं, जो

परमकारुणिक है, जनता को भ्रान्त करने के लिए कभी कुछ नहीं कहते। जो सुख हमें प्राप्त है उससे भी बहुत ज्यादा सुख हम पा सकते हैं अगर उन परमपुरुषों के दिखलाये राजमार्ग पर चलने के लिए कदम उठायें।

महेन्द्र—खैर, आपको त्याग अच्छा लगा, आपने इसे स्वीकार किया और जिनको भोग अच्छा लगता है वे उसे स्वीकार करते हैं। अपने-अपने स्वतंत्र विचार हैं। मेरा व्यक्तिगत इसमें कोई रस नहीं है।

सुनिराज—तुम्हारा चिन्तन सिर्फ शरीर केन्द्रित है इससे आगे भी एक परमतत्त्व है जिसको तुमने जाना तक नहीं।

महेन्द्र—जो कुछ दिखता है उसी पर विश्वास किया जा सकता है। अदृश्य को कैसे मान लिया जाए ?

सुनिराज—संसार में बहुत सारी चीजें ऐसी हैं जो अदृश्य हैं, तुम्हारे लिए परोक्ष हैं, क्या तुम उनको इन्कार कर दोगे ? तुम्हारे दादा, परदादा आदि तुम्हारे लिए अदृश्य हैं, क्या तुम कह दोगे कि मैं पुरखों को नहीं मानता ? भारत देश और उसका भी बहुत थोड़ा हिस्सा तुमको ज्ञात है, क्या अज्ञात भूखण्ड को तुम नकार दोगे ? सूर्य के प्रकाश में नक्षत्र, तारामण्डल, ग्रह दिखाई नहीं देते, क्या तुम उनकी सत्ता को इन्कार कर दोगे ?

महेन्द्र—परोक्ष होने पर भी वहां तक बुद्धि की पहुंच है इसलिए उनको इन्कार नहीं किया जा सकता। पर जो तथ्य बुद्धि से परे हैं उन पर कैसे विश्वास किया जा सकता है ?

संतोष—महाराज ! यह बड़ा तर्कबाज है। जल्दी से कोई बात स्वीकार नहीं करता।

सुनिराज—यही तो कठिनाई है, जो बात परमज्ञानियों ने प्रज्ञा के सर्वोच्च शिखर को छूकर बतलाई उसे यह अपनी तुच्छ बुद्धि से समझने की चेष्टा कर रहा है, यह कैसे सम्भव हो ? फिर भी महेन्द्र ! एक बात बताओ, दुनिया के बहुत-से नियम ऐसे हैं जो तुम्हारी बुद्धि में नहीं पैठते, क्या तुम उनको इन्कार कर दोगे ? क्या जो कुछ भी जानने योग्य है वह सब तूने बुद्धि से जान लिया, कुछ भी बाकी नहीं रहा ?

महेन्द्र—मैं स्वयं के परम बुद्धिमान होने का दावा तो नहीं करता फिर भी अपने को बुद्धिहीन भी नहीं मानता। लाखों-करोड़ों व्यक्ति आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-नरक को नहीं मानते, वे सब मूर्ख तो नहीं हैं। आप इन सब बातों को प्रत्यक्ष ज्ञानियों द्वारा बताया हुई और अनुभवगम्य

कहकर मुझे समझाना चाहते हैं, पर आज का पढ़ा-लिखा मानस
युक्तियों व तर्कों से प्रमाणित बात को ही सत्य मानता है।

मुनिराज—महेन्द्र ! तर्क की शक्ति पर बहुत विश्वास नहीं करना चाहिए।
सब जगह तर्क काम नहीं करता। एक छोटी-सी बात सुनाऊं। बच्चा
स्कूल जाकर घर पर आया। गर्मी का मौसम था। रास्ते में तेज धूप
थी। बच्चे का शरीर पसीने से तरबतर हो रहा था। उसने घर
पहुँचते ही कपड़े उतार कर धूप में सुका दिये और स्वयं भी धूप में
खड़ा हो गया। मां ने आवाज लगायी—मूर्ख बेटे ! धूप में क्यों खड़ा
है ? उसने कहा—मां ! मैं पसीना सुका रहा हूँ। अरे ! धूप में भी
कोई पसीना सूकता है कभी, मां ने कहा। बेटा तपाक से बोला, कपड़े
का पसीना सूक सकता है तो शरीर का पसीना क्यों नहीं सूक सकता ?
मां उसकी तर्क बुद्धि व नादानी पर हंसने लगी।

इस बात से तुम भी तमझ गये होगे कि सब तथ्यों को तर्क से सिद्ध
नहीं किया जा सकता। तर्क के द्वारा सत्य को असत्य और असत्य
को सत्य भी साबित किया जा सकता है।

महेन्द्र—पर आप तो सत्य को ही सत्य साबित करके दिखादें।

मुनिराज—अगर तुम यही चाहते हो तो मैं तुम्हें तर्क से भी समझाने का
प्रयास करूँगा। जहाँ तक आत्मा का प्रश्न है, नास्तिक भी इसे मानते
हैं, किन्तु वे इसे त्रैकालिक नहीं मानते, केवल वर्तमान-कालीन और
पंचभूतात्मक मानते हैं। आत्मा को यदि मानते हैं तो उसकी परम
अवस्था परमात्मा को मानने में भी कठिनाई नहीं होनी चाहिए।
सिर्फ पुनर्जन्म को लेकर ही आस्तिक और नास्तिक मान्यता में परस्पर
विरोध है। यह विरोध भी समझ भेद का है; अगर तटस्थ बुद्धि से
सोचा जाए तो यह विरोध भी दूर हो सकता है।

महेन्द्र—आप मुझे समझाने का प्रयास करें। मैं तटस्थ होकर सुनूँगा और
समझूँगा।

मुनिराज—पुनर्जन्म की पुष्टि का सबसे पहला प्रमाण है—पूर्वजन्म की स्मृति।
पूर्वजन्म की स्मृति भी प्रकार से उत्पन्न होती है। १. नैसर्गिक
२. निमित्तजन्य। ज्ञान की निर्मलता के कारण बिना बाह्य निमित्त
के पूर्वजन्म की स्मृति होने को नैसर्गिक कहा जाता है। उदाहरण के
तौर पर कपिल की घटना प्रसिद्ध है। कपिल अपनी प्रेयसी की इच्छा
पूरी करने के लिए दो माशा सोना लेने राजा प्रसेनजित के दरबार
में उपस्थित हुआ। राजा की पूरी छूट देखकर कपिल की आकांक्षा

आकाश को छूने लगी। तृष्णा बढ़ती-बढ़ती करोड़ सोनेया तक पहुँच गई, फिर भी उसका मन नहीं भरा। किन्तु दूसरे ही क्षण कपिल का चिन्तन बदला। उसे अपनी निरंकुश लालसा पर अनुताप होने लगा। कपिल को पूर्वजन्म की स्मृति हुई। मन वैराग्य से भर गया। अब कपिल की कोई मांग नहीं रही। स्वयंबुद्ध हो गया।

किसी घटना या व्यक्ति विशेष के निमित्त से उत्पन्न पूर्वजन्म के ज्ञान को निमित्त-जन्य कहते हैं। उत्तराध्ययन के १६वें अध्यायन में मृगापुत्र की घटना है। वह अपनी पत्नियों के साथ क्रीडारत था। राजपथ से आते हुए एक तपस्वी श्रमण पर अचानक उसकी नजर पड़ी। मुनि को अनिमेष देखते-देखते मृगापुत्र को जाति-स्मृति ज्ञान हो गया। ऐसा निर्मल रूप मैंने कहीं देखा है और मैं स्वयं ऐसा श्रमण था—इस प्रकार वह अपने पूर्वजन्म की स्मृतियों में खो जाता है।

मुनि मेघकुमार जब संयम में अस्थिर हो गया। भगवान् महावीर उसे पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाते हैं। प्रभु की वाणी इतनी मार्मिक थी कि मेघकुमार को सुनते-सुनते साक्षात् पूर्वभव दिखने लगा। हाथी के भव में सहन किए हुए कष्ट याद कर वह संयम में पुनः स्थिर हो गया।

महेन्द्र—मुनिवर! ये तो ग्रन्थों की बातें हैं, ऐतिहासिक कहानियाँ भी हो सकती हैं। ये सही ही हैं, कैसे भरोसा किया जाये? क्या वर्तमान में भी इस प्रकार की घटनाएँ घटित होती हैं जिनसे पूर्वजन्म को माना जा सके?

मुनिराज—अतीत की ये घटनाएँ निराधार नहीं हैं। इनके प्रमाण हमको शास्त्रों में समुपलब्ध होते हैं। फिर भी प्राचीन ग्रन्थों पर तुमको विश्वास नहीं तो मैं आधुनिक शोध से प्राप्त घटनाओं के माध्यम से पूर्वजन्म को प्रमाणित कर सकता हूँ। वर्तमान में भी इस प्रकार की अनेक घटनाएँ ग्रन्थों में उपलब्ध होती हैं।

विज्ञान में परामनोविज्ञान के नाम से एक स्वतन्त्र शाखा का विकास हो गया है जिसमें इस प्रकार की घटित घटनाओं पर प्रयोग व खोजबीन की जाती है। डॉ० इयान स्टीवनसन ने इस क्षेत्र में बहुत खोजबीन की है। “दी एविडेंस फॉर सरवायवल फ्रॉम क्लेम्ड मेमोरियल ऑफ फार्मर इन्कारनेशन्स” नाम से प्रकाशित ग्रन्थ में उन्होंने पूर्व जन्म सम्बन्धी अनेक घटनाओं का प्रामाणिक ब्यौरा दिया है।

एक घटना ब्राजील में जन्मी मार्टा नाम की लड़की से सम्बन्धित है। वह अट्ठाईस वर्ष की उम्र में ही अपने पूर्व जन्म की बातें बताने लग गई थी। उसने अपने घर, शहर व माता-पिता सबका परिचय दिया। उसने यह भी कहा कि मेरी मृत्यु टी० बी० की बीमारी के कारण हुई। उसकी बातों को सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ पर जब खोजबीन की गई तो सारी बातों की पुष्टि हुई। सबके मन में उसके कथन पर विश्वास पैदा हुआ। डॉ० स्टीवनसन सन् १९६२ में प्रत्यक्ष उससे मिले और सारी जानकारी ली।

अनेक वैज्ञानिकों के अब तक पुनर्जन्म सम्बन्धी पचासों निबन्ध व ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें जो घटनायें हैं वे काल्पनिक नहीं, वास्तविक हैं। जहां कहीं इस तरह की घटना सुनने को मिलती है, ये विद्वान स्वयं उन स्थानों पर जाकर उसकी प्रामाणिकता की छानबीन करते हैं। उसके बाद ही उस पर सत्य का लेबल लगाते हैं। पूर्वजन्म की स्मृति होना पुनर्जन्म की सिद्धि का सबलतम प्रमाण है।

महेन्द्र—पूर्वजन्म यदि है तो उसकी स्मृति सबको होनी चाहिए पर ऐसा होता नहीं, क्या कारण है ?

सुनिराज—जैसा पहले बताया गया, पूर्वजन्म की स्मृति ज्ञान की निर्मलता, पूर्वजन्म सम्बन्धी स्थिति विशेष का निमित्त पाकर होती है। सबको स्मृति होना जरूरी नहीं है। सबको इस एक जन्म की भी बातें याद नहीं रहती हैं। फिर पूर्वजन्म की स्मृति तो बहुत आगे की बात है। मनोवैज्ञानिकों ने अतीत की स्मृति न होने को अच्छा बताया है। अगर एक व्यक्ति को पूर्वजन्म की सब बातें याद रहे कि अमुक ने मेरे साथ अच्छा व्यवहार किया, अमुक ने बुरा तो वह सोचते-सोचते पागल बन जायेगा। रात दिन परेशान रहने लगेगा।

महेन्द्र—पूर्वजन्म की स्मृति नहीं होने के क्या कारण हैं ?

सुनिराज—आचार्यों ने इसके कारणों का विश्लेषण करते हुए लिखा है—

“जायमाणस्स जं दुक्खं, मरमाणस्स वा पुणो।

तेण दुक्खेण संमूढो, जाइं सरइ न अप्पणो ॥

व्यक्ति जन्म और मृत्यु की वेदना से इतना संमूढ हो जाता है कि उसे अपने पूर्वजन्म की स्मृति नहीं रहती।

वेदना वर्तमान जीवन में भी व्यक्ति की स्मृति को लुप्त कर देती है तो पूर्वजन्म की स्मृति भला कैसे सम्भव है ?

कांचूंग नामक दार्शनिक ने भी इस विषय पर अपने विचार व्यक्त

किये हैं। उसने बताया—“जन्म से पूर्व हर बच्चे में स्मृति होती है किन्तु जन्म के समय इतनी भयंकर यातना से उसे गुंजरना पड़ता है कि उसकी सारी स्मृति नष्ट हो जाती है। नई दुनिया में प्रवेश करते ही उसकी अतीत की सभी स्मृतियाँ विलुप्त हो जाती हैं।

महेन्द्र—माना कि पूर्वजन्म की स्मृति होती है पर सबको नहीं, ऐसी स्थिति में क्या ऐसे भी लक्षण हैं जो पूर्वजन्म की यथार्थता को साबित करते हैं ?

मुनिराज—कुछ स्थितियाँ तो हमारे सामने स्पष्ट ही हैं उनको नकार ही नहीं सकते। पहला प्रमाण है—प्रेम और घृणा के संस्कार। एक अपरिचित व्यक्ति को देखकर मन में सहज ही प्रेम और राग के संस्कार उमड़ते हैं, दूसरे को देखकर मन में घृणा और द्वेष के भाव पैदा होते हैं। हमको यह अनायास घटित हुआ लगता है पर इसके पीछे भी पूर्वजन्म के सम्बन्धों की लम्बी परम्परा है। ये सब घटनायें इस बात की सूचक हैं कि अमुक व्यक्ति के साथ किसी जन्म में प्रेम और मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे हैं, अमुक के साथ दुश्मनी के सम्बन्ध रहे हैं।

महेन्द्र—क्या इस तरह की कोई प्रामाणिक घटना भी प्रकाश में आयी है ?

मुनिराज—इस प्रकार की अनेक घटनाएँ विद्वानों के लेखों व पुस्तकों में उपलब्ध होती हैं।

डॉ० इयान स्टीवनसन ने अपनी पुस्तक “ट्वन्टी केसेज सजेस्टिव ऑफ रीडिनकारनेशनस” में एक घटना का उल्लेख किया है। कन्नोज (उत्तर प्रदेश) का एक लड़का जिसका नाम अशोक कुमार था। ६ वर्ष की उम्र में उसकी दो व्यक्तियों ने मिलकर हत्या कर दी थी। वही लड़का उसी जिले के एक गांव में बाबूराम गुप्ता के घर रविशंकर के रूप में जन्म लेता है। उसने चार वर्ष की उम्र में अपने पूर्वजन्म के माता-पिता के बारे में बताना शुरू कर दिया। अपनी मृत्यु के बारे में भी उसने बताया कि उसकी हत्या किस कारण हुई। हत्यारों के नाम भी उसने बताये। सारी बात की खोजबीन की गई तो सही निकली। एक बार अनायास दो हत्यारों में से किसी एक को उसने देख लिया। देखते ही वह धर-धर कांपने लगा, यह सोचकर कि मैंने इसके नाम को प्रकट कर दिया तो इसके मन में निश्चित ही मेरे प्रति आक्रोश होगा और मुझे फिर मार देगा। साथ ही साथ उसको गुस्सा भी आया कि मैं अगर शक्तिशाली होता तो मेरी हत्या का इससे बदला

लेता। उसके गले पर चाकू का निशान भी पूर्वजन्म में हत्या की बात को प्रमाणित करता था।

परिचित व्यक्तियों को देखकर खुशी या घृणा का भाव पैदा होता है उसके पीछे इस जन्म का कोई कारण हो सकता है किन्तु जो बिलकुल अपरिचित हैं उनके प्रति हर्ष, भय, घृणा आदि के संस्कारों का जागना पूर्वजन्म को मान्यता प्रदान करता है।

दूसरा प्रमाण है—प्लेंचेट पद्धति। इस पद्धति के द्वारा मृतात्माओं से साक्षात् सम्पर्क किया जाता है। उन आत्माओं को बुलाकर तरह-तरह के प्रश्न पूछे जाते हैं। प्रश्नों के उत्तर सही और प्रामाणिक होते हैं। पाश्चात्य लेखकों द्वारा संकलित पुनर्जन्म सम्बन्धी घटनाओं के विश्लेषण से तीसरा प्रमाण हमें और उपलब्ध होता है। वह है—रुचि की विलक्षणता और असामान्य व्यवहार का होना। जसवीर नामक एक लड़के की घटना है। जाट कुल में जन्म लेकर भी वह ब्राह्मण की तरह खान-पान की शुद्धि का अधिक ध्यान रखता है। यहां तक कि अपने माता-पिता द्वारा बनाया भोजन भी नहीं खाता है। पूर्वजन्म में उसने स्वयं को ब्राह्मण कुल में उत्पन्न बताया।

ब्राजील देश का पाउला नाम का बच्चा तीन-चार वर्ष की उम्र में सिलाई कला में विशेष दक्षता रखता है। वह अपने को पूर्वजन्म में एमिलिया नाम की लड़की जो सिलाई में दक्ष थी, बताता है। इन सब प्रमाणों से पुनर्जन्म और आत्मा की त्रैकालिकता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

महेन्द्र—पर, एक बात समझ में नहीं आती। आत्मा अगर त्रैकालिक है, अच्छी करणी के कारण स्वर्ग और बुरी करणी के कारण नरक आदि निम्न गतियों में जाती है तो मेरे पुरखे, जिनमें ज्यादातर धार्मिक हुए हैं, कोई स्वर्ग से आकर कभी मुझे मार्गदर्शन तो नहीं करते। मेरे काकाजी कट्टर नास्तिक थे, आपके हिसाब से वे नरक में गए हैं, कभी आकर मुझे सावधान तो नहीं करते।

मुनिराज—महेन्द्र ! यही प्रश्न महासुनि केशी से राजा प्रदेशी ने पूछा था।

महेन्द्र—उन्होंने उसका क्या उत्तर दिया ?

मुनिराज—केशी स्वामी ने कहा—राजन् ! तू स्नान करके बढ़िया वस्त्र पहनकर किसी विशेष कार्य के लिए प्रस्थान करे, उस समय अगर तुमको कोई शौचालय का निरीक्षण करने बुलाए तो क्या तुम जाना चाहोगे ? प्रदेशी ने कहा—नहीं, बिलकुल नहीं जाऊंगा। इस पर

केशी ने कहा—जैसे तुम शौचालय की ओर जाना नहीं चाहते वैसे ही स्वर्ग के सुखों में रमण करने वाली तुम्हारी धार्मिक दादी इस दुर्गन्ध-युक्त लोक में आना नहीं चाहेगी। मुनि ने बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए आगे कहा—राजन् ! एक व्यक्ति तुम्हारी महारानी सूरिकान्ता के साथ व्यभिचार करे, तुम उसको क्या दण्ड दोगे ? राजा ने कहा—मैं उसे तत्काल फांसी पर चढ़ा दूँगा। मुनि ने कहा—वह अपराधी अगर तुमसे कहे कि राजन् ! मुझे एक बार अपने घरवालों से मिलने दो, मैं उनको सावधान कर दूँ कि ऐसा अपराध कोई मत करना, क्या तुम उसे जाने दोगे ? प्रदेशी ने कहा—एक क्षण भी उसे इधर-उधर नहीं होने दूँगा। अब केशी ने कहा—जैसे तुम अपराधी को एक क्षण भी छूट नहीं दे सकते तो नरक की यातना भोगने वाला तेरा दादा भी वहाँ से कैसे छूट सकता है ? कैसे आकर तुमको सावधान कर सकता है। तुमको भी इस प्रसंग से समाधान मिल गया होगा।

महेन्द्र—पर जिनके परस्पर घनिष्ठ मित्रता रही हो उनमें से एक के मरने के बाद दूसरे को आकर कोई भी रूप में सहयोग तो करना ही चाहिए।

मुनिराज—मृतात्मार्थे पुनः इस लोक में आकर सम्पर्क करती ही नहीं, ऐसा कोई नियम नहीं है। इस तरह की अगणित घटनाएँ हैं जहाँ मृतात्मा ने आकर अपने इष्टजन को कोई भी रूप में सहयोग दिया हो। ऐसे भी प्रसंग बनते हैं जिनमें पूर्व भव के वैर के कारण एक आत्मा अपने पूर्व दुश्मन से बदला लेती है, उसे तरह तरह से सताती है। मुनि नथमलजी (रीछेड़वासी) को उनकी स्वर्गस्थ संसारपक्षीया मां ने दरसाव दिया और उनसे कहा—अब तुम्हारा आयुष्य सीमित है, तुम महाप्रयाण की तैयारी करो, मैं तुमको पूरा पूरा सहयोग दूँगी। मुनि श्री को लगा अब समय आ गया है, मुझे संलेखना प्रारम्भ कर देनी चाहिए। एकदम स्वस्थ शरीर था। उन्होंने संलेखना प्रारम्भ कर दी, विहार में भी तपस्या चलती रही, आखिर आमेठ में उन्होंने अनशन स्वीकार कर लिया। ६६ दिन का उनको संलेखना व संधारा आया। इस तरह की अनेक घटनाएँ आज भी हमें सुनने को मिलती हैं।

महेन्द्र—स्वजन या अपनी परिचित आत्माओं के द्वारा सहयोग देने की तरह पूर्व भव की द्वेषी आत्माओं द्वारा भी घटनाएँ धटित होती होंगी ?

मुनि—इस प्रकार की भी अनेक घटनाएँ प्रकाश में आती रहती हैं। कुछ ही वर्षों पूर्व साध्वी किरणयश की घटना इसका जीता जागता उदाहरण

है। पूर्वभ्रव के द्वेषी यक्ष ने उसे अपने स्वीकृत लक्ष्य से च्युत करने के लिए नाना प्रकार के कष्ट दिए। उपसर्ग उत्पन्न करने में उसने कमी नहीं रखी पर उस दिव्य आत्मा ने भी सहनशीलता रखने में हद कर दी। आखिर उस आसुरी शक्ति को उसके सामने झुकना पड़ा। सहयोग और असहयोग दोनों ही प्रकार की घटनाएँ पुनर्जन्म व आत्मा की त्रैकालिकता को सिद्ध करती हैं।

महेन्द्र—मुनिवर ! आत्मा अगर एक भव से दूसरे भव में जाती है तो हम उसको जाते हुए देख क्यों नहीं पाते ?

मुनिराज—आत्मा अन्य पदार्थों की तरह आकार वाली नहीं है जो दिखाई दे। बहुत सारी वस्तुएँ ऐसी हैं जो दिखाई नहीं देतीं पर उनकी वास्तविकता को झुठलाया नहीं जा सकता। फूल जब मुरझाता है तब धीरे धीरे वह गन्धहीन हो जाता है, कोई कहे उसकी सुगन्ध बाहर निकलते हुए तो दिखाई नहीं देती तो हंसी ही आयेगी। कोई कहे बहती हुई हवा नजर क्यों नहीं आती तो यह प्रश्न उचित नहीं होगा। दिन के प्रकाश में चाँद, तारे व नक्षत्र दिखाई नहीं देते पर उनके अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता इसी प्रकार आत्मा के गमन-आगमन को नहीं देखने से पूर्वजन्म को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

महेन्द्र—आपकी युक्तिपूर्ण बातें मेरे समझ में आ रही हैं फिर भी एक प्रश्न तो अब भी शेष रह गया है। मैंने पहले कभी आप जैसे मुनियों से ही सुना था कि आत्मा अजर अमर है, न कभी यह जन्म लेती है, न कभी यह मरती है, न कभी जलती है और न कभी शस्त्रों से कटती है। ऐसी आत्मा जो न जन्मे, न मरे उसका पुनर्जन्म कैसे हो सकता है ?

मुनिराज—इसको भी समझो। आत्मा के दो रूप हैं—एक है द्रव्य आत्मा यानी आत्मा का मूल रूप, सच्चिदानन्दमय स्वरूप। दूसरा है—भाव आत्मा यानी आत्मा की विविध अवस्थाएँ। आत्मा एक शरीर को छोड़ दूसरे शरीर को अपना लेती है फिर किसी नये शरीर को। यह क्रम सतत चालू रहता है। इस तरह आत्मा की उत्तरवर्ती अवस्थायें बदलती रहती हैं किन्तु मूल आत्मा के स्वरूप में कहीं कोई अन्तर नहीं आता।

महेन्द्र—मुनिवर ! यह बताने की कृपा करें कि क्या भारतीय दार्शनिकों के अलावा पाश्चात्य दार्शनिक भी पुनर्जन्म को मान्यता देते हैं ?

मुनिवर—न केवल भारतीय दार्शनिक अपितु पाश्चात्य दार्शनिक भी इस विषय में अपनी स्वीकृति प्रदान करते हैं। विद्वान दार्शनिक प्लेटो ने

कहा है कि—“आत्मा सदा अपने लिये नये नये वस्त्र बुनती है तथा आत्मा में एक नैसर्गिक शक्ति है, जो ध्रुव रहेगी और वह अनेक बार जन्म लेगी।”

दार्शनिक शोपनहार ने भी पुनर्जन्म में अपनी सहमति व्यक्त की है।

महेन्द्र—मुनिवर ! आपकी समझाने की शैली बहुत सुन्दर है। मैं तो रात दिन नास्तिकता की बातें सुन-सुन कर अपने धर्म व सिद्धान्त को भूल गया था। आपने मेरे अज्ञान को मिटा दिया। मेरे मन में फिर से आत्मा, परमात्मा व पुनर्जन्म पर आस्था जमी है। एक बात आप और बतायें, हम यह त्याग, तपस्या और धर्म क्यों करें ? क्या इनसे परलोक सुधरता भी है ?

मुनिराज—यह तो तुम भी नहीं कहोगे कि इससे परलोक बिगड़ता है।

महेन्द्र—यह तो नहीं कह सकता। लेकिन परलोक सुधरता है इसका भी क्या निश्चय है ?

मुनिराज—युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी अपने प्रवचनों में अक्सर कहा करते हैं कि धर्म केवल परलोक को ही नहीं वर्तमान जीवन को भी सुधारता है। अत्यधिक भोग और असंयम से जहाँ परलोक बिगड़ता है वहाँ वर्तमान जीवन भी दुःखी और रुग्ण बनता है। जो व्यक्ति संयम और साधना से जीवन बिताते हैं उनका मन सदा प्रसन्न रहता है और शरीर भी स्वस्थ रहता है। ऐसे व्यक्तियों का जीवन बड़ा आनन्ददायी होता है। उनका यह लोक तो अच्छा होता ही है परलोक भी निश्चित रूप से अच्छा होता है।

महेन्द्र—मुनिराज ! प्रणत हूँ आपके पूज्य चरणों में। आपने मेरे भीतर गड़े हुए कांटों को निकाल दिया। सच्चा ज्ञान देकर मेरे पर असीम उपकार किया। संतोष—उपकार तो मुनिराज आपने मेरे पर किया है। मैं अपने बेटे को गलत विचार धारा की ओर जाते देखकर दुःखी रहती थी। आपने मुझे सदा के लिए चिन्तामुक्त कर दिया। आज मुझे पूर्ण संतोष है।

मुनिराज—महेन्द्र ! जो सन्त तुने आज जाना है उस पर स्थिर रहना। गलत विचारधारा से कभी प्रभावित मत होना, सदा धर्म के सम्मुख रहना।

महेन्द्र—मैं आपके वचनों को कभी भूलूंगा नहीं (मैं संतोष व महेन्द्र दोनों मुनि को वंदन करते हैं)

गुणस्थान

(संतों का स्थान, मुनि अपने आसन पर विराजमान है। विमल, कमल दोनों भाई सामने वज्रासन में बैठे हैं।)

कमल—मुनिवर ! एक समय था जब मां और दादी मां हम भाइयों को बार बार आपके दर्शनों के लिए कहा करती थी किन्तु मन में भावना ही नहीं जगती और अब हम स्वयं आपके पास आने की उत्सुक रहते हैं।

विमल—उस समय हम दर्शन करने की रूढ़ि समझते थे पर अब लगने लगा है कि यहां आने में तो लाभ ही लाभ है।

मुनिवर—ऐसी भावना का होना शुभ बात है। अगर कोई जिज्ञासा ही तो रखो।

विमल—मुनिवर ! एक जिज्ञासा है। हमारी दादी मां नित्य सबेरे उठकर सामायिक करती है। सामायिक में एक वाक्य उनके मुख से हम कई बार सुन चुके हैं कि वह दिन धन्य होगा जिस दिन मुझे छुट्टा गुणस्थान आएगा। फिर कषाय को क्षीण कर तेरहवें गुणस्थान को पाऊंगी और एक दिन समस्त कर्मों से मुक्त होकर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त बनूंगी।

मुनिवर—यह तो बहुत ऊंची भावना है।

कमल—पर यह छुट्टा और तेरहवां गुणस्थान क्या है, इसका क्या महत्त्व है, जो दादी मां रोज सबेरे-सबेरे यह पाठ बोलती है। इसे हम समझना चाहते हैं।

मुनिवर—तुमको अपनी दादी मां से ही पूछ लेना चाहिये था।

विमल—हम दादी मां से पूछ लेते, पर आपके पास जिज्ञासा रखने के पीछे हमारा एक दूसरा उद्देश्य और भी है।

मुनिवर—वह क्या है ?

विमल—हम जानते हैं कि आपसे हम एक बात पूछेंगे तो दस नई बातें और जानने को मिलेंगी।

मुनिराज—तब अवश्य बताऊंगा। स्थिरता से सुनोगे तो ?

कमल—हम आपको सुनने के लिए ही आये हैं, मुनिराज !

मुनिराज—मैं गुम्हारी जिज्ञासा को समाहित करने के लिए गुणस्थान के बारे में थोड़ा विस्तार से बताना चाहूँगा ।

विमल—कृपा करावें ।

मुनिराज—आत्म विकास की चौदह श्रेणियाँ हैं । इनको जैन दर्शन में चौदह गुणस्थान के नाम से पुकारा जाता है । इनके लिए एक और शब्द का प्रयोग भी होता है—वह है जीवस्थान ।

विमल—गुणस्थान शब्द से क्या तात्पर्य है ?

मुनिराज—आत्म विशुद्धि की तरतमता को जैन दर्शन में गुणस्थान कहा गया है ।

कमल—इन चौदह श्रेणियों को बनाने के पीछे आधार क्या है ?

मुनिराज—कर्मों का हल्कापन व भारीपन, साथ ही पाँच आश्रवों की न्यूनाधिकता गुणस्थानों का आधार है । भारी कर्म वाले व पाँच आश्रवों का सेवन करने वाले जीवों की आत्मा अत्यधिक मलिन होती है । हल्के कर्म वाले व पाँच आश्रवों का निरोध करने वाले जीवों की आत्मा उत्तरोत्तर विशुद्ध अवस्था को प्राप्त होती है । आत्म शुद्धि के अनुरूप ही जीव गुणस्थानों में क्रमशः ऊर्ध्वारोहण करता रहता है । आत्म शुद्धि की सबसे अधिक न्यूनता प्रथम गुणस्थान में है और विशुद्धि की प्रकृष्टता चौदहवें गुणस्थान में है । प्रथम गुणस्थान का नाम है—१. मिथ्यादृष्टि गुणस्थान—तत्त्वों में जिसकी दृष्टि विपरीत है वह व्यक्ति मिथ्यादृष्टि कहलाता है । मिथ्यादृष्टि के आत्मगुणों को मिथ्यादृष्टि गुणस्थान कहते हैं । इस गुणस्थान के अधिकारी व्यक्ति में मोह कर्म का क्षयोपशम बहुत कम होता है ।

कमल—क्या मिथ्यादृष्टि व्यक्ति में भी आत्मगुणों का विकास हो सकता है ?

मुनिराज—अवश्य हो सकता है । उसमें भी विकास की संभावना विद्यमान है और सही समझ पाई जाती है । अविकसित चेतना वाले जीवों में अव्यक्त रूप से सही समझ मानी गई है । मिथ्यादृष्टि व्यक्ति आत्मा, परमात्मा, बन्धन व मोक्ष के बारे में विपरीत आस्था रख सकता है । किन्तु गाय को गाय समझता है, इसी तरह बहुत सारी बातों को सही समझता है । उसमें भी ज्ञानावरणीय कर्म का अच्छा क्षयोपशम हो सकता है । कई मिथ्यादृष्टि ऐसे भी हैं जो प्रेम, मैत्री, क्षमा, सत्य, ऋजुता आदि को अच्छा समझते हैं । इसी आधार पर उनको प्रथम

गुणस्थान में लिया जाता है। अगर सही समझ का बिलकुल अभाव हो तब तो जीव और अजीव में अन्तर ही नहीं रहेगा।

विमल—तो क्या जैन धर्म संसार के हर प्राणी में आत्म विकास की अर्हता को स्वीकार करता है ?

मुनि—हाँ स्वीकार करता है। व्यक्ति चाहे किसी भी जाति, वर्ण या धर्म का हो उसमें एक सीमा तक आत्म विकास तो होगा ही। उसके इसी गुण के आधार पर उसे पहली श्रेणी में स्थान मिला है। जैन धर्म ने तो उसकी तपस्या, साधना, सेवा व सात्त्विक भावना को मोक्ष के अभिमुख होने का साधन बताया है। उसके भी कर्मों की उज्वलता होती है। वह भी कालान्तर में सम्यक्त्व प्राप्त कर मोक्ष का अधिकारी बन सकता है। यह जैन धर्म की उदारता है कि उसने प्राणी मात्र में विकास की सम्भावना को देखा है।

कमल—पर एक बात समझ में नहीं आती कि मिथ्यादृष्टि व्यक्ति में कई बातों की सही समझ होने पर भी वह मिथ्यादृष्टि क्यों माना जाता है ?

मुनि—तुम्हारा प्रश्न उचित है। किसी भी व्यक्ति या वस्तु की पहचान उसके लेबल से होती है। घृत शुद्ध होने पर भी अगर वह डालडा के पीपे में है तो सब कोई उसे डालडा के रूप में पहचानेंगे। हरे रंग की बोतल में रखा हुआ पानी देखने में हरा नजर आयेगा। गन्दी नाली में पड़ा साफ पानी भी अपेय माना जायेगा। ठीक वैसे ही तत्त्वों में विपरीत श्रद्धा रखने वाला व्यक्ति सही ज्ञान होने पर भी मिथ्यादृष्टि कहलायेगा।

एक कारण और है—तीव्र मोहनीय कर्म का उदयभाव। मिथ्यादृष्टि व्यक्ति में ज्ञानावरणीय कर्म का अच्छा क्षयोपशम हो सकता है पर अनन्तानुबन्धी कषाय चतुष्क व दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियों (सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय व मिश्र मोहनीय) के प्रबल उदय के कारण वह व्यक्ति विद्वान होते हुए भी मिथ्यादृष्टि बना रहता है।

कमल—मुनिवर ! अनन्तानुबन्धी कषाय चतुष्क का क्या अर्थ है ?

मुनि—क्रोध, मान, माया और लोभ का ऐसा अनुबन्ध जिसका कहीं अन्त नहीं। ऐसी गांठ जो कभी खुलती नहीं। कपड़े का ऐसा धब्बा जो कभी साफ नहीं होता, कपड़ा भले ही फट जाये। कषाय की यह तीव्र उदयावस्था जीव को भव-भव में भटकाने वाली होती है।

दूसरा गुणस्थान है—सास्वादन सम्यग् दृष्टि गुणस्थान। नाम से ही

इसका अर्थ बोध हो जाता है। स, आ और स्वादन मिलकर सास्वादन शब्द बना है। स से सहित, आ से ईषद् यानी थोड़ा-सा मिठास। पूरे शब्द का अर्थ हुआ सम्यक्त्व का थोड़ा-सा मिठास रह गया है जिस जीव में उसका गुणस्थान। इस श्रेणी का व्यक्ति उपशम सम्यक्त्व से च्युत होकर जब तक पहले गुणस्थान में नहीं आ जाता तब तक उसमें दूसरा गुणस्थान पाया जाता है। वृक्ष से फल गिरा और धरती पर पड़ा नहीं, ऐसी मध्यवर्ती स्थिति से इस गुणस्थान की तुलना की जा सकती है।

तीसरा गुणस्थान—मिश्र गुणस्थान। एक तत्त्व में या तत्त्वांश में सन्देह रखने वाले व्यक्ति में मिश्र गुणस्थान पाया जाता है। यह आत्मा की दोलायमान अवस्था है। पहले गुण-स्थान में दृष्टि-एकांत मिथ्या होती है, तीसरे में दृष्टि संदिग्ध होती है, इतना-सा दोनों में अन्तर है। इन दोनों अवस्थाओं को हम यों समझ सकते हैं—एक व्यक्ति दूर खड़ा है उसको देखकर मन में विचार आता है कि वह खम्भा है, यह विपर्यास और एकान्त मिथ्या भाषा है। दूसरे के मन में आता है कि पता नहीं आदमी है या खम्भा, यह है संदेह की अवस्था।

चौथा गुणस्थान—अविरत सम्यग् दृष्टि गुणस्थान। इस श्रेणी के व्यक्ति में सम्यक्त्व पायी जाती है किन्तु किसी प्रकार का व्रत उसमें नहीं होता। इस गुणस्थान में प्रवेश पाते ही जीव में मोक्ष गमन की अर्हता आ जाती है। व्यक्ति को शरीर और आत्मा की भिन्नता का बोध होने लग जाता है। वह दस प्रकार के मिथ्यात्व जाल में नहीं फंसता। उसमें हेय और उपादेय का विवेक जग जाता है। नौ तत्त्व व षट् द्रव्य का पूरा ज्ञान उसे हो जाता है। ज्ञ प्रज्ञा परिपूर्ण होने पर भी प्रत्याख्यान प्रज्ञा का उसमें तनिक भी विकास नहीं होता। इसी कारण उसमें व्रत स्वीकार करने की क्षमता नहीं होती।

विमल—यह ज्ञ प्रज्ञा और प्रत्याख्यान प्रज्ञा क्या है ?

मुनि—प्रज्ञा के दो प्रकार शास्त्रों में बताये गये हैं १. ज्ञ प्रज्ञा २. प्रत्याख्यान प्रज्ञा। व्यक्ति ज्ञ प्रज्ञा से जानता है और प्रत्याख्यान प्रज्ञा से जो हेय और अकरणीय है उसे छोड़ता है। चौथे गुणस्थान का स्वामी जानता सब कुछ है किन्तु आचरण की क्षमता, त्याग की प्रवृत्ति उसमें नहीं होती।

विमल—आश्चर्य ! सब कुछ जानता हुआ भी वह त्याग नहीं कर सकता।
मुनिवर ! इसका क्या कारण है ?

मुनि—विषय थोड़ा गहरा होता जा रहा है, तुमलोग ध्यान से सुनना। जैसा पहले बताया जा चुका है कि मोहनीय कर्म की सात प्रकृतियों के उपशम, क्षय या क्षयोपशम होने से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। सम्यक्त्व प्राप्त होने पर भी उस जीव में अप्रत्याख्यान की कषाय चतुष्क का प्रबल उदय रहता है। इसी कारण उस व्यक्ति में त्याग की भावना पैदा नहीं होती है।

कमल—मुनिवर ! अभी आपने उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम शब्दों का प्रयोग किया था, इनका क्या अर्थ है ?

मुनि—विषय फिर लम्बा हो रहा है। देखो, जीव में पांच भाव पाये जाते हैं। १. औदयिक २. औपशमिक ३. क्षायिक ४. क्षायोपशमिक ५. पारिणामिक। कर्मों के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम से होने वाली आत्मा की अवस्था औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक कहलाती है। इन पांच भावों से होने वाली आत्म परिणति पारिणामिक भाव है।

१. उदय—कर्मों की अनुभूति को उदय कहते हैं।

२. उपशम—उदय शृंखला में प्रविष्ट मोह कर्म का क्षय हो जाने पर शेष मोह कर्म का सर्वथा अनुदय होने की अवस्था को उपशम कहते हैं।

३. क्षय—कर्मों का समूल नाश होना क्षय है।

४. क्षयोपशम—उदयावलि में प्रविष्ट घाति कर्म का क्षय और उदय में न आये घाति कर्म का उपशम यानी विपाक रूप में उदय न होना क्षयोपशम है।

५. परिणाम—अपनै-अपने स्वभाव में परिणत होने को परिणाम कहते हैं। उदय आदि अजीव हैं, औदयिक आदि पांच भाव जीव हैं। ये पांच भाव जीव का मूल स्वरूप है।

कमल—बड़ी कृपा की। अब अप्रत्याख्यान की कषाय चतुष्क का अर्थ भी स्पष्ट करावें मुनिवर !

मुनि—कषाय चतुष्क का अर्थ है—क्रोध, मान, माया, लोभ। अप्रत्याख्यान की क्रोध की भूमि की रेखा से, मान की अस्थि के स्तम्भ से, माया की भेदे के सींग से, लोभ की कीचड़ के रंग से तुलना की जा सकती है। दूसरे शब्दों में कषाय की ऐसी ग्रन्थि जो चार मास तक भी न खुले। इस स्थिति के कारण व्यक्ति जानता हुआ भी, त्याग और कर्म की अच्छा समझता हुआ भी उस दिशा में कभी प्रवृत्त नहीं होता।

इससे आगे है पाँचवां गुणस्थान—देश विरति गुणस्थान । देश यानी आंगिक व्रत जिसमें पाया जाता है उसका गुणस्थान । अप्रत्याख्यानी चतुष्क का क्षयोपशम व प्रत्याख्यानी चतुष्क का उदय होने के कारण इस गुणस्थान का स्वामी अपनी क्षमता के अनुसार यथाशक्ति त्याग करता है । व्रत और अव्रत साथ होने के कारण इस गुणस्थान का व्यक्ति व्रताव्रती, धर्माधर्मी, संयमासंयमी नामों से पुकारा जाता है । व्रतीश्रावक में यह गुणस्थान पाया जाता है ।

विमल—प्रत्याख्यानी कषाय चतुष्क का क्या अर्थ है ?

मुनि—प्रत्याख्यानी क्रोध की बाखू की रेखा से, मान की काष्ठ के स्तम्भ से, माया की चलते बैल के सूत्र की धारा से, लोभ की गाड़ी के खंजन से तुलना की जा सकती है । दूसरे शब्दों में कषाय की वह ग्रन्थि जो १५ दिन तक भी न खुले ।

छुट्टा गुणस्थान है—प्रमत्त संयत गुणस्थान । इसका अर्थ है—प्रमादी साधु का गुणस्थान । प्रत्याख्यानी कषाय चतुष्क का उपशम, क्षय या क्षयोपशम होने से व्यक्ति में व्रत को पूर्ण रूप से ग्रहण करने की क्षमता का विकास होता है । इस अवस्था में आने पर कषाय की अवस्था काफी मन्द हो जाती है । प्रमाद साथ में जुड़ा होने के कारण स्खलनाओं की सम्भावना भी बनी रहती है । सामान्यतया साधुओं में यह गुणस्थान पाया जाता है ।

सातवां गुणस्थान है—अप्रमत्त संयत गुणस्थान । इसका अर्थ है—प्रमाद रहित मुनि का गुणस्थान । सतत जागरूकता के कारण इस श्रेणी में कर्मों का बंधन बहुत कम होता है । यह अवस्था छूट्टे गुणस्थान से विशुद्धतर है ।

आठवां गुणस्थान है—निवृत्ति बादर गुणस्थान । स्थूल रूप से क्रोधादि कषाय जिसके क्षीण या उपशान्त हो जाते हैं उस आत्मा का गुणस्थान । इस गुणस्थान वाला व्यक्ति उपशम या क्षपक दोनों में से एक श्रेणी में आरूढ़ होकर आगे गति करता है ।

विमल—उपशम या क्षपक श्रेणी का क्या मतलब ?

मुनि—उपशम श्रेणी का अर्थ है—मोह को दबाते हुए बढ़ना और क्षपक श्रेणी का अर्थ है—मोह को नष्ट करते हुए बढ़ना । इसको हम उदाहरण से समझ सकते हैं । ऊपर से बुझी हुई, पर राख के नीचे दबी हुई आग के समान उपशम श्रेणी है और आग के समूल नष्ट हो जाने के समान क्षपक श्रेणी है । नौवां गुणस्थान है—अनिवृत्ति बादर गुणस्थान ।

स्थूल यानी बहुत थोड़ी मात्रा में कषाय बाकी रह गया है उस आत्मा का गुणस्थान । इस अवस्था में आते-आते व्यक्त कषाय तो रहता ही नहीं है, अव्यक्त कषाय भी बहुत थोड़ा बाकी रहता है ।

दशवां गुणस्थान है—सूक्ष्म संपराय गुणस्थान । संपराय का अर्थ है—लोभ । सूक्ष्म लोभांश जिस अवस्था में पाया जाता है वह सूक्ष्म संपराय गुणस्थान कहलाता है । इस गुणस्थान में क्रोध, मान और माया का संपूर्ण क्षय या उपशम हो जाता है ।

इग्यारवां गुणस्थान है—उपशांत मोह गुणस्थान । अन्तर्मुहूर्त के लिए मोह का उपशमन होना उपशांत मोह गुणस्थान है । राख ढकी आग की तरह यहां मोह पुनः भड़क जाता है । सांप-सीढ़ी के खेल में जिस तरह ६६ के अंक तक पहुँचा हुआ सांप के मुँह पर आते ही दो के अंक तक आ सकता है । वैसे ही इस स्थिति तक पहुँचकर भी व्यक्ति को वापस लोटना पड़ता है ।

बारहवां गुणस्थान है—क्षीण मोह गुणस्थान । जिस अवस्था में मोह पूर्णतया नष्ट हो जाता है वह क्षीण मोह गुणस्थान है । इस गुणस्थान का व्यक्ति भव बंधन नहीं करता, उसी जन्म में मुक्तिगामी होता है । क्षपक श्रेणी का जीव दशवें गुणस्थान से सीधा बारहवें गुणस्थान में आ जाता है ।

तेरहवां गुणस्थान है—सयोगी केवली गुणस्थान । मन, वचन, काया इन तीनों योगों की प्रवृत्ति से संयुक्त केवल ज्ञानी का गुणस्थान सयोगी केवली गुणस्थान कहलाता है । मोह का नाश तो बारहवें गुणस्थान में ही हो जाता है । इस गुणस्थान में आते ही तीन अवशिष्ट धनघाती कर्म ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय का भी क्षय हो जाता है । घाती कर्मों का क्षय होते ही जीव को केवल ज्ञान, केवल दर्शन, क्षायक सम्यक्त्व और निरन्तराय इन चार आत्मा के विशिष्ट गुणों की प्राप्ति होती है । मोहरहित होने के कारण केवलियों के योगों की प्रवृत्ति सदा शुभ रहती है और बंधन भी बहुत हल्का होता है । जो होता है वह कपड़े पर लगे बालू के कणों की तरह तत्काल ऋद्ध जाता है ।

चवदहवां गुणस्थान है—अयोगी केवली गुणस्थान । जिस केवली के मन, वचन व काया की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है उसका गुणस्थान अयोगी केवली गुणस्थान कहलाता है । पांच ह्रस्वाक्षरों के उच्चारण जितने समय में आत्मा शाश्वत सुखों के धाम मोक्ष को पा लेती है ।

कर्म और आत्मा का अनादिकालीन सम्बन्ध सदा के लिए छूट जाता है। आठ कर्म नष्ट होते ही आत्मा को आठ उत्तम गुणों की प्राप्ति होती है। वे ये हैं—१. अनन्त ज्ञान २. अनन्त दर्शन ३. अनन्त आनन्द ४. क्षायक सम्यक्त्व ५. शाश्वत स्थिरता ६. निराकारता ७. अगुरुलघुपन ८. निरन्तराय। मोक्ष प्राप्ति के बाद फिर जन्म-मरण नहीं करना पड़ता है।

विमल—सुनिराज ! यह मोक्ष कहां है ?

सुनि—सुक्त होते ही आत्मा ऊर्ध्व दिशा में गति करती है। जहां तक घर्मा-स्तिकाय का योग मिलता है वह गति करती है। अलोक में घर्मा-स्तिकाय न होने के कारण सुक्त आत्मा लोक के अग्र भाग में अवस्थित हो जाती है। इस स्थान को सिद्धशिला भी कहते हैं।

कमल—कृपया यह बतायें कि एक-एक गुणस्थान में जीव कितने समय तक रह जाता है ?

सुनिराज—प्रथम गुणस्थान के काल की स्थिति तीन प्रकार की है। ऐसे जीव जो कभी मोक्ष नहीं जायेंगे या जो अभव्य हैं उनके लिए इस गुणस्थान की स्थिति अनादि अनंत है, न कहीं आदि है न कहीं अन्त है। जो मोक्ष में जायेंगे ऐसे भव्य प्राणियों की दृष्टि से यह अनादि सांत है यानी एक दिन इस गुणस्थान का अन्त आएगा। ऐसे जीव जो मिथ्यात्व को त्याग कर सम्यक्त्वी बने, फिर सम्यक्त्व से च्युत हो मिथ्यात्वी बने, फिर सम्यक्त्वी बने उनकी दृष्टि से यह सादि सांत है यानी उन जीवों के लिए इस गुणस्थान का प्रारंभ भी है, अन्त भी है। दूसरे गुणस्थान की स्थिति छ्त्र आवलिका मात्र है। तीसरे का काल अन्तर्मुहूर्त है। चौथे का तेतीस सागर से कुछ अधिक है। पांचवें और छठे का कुछ कम करोड़ पूर्व वर्ष है। सातवें से बारहवें तक का कालमान अन्तर्मुहूर्त है। तेरहवें का कुछ कम करोड़ पूर्व वर्ष का है। चौहदवें का काल अ, इ, उ, ऋ, लृ इन पांच ह्रस्वाक्षरों के उच्चारण जितना है।

विमल—गुणस्थानों का कालमान बताते हुए आपने आवलिका, अन्तर्मुहूर्त, सागर और पूर्व शब्दों का प्रयोग किया, इनका क्या तात्पर्य है ?

सुनि—जैन परम्परा में काल का स्वतंत्र माप है। काल के सूक्ष्मतम और अविभाज्य अंश को समय कहते हैं। ऐसे असंख्य समयों के योग को एक आवलिका कहते हैं। ४८ मिनट का सुहूर्त होता है। ७० क्रोडा-क्रोड ५६ लाख क्रोड वर्षों को एक पूर्व कहते हैं। १० क्रोडाक्रोड पल्यो-पम को एक सागर कहते हैं। एक पल्योपम में असंख्य वर्ष होते हैं।

कमल—महाराज ! इतना लम्बा काल तो कल्पना से परे की बात है । यह कब पूरा होता है ?

मुनि—जब जीव की अनादि है फिर कोई सीमा तो रही ही नहीं । यह काल का रथ सदा गतिशील रहता है, एकपल के लिए भी कहीं रुकता नहीं । ऐसी स्थिति में काल का बड़े से बड़ा खण्ड भी पूरा हो जाता है ।

कमल—आपने विषय को बहुत सांगोपांग ढंग से समझाया है । धन्य है आपका ज्ञान ।

मुनि—तुमने इतने समय तक स्थिरचित्त होकर सुना । अब तुम बताओ कि तुम्हारे में कौनसा गुणस्थान है ?

विमल—मुनिवर ! हमने कुछ ही दिनों पूर्व आचार्य श्री तुलसी से सम्यक्त्व और व्रत दोनों स्वीकार किये थे इसलिए हम कह सकते हैं कि हमारे में पाँचवाँ गुणस्थान है ।

मुनि—शाबाश ! अब कहो, हमारे में कौनसा गुणस्थान है ?

विमल—आप तो पूर्ण त्यागी हैं इसलिए छठ्ठा गुणस्थान होना चाहिए ।

मुनि—बहुत अच्छा बताया । तुम जो जिज्ञासा लेकर आये थे वह तो समाहित हो गयी होगी ?

कमल—मुनिवर ! हमारी जिज्ञासा तो शांत हुई ही, इसके साथ बहुत कुछ नया जानने को भी मिला ।

मुनि—दादी माँ की बात का तुमने क्या अर्थ समझा ?

विमल—मैं जहाँ तक समझा हूँ वे सामायिक में यह भावना आती है कि वह दिन धन्य होगा जब मैं भी साधु जीवन स्वीकार करूँगी और साधना करती हुई एक दिन वीतराग बन जाऊँगी व समस्त कर्मों को क्षीण कर मुक्ति को प्राप्त करूँगी ।

मुनि—(कमल से) कमल ! तुम क्या समझे ?

कमल—मैंने भी ऐसा ही अर्थ निकाला है ।

मुनि—तुम दोनों के उत्तर सुनकर मैं प्रसन्न हूँ । तुम्हारी यह पात्रता सदा बढ़ती रहे ।

विमल—आपने हमें ज्ञान की अनमोल निधि देकर कृतार्थ किया । आपको शत शत वंदना ।

ईश्वर-अकर्तृत्व

(पिता जवाहर अपने कमरे में एक कुर्सी पर बैठे हैं, उनके हाथ में युवादृष्टि पत्रिका है, दो कुर्सियां खाली पड़ी हैं। उनका लड़का विकास अपने मित्र अनुपम के साथ उनकी ओर आ रहा है।)

विकास—(अपने पिता से) पिताजी ! यह है मेरा मित्र अनुपम। बोर्ड की परीक्षा में इसने प्रथम स्थान प्राप्त किया है।

जवाहर—शाबास ! अनुपम ! तुम जैसे लड़के समाज और राष्ट्र के गौरव हैं। तुमने परीक्षा में सर्वोच्च अंक प्राप्त कर अपने नाम को ही नहीं माता पिता के मस्तक को भी ऊंचा किया है। तुम्हारी मार्क सीट हो तो मैं देखना चाहता हूँ।

(अनुपम अपने थैले में से मार्क सीट निकाल कर विकास के पिता को दिखाता है।)

जवाहर—ओ हो ! क्या कमाल के नम्बर हैं। इंगलिस में दो सौ में एक सौ इक्यासी, हिन्दी में एक सौ सत्तर, गणित में एक सौ चौरासी, इतिहास में एक सौ पचहत्तर, सामान्य ज्ञान में एक सौ अस्सी, फिजिक्स एक सौ तरेसठ। विद्यार्थी हो तो ऐसा हो। तुमने अपने समय और श्रम को सफल किया है।

अनुपम—जैन साहब ! यह सब तो उस परम पिता परमेश्वर की कृपा से हुआ है। मेरे जैसे सामान्य विद्यार्थी की क्या हैसियत कि वह पोजीशन बनाले।

जवाहर—ईश्वर की कृपा ! मैं नहीं मानता।

अनुपम—क्यों, गलत कहा है ?

जवाहर—मुझे पहले यह बताओ, क्या तुम्हारी कक्षा में कुछ लड़के अनुत्तीर्ण भी रहे हैं ?

अनुपम—जी हाँ, ५० लड़कों में से १० लड़के अनुत्तीर्ण रहे।

जवाहर—अब मेरा दूसरा प्रश्न है कि जो लड़के अनुत्तीर्ण हो गये, क्या उन पर ईश्वर की कृपा नहीं थी ?

अनुपम—हम इसको यों कह सकते हैं कि उनके कर्म अच्छे नहीं थे इस कारण उन पर ईश्वर की कृपा नहीं हुई।

जवाहर—तब तो ईश्वर से भी ज्यादा बलवान कर्म हो गया क्योंकि किये हुए कर्म को तो ईश्वर भी नहीं बदल सकता। ऐसे ईश्वर पर भरोसा करने की बजाय व्यक्ति कर्म पर ही भरोसा क्यों न कर ले। पहले ही अच्छे कर्म करे ताकि उसे अच्छा फल मिले।

विकास—पिताजी! कर्म तो खैर मनुष्य ही करता है और उसका फल भी उसी को मिलता है। पर कर्म तो जड़ है उनका फल कोई परमशक्ति सम्पन्न ईश्वर ही देगा।

जवाहर—लगता है क्रिश्चियन स्कूल में भर्ती होने के बाद तू अपने जैन दर्शन को भूल गया है। जरा सोच भी, कर्म का फल तो समय आने पर स्वतः मिलता है। उसके लिए ईश्वर को बीच में लाने की क्या जरूरत है। आम या आक जैसा भी बीज बोया है नियत समय पर स्वतः उसका वैसा ही फल प्राप्त होता है। कोई व्यक्ति आकर वृक्षों के फल नहीं लगाता है।

कर्म जड़ होने से उसका फल ईश्वर के अधीन कहना गलत है क्योंकि जड़ पदार्थों से तो चेतन बहुत प्रभावित है। उनका परिणाम भोगने के लिए भी वह वाध्य है। उदाहरण के तौर पर क्लोरोफार्म जड़ होते हुए भी आदमी को सूंघने के साथ ही संज्ञा शून्य बना देती है। सुपाच्य और दुष्पाच्य भोजन का असर प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। कोई व्यक्ति शराब पिये या जहर तो परिणाम तत्काल सामने आता है। ईश्वर कभी उसका फल देने के लिए नहीं आता है।

विकास—माना कि ईश्वर कर्मों का फल नहीं देता पर क्या वह अपनी परम शक्ति से कर्मों को निष्फल नहीं बना सकती या उनके फल को मन्द नहीं कर सकती ?

जवाहर—आम आदमी बुरा कर्म करते समय ईश्वर को याद नहीं रखता, कर्म करने के बाद सोचता है, मेरा यह कर्म निष्फल हो जाये या इसका दण्ड कम भोगना पड़े, पर यह संभव नहीं है।

ईश्वर जो अनन्त सुखों में रमण करता है वह अपने भक्तों को कहीं कहीं बचायेगा। अगर भक्त को बचायेगा तो दुष्ट को भी बचाना होगा क्योंकि उसकी नजर में सब समान है। हकीकत में किये गये कर्म व्यक्ति को स्वयं ही भोगने पड़ते हैं, ईश्वर उसमें कहीं परिवर्तन नहीं कर सकता।

एक बच्चा सामान्य ज्ञान का प्रश्न पत्र हल करके स्कूल से बाहर निकला। एक प्रश्न आया था, राजस्थान की राजधानी लिखे ? उसने रास्ते में सोचा कि मैंने उत्तरपुस्तिका में भूल से दिल्ली लिख दिया है। घर पहुंचते ही वह अपने घर के मन्दिर में ध्यान लगाकर बैठ गया। पिता ने अपने पुत्र को आवाज लगायी। उस बच्चे ने कहा— पिताजी ! अभी मैं भगवान से प्रार्थना कर रहा हूँ, बीच में नहीं उठूंगा। पिता ने कहा—यह समय प्रार्थना का नहीं है। लड़के ने सरलता से कहा—पिताजी ! बात यह है कि उत्तरपुस्तिका में राजस्थान की राजधानी जयपुर के स्थान पर मैं दिल्ली लिख आया, अतः भगवान से प्रार्थना कर रहा हूँ कि वे उस त्रुटि को ठीक कर दें। पिता उसकी नादानी पर खिलखला कर हँसा और बोला— मूर्ख बेटे ! क्या ऐसा भी होता है ? गलती सुधारने अब भगवान थोड़े ही आयेंगे।

दुष्कर्म कर भगवान से उसका फल मन्द करवाने की बात ना समझ लोग ही सोचते हैं। भगवान अच्छे-बुरे कर्मों का न फल देते हैं और न ही परिणाम में किसी प्रकार का परिवर्तन भी करते हैं।

अनुपम—पर जो ईश्वर किसी प्रकार का फल देने में समर्थ नहीं और न किसी प्रकार का परिवर्तन भी कर सकता उस ईश्वर का भजन व स्मरण दुनिया किस लिए करेगी ?

जवाहर—सुनो, फल प्राप्ति की कामना से ईश्वर का स्मरण या पूजन कभी नहीं करना चाहिए। ऐसा करना तो भगवान के साथ सौदाबानी है। ईश्वर के स्मरण का उद्देश्य है—अपनी आत्मा को पवित्र बनाना, ईश्वरीय शक्ति, ईश्वरीय आनन्द व गुणों को अपने में प्रकट करने का प्रयास करना।

अनुपम—पर जैन साहब ! हम को तो स्कूल में बताया जाता है कि ईश्वर की इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता।

जवाहर—ईश्वर के इच्छा होती ही नहीं है। अगर इच्छा होती है तो वह ईश्वर नहीं हम जैसा ही कोई संसारी प्राणी है। इच्छा तो मोह का प्रतिरूप है। फिर यदि ईश्वर की इच्छा से ही सब कामों का होना माना जाये तब तो चोरों की चोरी करना, वेश्याओं का व्याभिचार करना, धोखा-धड़ी करना, मिलावट व कालाबाजारी करना आदि सभी कामों का श्रेय भी ईश्वर को मिलेगा।

अनुपम—नहीं, नहीं इन निन्दनीय कार्यों में ईश्वर की इच्छा या प्रेरणा कभी हो ही नहीं सकती ।

जवाहर—तुम निन्दनीय कार्यों के लिए व्यक्ति को जिम्मेदार ठहराते हो और अच्छे कामों का श्रेय ईश्वर को देना चाहते हो, यह तो पक्षपात है, तर्क संगत भी नहीं है । सही तो है कि अच्छे और बुरे दोनों तरह के कार्य करने में व्यक्ति स्वतन्त्र है । वह ईश्वर की इच्छा का वशवर्ती नहीं है और न ही वह किसी परम सत्ता के हाथ का खिलौना है । ईश्वर की मर्जी मानकर चलने वाले व्यावहारिक जीवन में बड़ी परेशानी का अनुभव करते हैं । ईश्वरीय गलत धारणा से व्यक्ति हर कार्य को ईश्वर की मर्जी कहकर टालना चाहता है, स्वयं पर किसी प्रकार की कार्य को जिम्मेवारी लेना नहीं चाहता ।

एक व्यक्ति ने दर्जी को कोट सीने के लिए कपड़ा दिया । तीन दिन में कोट सीलकर देने का दर्जी ने वायदा किया । तीसरे दिन व्यक्ति कोट लेने आया तो उसे निराश होकर लौटना पड़ा । दो-तीन बार चक्कर उसने फिर लगाये पर कोट तो अभी भी नहीं सिला गया । दर्जी से व्यक्ति ने पूछा कि कोट कब तक सीलकर दे दोगे । दर्जी ने कहा—जिस दिन ईश्वर की मर्जी होगी उस दिन दे दूंगा । वह व्यक्ति वापस कुछ नहीं बोलकर दर्जी के पैसों का गल्ला उठाकर चलता बना । दर्जी चिन्ताया—मूर्ख ! दिन दहाड़े डाका डाल रहा है । उस व्यक्ति ने कहा—मैं क्या करूँ ? ईश्वर की ऐसी ही मर्जी है । यह क्या मखोल है ? अभी पुलिस को बुलाकर हथकड़ियाँ डलवाता हूँ, दर्जी झुत्ताकर बोला । अब वह व्यक्ति भी तत्काल बोल पड़ा—तुम फिर कोट सीलने में क्यों ईश्वर की मर्जी को बीच में लाते हो ? साफ कहो—तुम्हारी क्या मर्जी है ? किस दिन दोगे मेरा कोट ? दर्जी लोगों में मजाक का पात्र बन गया । उसने दूसरे ही दिन कोट सीलकर उसके घर पहुंचा दिया ।

व्यक्ति स्वयं है अपनी मर्जी का मालिक । ईश्वर को बीच में घसीटने की कोई जरूरत नहीं है ।

अनुपम—आप तो ईश्वर का खण्डन किए जा रहे हैं । पर उस परम पिता ईश्वर के बिना इस संसार की रचना किस ने की ? वही तो इस संसार का कर्ता, भर्ता और संहर्ता है ।

जवाहर—कितनी गलत धारणाएँ अपने दिमाग में बना रखी है । यह संसार सदा था, है और रहेगा । न इसको किसी ने बनाया और न कोई

इसका नाश भी करने वाला है। इसका ढाँचा बदलता रहता है। नये का निर्माण, पुराने का नाश स्वभाव से ही होता है। ईश्वर किसी तरह का निर्माण और विनाश नहीं करता है।

अनुपम—सर, बात गले नहीं उतरी। एक घड़ा भी कुम्भकार के बनाए बिना नहीं बनता तो इतना विचित्र संसार जिसमें कहीं पहाड़, कहीं नदियाँ व समन्दर हैं, बिना बुद्धिमान पुरुष के कैसे बन सकता है और ईश्वर से अधिक कौन बुद्धिमान कर्ता हो सकता है ?

जवाहर—मेरा एक छोटा-सा प्रश्न तुमसे भी है। कोई भी चीज यदि बिना किसी के बनाए नहीं बन सकती तो जगत् को बनाने वाले ईश्वर को किसने बनाया ?

अनुपम—पर उसे तो बनाने की जरूरत भी नहीं, वह तो स्वयंभू है।

जवाहर—अगर ईश्वर स्वयंभू है तो फिर इस संसार को स्वयंभू मानने में क्या दोष है। एक क्षण के लिए ईश्वर के द्वारा जगत्-रचना मान ली जाए तो मैं कहूँगा ईश्वर ने इस संसार को बनाकर बहुत बड़ी भूल की। अनेकानेक हत्यारे, व्यभिचारी, कसाई, चोर, डाकू व ठग जहाँ-तहाँ स्वच्छन्द घूमते हैं ! क्या इस संसार को देखकर ईश्वर की सर्वज्ञता और अनन्त शक्तिमत्ता पर हंसी नहीं आएगी ? दिखने वाली सब चीजें किसी की बनाई हुई हैं, यह कोई नियम नहीं बन सकता। बरसात की मौसम में धरती पर जगह-जगह अंकुर फूट पड़ते हैं, क्या कोई व्यक्ति उनको उगाता है ?

अनुपम—वे तो स्वतः निष्पन्न होते हैं।

जवाहर—इसी प्रकार यह बात भी सिद्ध हो गई कि संसार किसी का बनाया हुआ नहीं है, न कोई इसका नाश करने वाला भी है। यह स्वभाव से ही बनता और बिगड़ता है।

अनुपम—पर कोई परम सत्ता तो होनी चाहिए जो सबके कर्मों का लेखा-जोखा रखे और न्याय व्यवस्था को बनाए रखे। ऐसा मान लिया जाए तो क्या कठिनाई है ?

जवाहर—वह परमसत्ता हमारे भीतर ही विद्यमान है। बोया हुआ बीज जिस तरह समय पर फल देता है उसी तरह किए हुए कर्म भी काल परिपाक से स्वतः ही तदनुरूप फल देते हैं। अगर ईश्वर न्याय व्यवस्था का संचालक होता तो आज संसार में घोर अव्यवस्था नहीं फैलती। कई बार देखते हैं, अनोति पर चलने वाले गुलछरें उड़ते हैं और नीति पर चलने वाले दण्डित हो जाते हैं। ईश्वर को परमसत्ता मानने में उत्पन्न

कठिनाइयों की चर्चा पहले की जा चुकी है। एक कठिनाई और भी है, वह है—लोगों में पुरुषार्थ हीनता का पनपना। ईश्वर को मानने वाले यह सोचकर हाथ पर हाथ धर कर बैठ जाते हैं कि हमारे भाग्य में ईश्वर ने ऐसा ही लिखा है। हम क्या कर सकते हैं? इससे भिखारीपन को बढ़ावा मिलता है और पुरुषार्थ की भावना कमजोर होती है।

विकास—पिताजी ! भगवद् गीता में हमने पढ़ा है कि जब-जब अधर्म की वृद्धि होती है और धर्म का नाश होता है तब-तब भगवान् पापियों का नाश करने और धर्म को पुनः स्थापित करने कोई न कोई रूप में अवतार लेते हैं, क्या यह सही बात है ?

जवाहर—भगवान् जो इच्छा, मोह, माया व अज्ञान से मुक्त हैं, कभी अवतार नहीं लेते। दोषयुक्त आत्मा ही पुनः संसार में आती है। तपस्या व साधना के द्वारा संसारी आत्मा सभी दोषों से मुक्त होने पर अपने चिन्मय स्वरूप को पा लेती है और दुनिया उसे ईश्वर के नाम से पुकारती है। ईश्वर के अवतार लेने की बात अगर सही होती तो इस घोर कलिकाल में अब तक ईश्वर को अवतार ले लेना चाहिए था। परन्तु ईश्वर के अवतार लेने की बात भ्रान्ति भरी है।

अनुपम—तो क्या जैन धर्म अनीश्वरवादी है ?

जवाहर—नहीं, नहीं, ऐसा कहना नासमझी की बात है। जैन धर्म परम ईश्वरवादी है। हां, वह ईश्वरकर्तृत्ववादी नहीं है। जिस रूप में अन्य धर्म-दर्शन ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हैं उस रूप में वह नहीं मानता। जैन धर्म के अनुसार हर आत्मा में ईश्वर बनने की क्षमता है। कर्मों का आवरण हटते ही आत्मा अपने परम स्वरूप को पा लेती है। इसके बाद वह जन्म मरण से मुक्त हो जाती है। पुनः संसार में उसे आना नहीं पड़ता। वह अनन्त शक्ति और परम आनन्द से सम्पन्न होती है। दुनिया के प्रपंच से वह सदा दूर रहती है। ऐसी आत्मा को परमात्मा, परमेश्वर, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त आदि नामों से पुकारा जाता है। इस तरह की आत्माएँ अनन्त हो चुकी हैं।

विकास—तो क्या हम भी ईश्वर बन सकते हैं ?

जवाहर—अवश्य बन सकते हैं बशर्ते कि हमारी आत्मा पर आया हुआ कर्मों का सघन आवरण दूर हट जाये, अनन्त गुण व अनन्त शक्तियाँ प्रकट हो जायें। एक कवि ने लिखा—“बीज बीज ही नहीं, बीज में तरुवर भी हैं; मनुज, मनुज ही नहीं, मनुज में ईश्वर भी है।” हर पत्थर में

प्रैतिमा बनने की क्षमता है, हर बीज में वृक्ष बनने की क्षमता है सिर्फ उपयुक्त माध्यम मिलना जरूरी है। इसी तरह हमारे में भी ईश्वर बनने की अर्हता है। जरूरत है साधना के द्वारा वैभाविक दुर्गणों को मिटाने की।

अनुपम—बड़ी भ्रान्ति दूर हुई। हमको तो यह बताया गया कि जैन धर्म नास्तिक है। श्वर को मानता नहीं है, ईश्वर ने ही जगत को बनाया है, वही अच्छे बुरे कर्मों का फल देने वाला है। आज ही सही बोध हुआ।

विकास—पिताजी ! मैं भी जैन कुल में जन्म लेकर अपने दर्शन को भुला जा रहा था। आपने यह चर्चा कर मेरी आँखें खोल दी।

जवाहर—अच्छा हुआ, तुम दोनों को सही तथ्य समझने का मौका मिला। मेरी राय है कि तुम ईश्वर की उपासना करो पर स्वयं में ईश्वरीय गुणों को पैदा करने हेतु न कि ईश्वर की कृपा पाने। साथ ही अपने पुरुषार्थ पर भरोसा रखो और फल को आकांक्षा को छोड़ दो।

अनुपम—जैन साहब ! आपने मुझे सही दिशा-दर्शन दिया। आपका बहुत बहुत आभार।

कर्मवाद

(अमरनाथ जी एक कुर्सी पर बैठे हैं, हाथ में जैन दर्शन का कोई ग्रन्थ है। उनका लड़का तरुण खटिया पर बैठा है। सिर पर पट्टी बंधी हुई है। एक खाली कुर्सी पास में पड़ी है। आलमारी में कुछ धार्मिक पुस्तकें पड़ी हुई हैं। एक मेज पर कुछ पत्र-पत्रिकाएँ पड़ी हैं।)

तरुण—पिताजी ! एक एक दिन बड़ी कठिनाई से निकल रहा है और रातें पहाड़ ज्यों भारी लगती हैं।

अमरनाथ—बेटा ! मैं जानता हूँ तुम्हारे सिर में टांके लगे हुए हैं। भयंकर पीड़ा से तुमको गुजरना पड़ रहा है। पर याद रखो, कोई भी कष्ट स्थायी नहीं होता। चार पांच दिन बाद तुम्हारे टांके खुल जाएंगे, फिर तुम आराम अनुभव करोगे।

तरुण—पिताजी ! यह शारीरिक पीड़ा तो नगण्य है, न मुझको इसकी चिन्ता भी है। पर एक दूसरी पीड़ा मुझे बेचैन कर रही है।

अमरनाथ—ओ हो ! तुमको चिन्ता हो रही है कि अध्ययन में अपने साथियों से मैं पीछे रह गया, अनेक साथी मेरे से आगे निकल गये। (एक क्षण बाद) क्यों, यही तो बात है ?

तरुण—ऐसी कोई बात नहीं। अध्ययन की क्षति पूर्ति मैं स्वस्थ होते ही बहुत शीघ्र कर लूंगा। अध्यापकों व साथियों पर मुझे भरोसा है कि वे मेरे इस कार्य में हर संभव मदद करेंगे।

अमरनाथ—अच्छा, अब ध्यान गया कि क्या कारण हो सकता है तुम्हारी कठिनाई का। कई दिन हो गये अपने साथियों से मिले तुमको। सच बता, ठीक ही तो कह रहा हूँ मैं ? (एक क्षण रुककर) मैं अभी तुम्हारे खास मित्र अरुण को फोन करके कह देता हूँ कि तरुण तुमको बेसब्री से याद कर रहा है।

तरुण—पिताजी ! मित्रों का नहीं मिलना भी कोई दुविधा नहीं है क्यों कि साक्षात् मिलना भले न हो लेकिन फोन पर यदा—कदा उनसे बात हो ही जाती है और मेरा खास मित्र अरुण तो कल फोन पर आज आने के लिए बोल ही रहा था।

अमरनाथ—फिर कौन सी पीड़ा है जिसने तुम्हारे मन को इतना बेचैन कर रखा है ?

तरुण—एक लड़का है मेरी बेचैनी का कारण पिताजी ! वह सुझे दिन रात दातों में फूस की तरह खटकता है। नाम है उसका किशोर कुमार। उसी ने सुझे खेल के मैदान में धक्का दिया था। और उसी कारण मेरे सिर में तीन टांके लगे हैं। मैं चाहता हूँ जल्दी स्वस्थ होकर उससे बदला लूँ।

अमरनाथ—ओह हो ! अब समझा तुम्हारी छटपटाहट का कारण। (एक क्षण रुककर) कितना नादान है मेरा बेटा। पांच दिन हो गये घटना को घटित हुए। अब भी सिर पर भार ढोए जा रहा है।

तरुण—(गुस्से से जरा झल्लाकर) तो क्या आयी गई करदूँ बात को। वह अपने मन में बड़ा बना फिरता है। कभी दांव लग गया तो सारा बड़प्पन मिट्टी में मिला दूँगा। (तरुण का मित्र अरुण उसी वक्त कमरे में प्रवेश करता है)

अरुण—(अमरनाथ जी से) नमस्कार !

अमरनाथ—आओ अरुण, बैठो। तबीयत प्रसन्न है।

अरुण—गुरु कृपा से सब ठीक है !

अमरनाथ—अभी धूप में आये हो।

अरुण—तरुण से मिले हुए कई दिन हो गये, मिलना भी जरूरी था। इस वक्त बाजार से कुछ खरीदारी करनी थी, सोचा, लगते हाथ तरुण से भी मिल लूँ।

अमरनाथ—अच्छा किया। कभी-कभी आ जाया करो ताकि यह भी बैठे-बैठा बोर न हो।

अरुण—(तरुण से)—कहो मित्र ! कैसे है ? टांके सूखने शुरू हो गए होंगे। दर्द भी कम पड़ा होगा।

तरुण—यह दर्द तो पहले की अपेक्षा कम है। टांके खुलने में शायद ४-५ दिन लग जायेंगे। लेकिन.....

अरुण—लेकिन क्या ?

तरुण—एक दूसरा दर्द सुझे रात-दिन सालता रहता है।

अरुण—वह फिर क्या ?

तरुण—दुम को तो पता ही है, उस किशोरकुमार ने ही सुझे खेल के मैदान में धक्का देकर गिराया था।

अरुण—हां, हां !

तरुण—बस उससे जब तक बदला न ले लूं तब तक मेरा दर्द शान्त नहीं होने का है ।

अरुण—बहुत छोटी बात है । उसको तो मैं सीधा कर दूंगा । ऐसी तिकड़म भिड़ाऊंगा कि उसके मित्र ही उसके दुश्मन बन जाएंगे । और उन्हीं के हाथों उसकी पिटाई भी करवा दूंगा ।

तरुण—ऐसा हो जाए तो और भी मजा आ जाए । न रहे बांस और न बजे बांसुरी ।

अमरनाथ—तुम दोनों मित्र यह क्या सोच रहे हो । विचारो भी, तुम लोगों का यह चिन्तन कहां तक उचित है ?

अरुण—तरुण के पिता होकर आप क्या कह रहे हैं ? क्या किशोर क्षमा का पात्र है ?

तरुण—ईंट का जबाब पत्थर से देना चाहिए ।

अमरनाथ—तुम दोनों समझदार हो । ११ वीं कक्षा में पढ़ते हो । क्या किशोर की तरह तुम भी गलती करने की नहीं सोच रहे हो ? ऐसा करने पर क्या उसके मन में आक्रोश नहीं जागेगा ?

अरुण—आक्रोश सदा के लिए शान्त हो जाएगा ।

अमरनाथ—तुम्हारा दिमाग अभी परिपक्व नहीं है । मैं ठीक कह रहा हूँ, इससे परस्पर मनसुटाव बढ़ेगा । झगड़े की एक ऐसी शृंखला शुरू हो जाएगी जिसका कभी अन्त नहीं होगा ।

तरुण—पिताजी ! तो क्या कोई हमारे गाल पर तमाचा मारे उस समय हमें पत्थर के बुत की तरह खड़े रहना चाहिए ।

अमरनाथ—प्रतिकार तुम भले ही करो पर प्रेम पूर्वक करो । यह नहीं कि तुम सदा के लिए उसे दुश्मन बना लो । कहते हैं कि अमेरिका के राष्ट्रपति लिंकन अपने दुश्मनों के साथ भी प्रेम का व्यवहार करते थे । किसी ने उनसे कहा कि आप तो ऐसा करके दुश्मनों को बढ़ावा दे रहे हैं । उन्होंने उत्तर में बताया—मैं ऐसा करके दुश्मनों को बढ़ावा नहीं दे रहा हूँ बल्कि सदा-सदा के लिए उनको मिटा रहा हूँ । मेरे व्यवहार से वे दुश्मन ही कालान्तर में मेरे मित्र बन जाते हैं । यह है अहिंसा-त्मक प्रतिकार का तरीका ।

अभी जो घटना घटित हुई उसको तुम एक ही दृष्टि से क्यों सोचते हो । चिन्तन का दूसरा पक्ष भी तो है, जिससे तुम बिल्कुल बेखबर हो ।

अरुण—वह कौन-सा है ?

अमरनाथ—यह घटना भी कोई न कोई प्रतिक्रिया हो सकती है । शायद तरुण ने कभी उसका बिगाड़ किया है, उसी का बदला उसने लिया हो ।

तरुण—मैंने कभी उसका कुछ नहीं बिगाड़ा ।

अमरनाथ—यह भी संभव है कि इस जन्म में नहीं तो पिछले किसी जन्म में तुमने उसका कुछ नुकसान किया हो । कर्म का भुगतान तो किसी न किसी रूप में करना ही पड़ता है ।

तरुण—कर्म किस चीज का नाम है ?

अमरनाथ—कर्म की व्याख्या बहुत विस्तृत है अगर तुम दोनों समझना चाहो तो स्थिर होकर इसे समझने का प्रयास करो, मैं तुमको सरल ढंग से समझाने की कोशिश करूंगा ।

तरुण—हम इस नये विषय को समझना चाहते हैं, आप अवश्य बतायें ।

अमरनाथ—जीव की प्रवृत्ति से आकृष्ट होकर जो पुद्गल आत्मा के साथ आचिपकते हैं और सुख-दुःख रूप फल देने में कारणभूत बनते हैं उनको कर्म कहते हैं ।

अरुण—पुद्गल से यहाँ क्या तात्पर्य है ?

अमरनाथ—यह जैन दर्शन का पारिभाषिक शब्द है । विज्ञान की भाषा में इसे मेटर कहा जा सकता है । जुड़ना और टूटना इसका स्वभाव होता है । पाप युक्त आत्मा के साथ ये पुद्गल-द्रव्य उसी तरह चिपकते हैं, जैसे गीले कपड़े पर रज कण ।

तरुण—पर ये दिखाई तो नहीं देते ?

अमरनाथ—ये अति सूक्ष्म कण होते हैं, दृष्टि के विषय नहीं होते, न किसी सूक्ष्म वीक्षण यन्त्र से भी इनको देखा जा सकता है । फिर भी ये रूपी अर्थात् आकारवान पुद्गल हैं । इनका अस्तित्व संदेह से परे है व शानियों द्वारा निरूपित है ।

अरुण—ये कर्म एक ही तरह के होते हैं या इनके भी कई प्रकार हैं ?

अमरनाथ—स्वरूप की दृष्टि से ये पुद्गल एक जैसे ही हैं पर आत्मा के आठ मुख्य गुणों को ढकने के कारण इनके भी आठ प्रकार कर दिये गये । जैसे :—

१. आत्मा का पहला गुण है—ज्ञान । उसको रोकने वाले कर्म पुद्गल ज्ञानावरणीय कर्म कहलाते हैं ।
२. दूसरे गुण दर्शन (देखना) को रोकने वाले दर्शनावरणीय कर्म कहलाते हैं ।
३. तीसरे गुण अनन्त आनन्द को रोकने वाले वेदनीय कर्म कहलाते हैं ।
४. चौथे गुण आत्मरमण से दूर भटकाने वाला मोहनीय कर्म कहलाता है ।
५. पाँचवें गुण शाश्वत स्थिरता को रोकने वाला आयुष्य कर्म कहलाता है ।
६. छठे गुण निराकार अवस्था को रोकने वाला नाम कर्म कहलाता

७. सातवें गुण अगुरुलघुपन (न छोटा, न बड़ा) को रोकने वाला गोत्र कर्म कहलाता है। आठवें लब्धि व पराक्रम को रोकने वाला अन्तराय कर्म कहलाता है। इन आठ कर्मों में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार घन-घाती कर्म कहलाते हैं। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र ये चार अघाती कर्म कहलाते हैं।

अरुण—घनघाती कर्म-अघाती कर्म के भेद का आधार क्या है ?

अमरनाथ—सभी कर्म आत्मा को विकृत बनाने वाले हैं। इनमें भी ज्ञानावरणीय आदि चार कर्मों को घनघाती कहा गया है। तीव्र पुरुषार्थ से ही इनका क्षय किया जा सकता है। ये चार कर्म एकान्त अशुभ होते हैं। वेदनीय आदि चार कर्म अघाती हैं। ये आत्मा के मूल गुणों के विघातक नहीं हैं। घनघाती कर्म नष्ट होने पर एक निश्चित कालावधि के बाद उसी जन्म में घाती कर्मों को निश्चित रूप से नष्ट होना ही पड़ता है। ये कर्म शुभ और अशुभ दोनों तरह के होते हैं।

तरुण—पिता श्री! आपके कथन से मैं जहाँ तक समझ पाया हूँ कि कर्म परित्याज्य है, प्राणी को संसार में भटकानेवाले है, ऐसे में कुछ कर्मों को आपने शुभ बताया, यह विरोधी बात लगती है। आग चाहे बड़ी हो, चाहे छोटी चिनगारी के रूप में हो, दोनों का स्वभाव एक सरीखा होता है, सांप चाहे छोटा हो चाहे बड़ा, दोनों ही जहरीले होते हैं।

अमरनाथ—आठ कर्मों में सिर्फ चार वेदनीय, नाम गोत्र और आयुष्य ही शुभ अशुभ दोनों तरह के होते हैं। शुभ कहने का तात्पर्य है—जीव को अनुकूल परिणाम का मिलना। जैसे—सात वेदनीय कर्म के उदय से सुख की अनुभूति का होना, शुभ नाम के उदय से सुन्दर रूप, शरीर आदि का मिलना, उच्चगोत्र कर्म के द्वारा कुलीनता, ऐश्वर्य की प्राप्ति होना, शुभ आयुष्यकर्म से सुखद व लम्बी आयु का होना। कर्म शुभ होने पर भी वह बन्धन है, हेय है। पिंजरा चाहे लोहे का हो, चाहे सोने का एक पक्षी के लिए कैद के समान है। शुभ कर्म व्यक्ति को अच्छा फल देने के कारण प्रिय लगता है, इसलिए उसे शुभ कहा गया है, बाकी कर्म मात्र परित्याज्य है।

तरुण—इन आठ कर्मों के बन्धन के पीछे भी कोई नियम काम करता है क्या ?

अमरनाथ—अवश्य ! अलग-अलग कर्मों के पीछे बन्धन के कारण भी अलग-अलग हैं। जैसे—ज्ञानावरणीय कर्म बन्ध का कारण है—ज्ञान या ज्ञानी पुरुष की अवहेलना करना। दर्शनावरणीय कर्म बन्ध का

कारण है—दर्शन या उसके अधिकारी का अनादर करना। वेदनीय कर्म दुःखरूप बन्ध का कारण है—प्राणियों को दुःख देना और सुख रूप वेदनीय कर्म बन्ध का कारण है प्राणियों को दुःख न देना। मोहनीय कर्म बन्ध का कारण है—तीव्र, क्रोध, मान, माया, लोभ का प्रयोग करना। आयुष्य कर्म बन्ध चार प्रकार का होता है। उसके कारण हैं—१. नरक आयुष्य—पंचेन्द्रिय प्राणी की हत्या, मांसाहार आदि २. तिर्यञ्च आयुष्य—कपट करना, कूट तोल माप करना आदि ३. मनुष्य आयुष्य—भद्र प्रकृति का होना, दया के परिणाम रखना आदि ४. देव आयुष्य—त्याग, तपस्या आदि।

नाम कर्म (शुभ रूप) बन्धन का कारण है—दूसरों को ठगने की मानसिक, वाचिक, शारीरिक चेष्टा न करना और नाम कर्म (अशुभ रूप) का कारण है—ऐसी चेष्टा करना। गोत्र कर्म (उच्च) बन्धन का कारण है—जाति, कुल बल, रूप आदि का अभिमान न करना, गोत्र कर्म (निम्न) बन्ध का कारण है—इनका अभिमान करना। अन्तराय कर्म बन्ध का कारण है—दान, लाभ, भोग आदि में बाधा डालना।

तरुण—तो क्या बंधे हुए सभी कर्मों का फल आत्मा को अवश्यमेव भोगना पड़ता है ?

अमरनाथ—कर्म दो तरह के होते हैं (१) निकाचित कर्म (२) दलिक कर्म। निकाचित कर्म वे कहलाते हैं जिनका बंधन तीव्र आसक्ति व आवेश में होता है। इनका परिणाम अवश्यमेव भोगना पड़ता है। फल-भोग प्रकट रूप में सामने आने से, कर्मोदय की इस प्रक्रिया को विपाकोदय भी कहते हैं। उदाहरण के तौर पर, खन्धक मुनि ने पिछले जन्म में एक कान्चर को छीला था। अपनी कला की उन्होंने अत्यधिक प्रशंसा की। काम बहुत छोटा था पर भावना की प्रगाढ़ता के कारण निकाचित कर्मों का बन्धन हो गया और उसी के परिणाम स्वरूप खन्धक मुनि की पूरी चमड़ी उतार ली गयी।

दलिक कर्म वे होते हैं जिनकी स्थिति व रस को शुभ अध्यवसाय, त्याग, तपस्या, सत्पुरुषार्थ आदि के द्वारा कम किया जा सकता है या उनको समूल नष्ट भी किया जा सकता है। आन्तरिक रूप में कर्मों को भोगने की प्रक्रिया को शास्त्रीय शैली में प्रदेशोदय कहते हैं यानी आत्म प्रदेशों में ही कर्मों को भोग लेना। उदाहरण के तौर पर भरत चक्रवर्ती छुः खण्ड का राज्य करता था, विशाल सम्पदा का धनी

था, जीवन कई बार युद्ध भी किये थे किन्तु भावना की प्रबलता न होने व तीव्र आसक्ति के अभाव के कारण निकाचित बन्धन बहुत कम हुआ, जो कर्म बंधे उनमें भी अधिकांश तप व संयम के कारण आत्म प्रदेशों में उदय आकर भङ्ग गये। भरत उसी जन्म में केवल ज्ञान पाकर सिद्ध, बुद्ध व मुक्त बन गया।

तरुण—किया हुआ कर्म कितने समय बाद में फल देता है ?

अमरनाथ—इसकी कोई एक स्थिति नहीं। एक कर्म इसी जन्म में उदय में आकर फल दे देता है तो किसी एक कर्म के फल देने में असंख्य वर्षों का काल भी बीत जाता है। ऐसी ही बात है जैसे—कोई बीज एक वर्ष में ही फल देने लग जाता है तो कोई बीज अनेक वर्षों बाद में फल देता है।

तरुण—किस कर्म का बन्धन कब हुआ और कब उसका फल मिला इसका हिसाब कौन रखता है ?

अमरनाथ—आत्मा की प्रवृत्ति के साथ ही कर्मों का बन्ध होता है। निकाचित बन्धन होने पर कर्म निश्चित अवधि के बाद फल देकर स्वतः भङ्ग जाते हैं। दलिक बन्धन होने पर वे आत्म प्रदेशों में ही भोग लिये जाते हैं। कर्मों का हिसाब रखने वाला कोई दूसरा नहीं है। हमारी आत्मा ही उसका लेखा जोखा रखती है। उससे छिपा हुआ कोई कर्म नहीं है।

तरुण—पर हमको तो पता भी नहीं चलता कि कौन सा कर्म हमने किस जन्म में किया ?

अमरनाथ—इसका पता तो परमज्ञानी को रहता है कि कौन सा कर्म किसने और कब किया ? हम जैसे को तो इस जन्म की बात भी पूरी याद नहीं रहती।

तरुण—आपने बताया परमज्ञानी जानते हैं कि हमने किस जन्म में क्या कर्म किया तो क्या वे हमें अपनी परमशक्ति से उनके कटु-फल से उबार नहीं सकते या किये हुए असत् कर्मों को सुधार नहीं सकते ?

अमरनाथ—ज्ञानी मात्र कर्म मुक्ति का रास्ता बता सकते हैं, उस पर चलना व्यक्ति की अपनी इच्छा के अधीन है। वे उपदेश देते हैं, जबदस्ती किसी को पापकारी कार्यों से नहीं बचा सकते। उनका कथन है—व्यक्ति पापकारी प्रवृत्ति करने से पहले ही ध्यान रखे। पाप करते समय यदि ध्यान नहीं दिया फिर फल तो भोगना ही पड़ेगा। पत्थर अगर ऊपर की ओर फेंका है तो वह निश्चित ही सिर पर गिरेगा।

जहर अगर किसी ने खाया हो तो मृत्यु की अनिवार्यता कबे कौन टाल सकता है। परमज्ञानी जानते हैं पर कर्मफल में वे हस्तक्षेप नहीं करते। बुद्ध के जीवन का प्रसंग है—एक व्यक्ति उनके पास आया। अपने पिता की मृत्यु से वह शोक संतप्त था। उसने बुद्ध को प्रणाम कर निवेदन किया, भंते ! मेरे पिताजी ने अपने जीवन में कई कुकृत्य किये हैं, आप कोई ऐसा अनुष्ठान करें जिससे उनकी गति सुधर जाये, अपने किये कर्मों का क्रूर परिणाम उनको भोगना न पड़े। बुद्ध ने उस नादान व्यक्ति को समझाने के लिए कहा—पहले तुम कुछ कंकर लाओ फिर उनको घी के बर्तन में डाल दो। व्यक्ति खुश हुआ यह समझकर कि बुद्ध कोई अनुष्ठान कर रहे हैं। कार्य को सम्पन्न कर वह बुद्ध से पूछने लगा, भंते ! अब क्या करना है। उन कंकरो को बाहर निकालकर पानी से भरे बर्तन में डालने के लिए बुद्ध ने कहा। युवक ने आदेश का पालन किया। कंकर बर्तन के पेंदे तक चले गये और घी ऊपर तैरने लगा। युवक असमंजस में था। पुनः बुद्ध से पूछा—अब क्या करूँ भगवन् ? बुद्ध ने उससे कहा—अब इस घी को नीचे कर दो और कंकरो को पानी के ऊपर तैरादो। भगवन् यह तो असंभव है, व्यक्ति ने कहा। अब बुद्ध ने चुटकी लेते हुए उसे समझाया—अगर कंकर ऊपर नहीं तैर सकते और घी नीचे नहीं जा सकता तो तुम्हारे पिता की गति को मैं कैसे सुधार सकता हूँ ? जैसी उनकी मति रहती थी वैसी ही गति होगी।

सरुण—मान लीजिए एक व्यक्ति ने किसी जन्म में कोई बुरा कर्म कर लिया, तो क्या किसी भी उपाय के द्वारा उस कर्म फल से बचा नहीं जा सकता ?

अमरनाथ—कर्म की एक अवस्था है संक्रमण। समानजातीय कर्म प्रकृतियों का अशुभ बन्धन शुभ रूप में बदल सकता है अगर व्यक्ति का सत्पुरुषार्थ हो। इसी तरह शुभ बन्धन अशुभ में परिवर्तित हो सकता है अगर व्यक्ति का पुरुषार्थ गलत हो। पर निकान्चित बन्धन में हेर-फेर नहीं होता है।

अरुण—पर कर्म तो हमारी तरह चेतन नहीं पुद्गल है, फिर वे व्यक्ति को किस तरह प्रभावित करते हैं ?

अमरनाथ—आत्मा जब अपने चिन्मय और शुद्ध स्वरूप में विराजमान हो जायेगी तब इस पर जड़ कर्मों का कोई असर नहीं होगा। किन्तु अब तक छंसारी अवस्था में है तब तक कर्मों का चेतन आत्मा पर असर

होगा। जैसे शराब जड़ होते हुए भी व्यक्ति को उन्मत्त बना देती है, क्लोरोफार्म सूँघते ही व्यक्ति संज्ञा रहित हो ज़रता है वैसे ही कर्म जड़ होते हुए भी चेतन पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहते।

तरुण—ये आठ कर्म आत्मा को किस रूप में प्रभावित करते हैं ?

अमरनाथ—कर्म आत्मा को चार रूपों में प्रभावित करते हैं। १. आवरण

रूप २. विकार रूप ३. अवरोध रूप ४. शुभ-अशुभ का संयोग रूप।

१. आवरण रूप—ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म आत्मा के मूल गुण ज्ञान और दर्शन को आवृत करते हैं। हर व्यक्ति में ज्ञान और दर्शन की क्षमता में अन्तर रहता है इसका कारण इन दोनों कर्मों का हल्कापन व भारीपन ही है। २. विकार रूप—आत्म-स्वरूप को विकृत बना देना मोहनीय कर्म का कार्य है। ३. अवरोध रूप—आत्मा की शक्ति व पुरुषार्थ में अवरोध पैदा करना अन्तराय कर्म का कार्य है। ४. शुभ-अशुभ का संयोग रूप—शेष चार कर्म वेदनीय, नाम, गौत्र और आयुष्य के उदय से जीव को शुभ व अशुभ का संयोग होता रहता है। साता वेदनीय कर्म के द्वारा सुखानुभूति और असाता वेदनीय कर्म से दुःखानुभूति होती है। शुभ नाम कर्म से सुन्दर रूप, स्वस्थ शरीर आदि की प्राप्ति होती है और अशुभ नाम कर्म से विकृत रूप, रुग्ण शरीर की प्राप्ति होती है। उच्च गौत्र कर्म के कारण उच्चता, ऐश्वर्यशीलता व नीच गौत्र कर्म के कारण दीनता व अनादेयता की प्राप्ति होती है। शुभ आयुष्य कर्म के कारण व्यक्ति को शुभ व सुखद आयु प्राप्त होती है और अशुभ आयुष्य कर्म के कारण छोटी, अशुभ व दुःखद आयु प्राप्त होती है।

तरुण—पिताश्री ! कर्म का विषय गहरा है इसे सुगम बनाने के लिए आप उदाहरणों के द्वारा समझाएँ तो अच्छा रहेगा।

अमरनाथ—सुनो, ज्ञानावरणीय कर्म आँख पर पट्टी की तरह है, आँखों के आगे पट्टी बंधी होने के कारण जैसे कुछ दिखाई नहीं देता वैसे ही ज्ञानावरणीय कर्म का प्रभाव है। दर्शनावरणीय कर्म प्रहरी के समान है। प्रहरी के मना करने पर राजा के दर्शन नहीं होते, ऐसा ही दर्शनावरणीय कर्म का प्रभाव है। मधु से लिप्त तलवार की धार के समान वेदनीय कर्म है। तलवार को चाटने से स्वाद मालूम पड़ता है, ऐसा है सात वेदनीय कर्म और जीभ कट जाती है, ऐसा है असाता वेदनीय कर्म। सुरापान की तरह मोहनीय कर्म आत्मा को उन्मत्त बनाता है ! बेड़ी की तरह है—आयुष्य कर्म। बेड़ी के टूटे

बिना एक कदम भी चला नहीं जा सकता, ऐसे ही आयुष्य कर्म दृष्टे बिना जीव जन्म-मरण से मुक्त नहीं हो सकता। नाम कर्म चित्रकार की तरह है। चित्रकार नये-नये चित्र बनाता है वैसे ही नाम कर्म विविध प्रकार के रंग, रूप व शरीर प्रदान करता है। कुम्भकार की तरह गोत्र कर्म है। कुम्भकार मिट्टी के तरह-तरह के बर्तन बनाता है, वैसे ही गोत्र कर्म जीव को उच्चता व नीचता प्रदान करता है। अन्तराय कर्म भण्डारी की तरह है। राजा का आदेश होने पर भी भण्डारी के दिये बिना इच्छित वस्तु नहीं मिलती, वैसे ही अन्तराय कर्म पग-पग पर विघ्न उपस्थित करता रहता है।

अरुण—बड़ा अच्छा समझाया आपने। एक बात बतायें कि कर्म सिद्धान्त भगवान् ने बताया यही इसकी सत्यता का प्रमाण है या कुछ और भी ?

अमरनाथ—भगवान् ने बताया, इसके अलावा भी हमारे पास प्रमाण हैं। बहुत सारी स्थितियां ऐसी हैं जिनसे कर्म सिद्धांत की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। जैसे—एक ही परिवार में जन्म लेने वाले दो लड़के, एक स्वस्थ रहता है, दूसरा प्रतिदिन बीमार रहता है, एक सुखी है, दूसरा दुःखी है, एक धनवान बन जाता है, दूसरा गरीब रह जाता है, एक योग्य दूसरा अयोग्य रह जाता है। इस विविधता का कारण कर्म ही तो है।

तरुण—इस विविधता का कारण परिस्थिति भी तो हो सकती है।

अमरनाथ—परिस्थिति भी कर्म का ही परिणाम है। एक व्यक्ति सम्पन्न होने के बावजूद शारीरिक स्थिति के कारण रात-दिन दुःखी रहता है, चारों ओर प्रतिकूलता होने पर भी पूर्व संचित शुभ कर्मों के कारण एक व्यक्ति अनुकूल परिस्थिति को पा लेता है। दो विद्यार्थी समान बुद्धि वाले, अच्छा श्रम करने पर भी एक परीक्षा के समय बीमार पड़ जाता है, पीछे रह जाता है, दूसरा आगे बढ़ जाता है। हमें व्यक्ति की सफलता व विफलता में परिस्थिति कारणभूत लगती है पर उस परिस्थिति के पीछे भी एक हेतु है और वह है—कर्म।

तरुण—अगर हम अपनी वर्तमान स्थिति का एक-मात्र कारण कर्म ही मान लेंगे तो फिर क्या नियतिवाद को बल नहीं मिलेगा। जैसा कर्म किया है फल तो वैसा ही मिलेगा, पुरुषार्थ की क्या जरूरत है, क्या ऐसी भावना नहीं पनपेगी ?

अमरनाथ—कर्मवाद कभी पुरुषार्थ को कमजोर नहीं करता। कर्मवाद का अर्थ इतना ही है—हम अपनी वर्तमान परिस्थिति के लिए दूसरों को

दोषी न ठहराएँ। हमारे कृत कर्मों के कारण ही ऐसी स्थिति बनी है, हम स्वयं इसके जिम्मेवार हैं। जैसा पहले बताया गया, पुरुषार्थ के द्वारा कुछ कर्मों के फल को मन्द भी किया जा सकता है। हाथ पर हाथ धरकर बैठने से तो अच्छे कर्म के अच्छे फल से भी व्यक्ति वंचित रह सकता है। जैन दर्शन एकांगी नहीं है, वह कर्मवाद में विश्वास रखता हुआ भी कार्य सिद्धि में काल, स्वभाव, कर्म, पुरुषार्थ और नियति इन पांच तत्त्वों को योगभूत मानता है। ये पाँचों तत्त्व भी कर्मवाद के पूरक के रूप में हैं। इनमें परस्पर कहीं विरोध नहीं है।
 तरुण—कौन-सा कर्म शुभ है, कौन-सा अशुभ इसकी पहचान का भी कोई तरीका है क्या ?

अमरनाथ—बहुत सीधा-सा तरीका है इसका। हमारी प्रवृत्ति के तीन स्रोत हैं—मन, वचन और शरीर। इनकी सत्प्रवृत्ति से जिसका बन्ध होता है वह शुभ कर्म और उसका फल भी अच्छा होता है और इनकी असत्प्रवृत्ति से जिस का बन्ध होता है वह कर्म अशुभ और उसका फल भी बुरा होता है।

अरुण—अमरनाथजी ! फिर तो हम कर्म से मुक्त हो ही नहीं सकेंगे। क्योंकि प्रवृत्ति तो जब तक देह अवस्था में रहेंगे तब तक शुभ या अशुभ कोई न कोई रूप में चलती ही रहेगी। जब तक प्रवृत्ति रहेगी तब तक कर्म का बन्धन होता रहेगा। और कर्म का बन्धन चालू रहेगा तब तक मुक्ति असंभव है।

अमरनाथ—उचित है तुम्हारी आशंका किन्तु इसका भी समाधान है। तुमको पता होना चाहिये कर्म बन्धन का मूल कारण कषाययुक्त प्रवृत्ति है। साधना के द्वारा व्यक्ति की चेतना ऊर्ध्वमुखी बनती है। साधना करते-करते एक अवस्था ऐसी भी आती है जब कषाय पूरी तरह क्षीण हो जाता है, प्रवृत्ति वहाँ चालू रहती है किन्तु बन्धन बहुत हल्का होता है। जो होता है वह भी शुभ कर्म का होता है। जिस तरह सूखी मिट्टी का लड्डू दीवार पर फँकते ही स्पर्श करके तत्काल गिर जाता है, दीवार के चिपकता नहीं। वैसे ही कषाय रहित आत्मा के कर्म का स्पर्श मात्र होता है वहाँ वह टिक नहीं सकता। पूर्व बन्धे हुए कर्म उस समय बहुत तेजी से क्षीण होने लगते हैं। एक क्षण ऐसा भी आता है जब आत्मा सम्पूर्ण कर्मों को नष्ट कर अपने चिन्मय स्वरूप को पा लेती है।

अरुण—एक बात समझ में नहीं आयी कि कर्म जड़ पुद्गल है, रूपी/आकारवान

है और आत्मा अरूपी/निराकार है फिर इनका सम्बन्ध किस प्रक्रिया से होता है ?

अमरनाथ—तुम्हारी जिज्ञासा उचित है। अरूपी आत्मा के साथ रूपी कर्म का सम्बन्ध असंभव है इसीलिए तो मुक्तात्मा के साथ कर्म का कोई सम्बन्ध नहीं होता। लेकिन संसारी आत्मा स्वरूपतः अमूर्त होते हुए भी कर्मबद्ध होने के कारण पूरी तरह अमूर्त नहीं है। कर्मशरीर से प्रतिक्षण जुड़ी रहने के कारण उसको रूपी/आकारवान् भी कहा जाता है।

अरुण—आत्मा कर्मों को किस तरह ग्रहण करती है ?

अमरनाथ—जिस तरह जलता हुआ दीपक, बाती के द्वारा प्रतिक्षण तेल को खींचता रहता है वैसे ही आत्मा अपनी प्रवृत्ति के द्वारा प्रतिक्षण कर्मों को खींचती रहती है।

अरुण—यह भी बतायें कि कर्म बन्ध का एक ही रूप है या इसके भी कई रूप हैं ?

अमरनाथ—कर्मबन्ध के चार रूप हैं—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्ध के ये सभी प्रकार एक ही समय में एक साथ होते हैं। इनमें भी प्रदेश बन्ध सबसे पहला है। इसका अर्थ है—आत्मा के साथ-कर्मों का दूष-पानी की तरह एकी भाव। उसके साथ ही प्रकृति बन्ध होता है अर्थात् बद्ध कर्म की क्या प्रकृति है, उसका स्वभाव क्या है ? जैसे ज्ञानावरणीय कर्म का स्वभाव ज्ञान को ढकने का है, दर्शनावरणीय कर्म का स्वभाव दर्शन गुण को ढकने का है, मोहनीय कर्म का स्वभाव व्यक्ति को दिग्मूढ़ बनाना है, अन्तराय कर्म का स्वभाव कार्यों में विघ्न डालना है आदि। कर्म की मूल प्रकृतियाँ ज्ञानावरणीय आदि आठ हैं जो पहले बता दी गयी हैं, इनकी उत्तर प्रकृतियाँ ६७ हैं। बद्धकर्म की प्रकृति के साथ ही उसकी स्थिति का निर्धारण होता है। निश्चित समय के बाद वह कर्म झड़कर आत्मा से अलग हो जाता है, यह स्थिति बंध कहलाता है। कर्म पुद्गलों के रस की तीव्रता या मन्दता का निर्धारण अनुभाग बन्ध है।

तरुण—पिताजी ! आत्मा और कर्म का सम्बन्ध परस्पर कब हुआ ?

अमरनाथ—आत्मा और कर्म का सम्बन्ध अनादिकाल से चला आ रहा है। अगर सम्बन्ध की शुरुआत मानें तो यह भी मानना होगा कि इस सम्बन्ध से पहले आत्मा कर्म मुक्त थी। पर कर्ममुक्त आत्मा संसार में रहती नहीं। इसलिए इस सम्बन्ध की कोई आदि नहीं है।

अरुण—ऐसा अगर है तो फिर इस सम्बन्ध का अन्त भी नहीं हो सकेगा ?

अमरनाथ—ठीक है, अनादि का कभी अन्त नहीं होता । पर एक बात समझने की है कि यह सम्बन्ध प्रवाह रूप से अनादि है, व्यक्ति रूप से हर कर्म सम्बन्ध की आदि भी है, अन्त भी है । जैसे—एक समय कोई कर्म बन्धा, वह निश्चित अवधि के बाद नष्ट हो जाता है । कोई भी संबंध स्थायी नहीं है । तपस्या व साधना के द्वारा आत्मा कर्म से उसी तरह मुक्त हो जाती है जिस तरह कोल्हू आदि के द्वारा तेल खल रहित, आग पर तपाने से सोना खाद रहित होता है ।

तरुण—पिताजी ! इस कर्मवाद को मानने से फायदा क्या है ?

अमरनाथ—सबसे बड़ा फायदा तो यह है कि कर्मवाद को समझने के बाद व्यक्ति किसी दूसरे को अपना दुश्मन नहीं मानेगा । असुक ने मेरा अनिष्ट कर दिया, यह नहीं सोचकर व्यक्ति अपनी आत्मा को ही स्वयं के अनिष्ट में कारणभूत मानेगा । व्यक्ति स्वयं को सत्पुरुषार्थ में लगाएगा क्योंकि वह जानता है कि वर्तमान प्रवृत्ति ही उसके भविष्य के निर्माण में सहायक बनेगी । फिर वह किसी दूसरे के आगे हाथ नहीं फैलायेगा । न निराश होकर हाथ पर हाथ धरकर बैठेगा । उसमें यह विश्वास जम जाएगा कि कोई दूसरा किसी को सुखी नहीं बना सकता, अपने शुभ कर्मों से ही व्यक्ति सुखी बनता है । फिर वह विपत्ति के समय अधीर नहीं होगा, कर्म का भोग मानकर उसे समता से सहन करेगा । उसमें वीरतापूर्वक हर परिस्थिति से जूझने की क्षमता का विकास होगा ।

अरुण—ऐसा कर्मवाद तो विश्वास करने योग्य है ।

अमरनाथ—मैं सोचता हूँ अब तो तुम दोनों की दृष्टि भी परिमार्जित हो गई होगी । पहले तुम किशोर को अपना दुश्मन मान रहे थे, क्या अब भी मानते हो ?

तरुण—नहीं पिताजी ! किशोर को तो मैं इस वेदना में निमित्त घर मानता हूँ । मूल कारण तो मेरे अपने किए हुए कर्म ही हैं । मैं उसे अपना दुश्मन नहीं मानता, न मुझे उससे कोई झगडा भी करना है ।

अरुण—आपने कर्मवाद को विस्तार से समझाकर हमारे पर असीम उपकार किया है । हमारे सोचने का प्रकार आपने बदल दिया । आपके प्रति असीम कृतज्ञता ।

स्याद्रवाद

(कक्षा का दृश्य अध्यापक कुर्सी पर बैठा है, सामने बेंचों पर कुछ लड़कें बैठी हैं)

अध्यापक—प्यारे विद्यार्थियों ! स्कूल का नया सत्र प्रारम्भ हो गया है । अध्ययन भी तुम्हारा व्यवस्थित चालू हो गया है । एक काम जो मुझे आज सम्पन्न करना है, वह है कक्षानायक की नियुक्ति । मैं तुम लड़कों से ही जानना चाहता हूँ कि तुम्हारी नजर में इसके लिए कौन योग्य है ।

रमेश—सर, मैं विनोद का नाम इसके लिए प्रस्तावित करता हूँ ।

दो छात्र—हमको मान्य नहीं है सर !

रमेश—विनोद से बढ़कर हमारे में कोई योग्य लड़का नहीं, उसने पिछले वर्ष हमारी कक्षा में सर्वाधिक अंक प्राप्त किये थे ।

दो छात्रों में से कोई एक—सर्वाधिक अंक पा लेना कोई मापदण्ड नहीं है मास्टर साहब ! लड़कों पर कण्ट्रोल कर सके ऐसी क्षमता भी तो मॉनिटर में होनी चाहिए । इस क्षमता का उसमें नितान्त अभाव है । भीरु स्वभाव वाला क्या दूसरों पर नियन्त्रण कर सकता है ?

विनोद—सर, कक्षानायक बनने में मेरा स्वयं का आकर्षण नहीं है और न मैं इसके लिए अपने को योग्य भी समझता हूँ ।

अध्यापक—तो कोई दूसरा नाम पेश किया जाये ।

विनोद—अध्यापक महोदय ! मेरी नजर में अशोक इसके लिए उपयुक्त है । लड़कों पर नियन्त्रण करने में भी वह सक्षम है और भाषण देने में भी बड़ा दबंग है ।

दो छात्र—हम नहीं चाहते इसे ।

अध्यापक—क्यों, क्या कठिनाई है तुम्हें ?

(दो में से एक)—यह प्रकृति का बड़ा ऋगड़ा है । आये दिन लड़कों से ऋगड़ता रहता है ।

अशोक (जोश में)—सर, सुझी भर इन लड़कों के कहने से मैं ऋगड़ा सिद्ध

नहीं हो जाता। आप मेरे नाम पर वोटिंग करवा लें, पता चल जायेगा कि कक्षा के ज्यादातर लड़के सुझे चाहते हैं या नहीं।

दो छात्रों में से एक—देखिए, गुस्सा तो इसके पहले बंधा है।

दूसरा छात्र—हमारा कोई अशोक से व्यक्तिगत विरोध नहीं किन्तु निर्णय से पहले व्यक्ति की अच्छाई-बुराई की चर्चा तो कर ही लेनी चाहिए। (थोड़ी हलचल शुरू हो जाती है)

अध्यापक—शान्त, यह कोई राजनैतिक चुनाव नहीं है जो वोटिंग कर लें। न कोई मैंने इस पद के लिए नामांकन पत्र भी आपसे मांगे। हमारी स्कूल का आदर्श रहा है यहां चुनाव की बजाय मनाव पद्धति से काम होता है। तुम एक ऐसा नाम प्रस्तावित करो, जो सभी को जंच जाये और जो सभी पर नियन्त्रण कर सके, साथ ही कक्षा की व्यवस्था को भी संभाल सके।

विशाल—सर ! महावीर इसके लिए योग्य है। प्रकृति का विनम्र है, सबको साथ में लेकर चलने वाला है, नियन्त्रण करने की भी उसमें क्षमता है।

कई छात्र—हम सब उसके नाम का समर्थन करते हैं।

अशोक—विरोध तो नहीं है मेरा भी इस नाम से, किन्तु अच्छाई के साथ बुराई की भी चर्चा कर लेनी चाहिए, जैसा कि मेरा नाम आने पर की गई।

अध्यापक—कहो, क्या बुराई है इसमें।

अशोक—और बातें तो ठीक है पर महावीर थोड़ा भोले स्वभाव का है।

एक छात्र—ज्यादा होशियार भी क्या काम का जो चलते हुए आदमी की जेब काट ले।

अध्यापक—देखो, यों तो व्यक्ति मात्र में गुण और दोष दोनों मिलते हैं। जिस कार्य के लिए जिस गुण से युक्त व्यक्ति की जरूरत रहती है हमें तो उसकी उस विशेषता को सुखयता देनी होगी। यह तो तुम भी मानते हो कि महावीर में सबको साथ लेकर चलने की, कक्षा की व्यवस्था संभालने की, सबसे मिल-जुलकर रहने की विशेषता है, जो एक कक्षा-नायक में होनी चाहिए।

अशोक—इसमें तो खैर कोई विरोध जैसी बात नहीं।

अध्यापक—मैं मानता हूँ, महावीर नाम के साथ सबकी सहमति जुड़ी है। (एक क्षण रुककर) तो सर्व सम्मति से इसे कक्षानायक नियुक्त किया जाए !

अनेक लड़के—जी हां।

अध्यापक—सर्व सम्मति से महावीर को कक्षानायक नियुक्त किया जाता है ।

देखो विद्यार्थियों ! आज के इस प्रसंग से तुम जैन दर्शन के स्याद्वाद सिद्धांत को बहुत आसानी से समझ सकते हो ।

एक छात्र—क्या होता है स्याद्वाद ?

अध्यापक—स्याद् का अर्थ है कथंचित्, वाद का अर्थ है कथन । दूसरे शब्दों में कहा जाये तो स्याद्वाद का तात्पर्य है—अपेक्षावाद, अपेक्षा के द्वारा हर व्यक्ति या वस्तु का प्रतिपादन करना

वस्तु का सम्पूर्ण ज्ञान अनेकान्त दृष्टि के द्वारा सम्भव है और स्याद्वाद के द्वारा वह अनेकान्तात्मक वस्तु वाणी का विषय बनती है । उसका समग्र प्रतिपादन सापेक्षता के द्वारा ही किया जा सकता है । कोई भी कथन निरपेक्ष नहीं हो सकता, जैसे—एक विद्यार्थी बौद्धिकता की अपेक्षा अच्छा है और वक्तृत्व की अपेक्षा अच्छा नहीं है । वैसे ही किसी के लिए दूध लाभकारी है तो किसी के लिए हानिकारक । ऊनी कपड़ा सर्दों में अच्छा है, गर्मी में अच्छा नहीं । एक ही समय किसी के लिए अच्छा है, किसी के लिए बुरा । इस प्रकार अपेक्षापूर्वक कथन करना स्याद्वाद है ।

भगवान महावीर ने अपने प्रवचनों में इसी शैली का प्रयोग किया है । श्राविका जयन्ती ने भगवान से पूछा—प्रभो ! जीव का जागना अच्छा है या सोना ? भगवान ने फरमाया धार्मिक का जागना अच्छा है और अधर्मीजनों का सोना अच्छा है । इसी तरह के प्रश्नोंत्तरो से उनका वाङ्मय भरा पड़ा है ।

एक छात्र—सर आप कहानी के द्वारा इस जटिल विषय को स्पष्ट करेंगे तो अच्छा रहेगा ।

अध्यापक—तो सुनो ! एक कुम्हार के दो लड़कियां थी । एक किसान के घर ब्याही गई, दूसरी कुम्हार के घर । पिता अपनी लड़कियों से मिलने गया । किसान के घर ब्याही लड़की उदास रहती थी । पिता के पूछने पर उसने बताया कि पिताजी बरसात नहीं हो रही है, यही मेरे दुःख का कारण है । मैं चाहती हूँ जल्दी से जल्दी बरसात हो जाये ताकि फसल पककर तैयार हो जाए । कुछ दिन बाद पिता जब अपनी दूसरी लड़की से मिलने गया तो उसको भी उदास देखा, पिता ने उससे भी उदासी का कारण पूछा तो उसने कहा—पिताजी ! आकाश में बादल मंडरा रहे हैं, घड़े पकने को दूखे हुए हैं । सोच रही हूँ अगर बरसात हो गई तो मेरी सारी मेहनत चौपट हो जायेगी कुछ दिन

वर्षा न हो तो अच्छा रहे। एक लड़की वर्षा की प्रार्थना कर रही है तो दूसरी वर्षा को बुरी बता रही है। स्याद्वाद का विद्यार्थी इसे आसानी से समझ जायेगा कि एक ही समय व एक ही परिस्थिति किसी के लिए सुखद है तो किसी के लिए दुःखद।

एक छात्र—महोदय, इस तरह हर कथन के साथ अगर हम अपेक्षा को जोड़ेंगे तो निश्चयपूर्वक कुछ बोल भी नहीं पायेंगे।

अध्यापक—सही तो यह है कि अपेक्षा को साथ में जोड़े बिना हम निश्चय-पूर्वक बोल भी नहीं सकते हैं। किसी भी सत्य को सही ढंग से समझने के लिए उसके पीछे जुड़ी अपेक्षाओं को तो समझना ही होगा। उदाहरण के तौर एक ही व्यक्ति स्वयं में पिता, पुत्र, नाना, चाचा, साला, जवाई आदि अनेक रूपों को लेकर चलता है। अगर इन संज्ञाओं के पीछे जुड़ी अपेक्षाओं को हमने समझ लिया तो उस व्यक्ति को हम समग्रता से जान जायेंगे, नहीं तो असमंजस में पड़ जायेंगे कि यह क्या—जो पिता है वह पुत्र कैसे? चाचा या नाना कैसे? अपेक्षा साथ में जुड़ी हुई है तो समझने में कठिनाई नहीं होगी कि वह पिता है अपने पुत्र की दृष्टि से न कि अपने पिता की दृष्टि से। अपने पिता की दृष्टि से तो वह व्यक्ति पुत्र ही है न कि पिता। अपेक्षाओं को नहीं समझने के कारण ही तो कई विवाद खड़े हो जाते हैं।

एक छात्र—वह कैसे?

अध्यापक—छोटी-सी कहानी से मैं इस बात को समझाऊँगा। कुछ अन्धे व्यक्ति एक म्यूजियम में चले गये। भीतर घुसते ही एक संगमरमर का बना हाथी खड़ा था। किसी ने उनको हाथी के पास ले जाकर कहा—भाइयों! यह म्यूजियम का हाथी है। उन्होंने उसको छूकर अपने अनुमान से हाथी का वर्णन करना शुरू कर दिया। एक ने सूँड़ पर हाथ लगाकर हाथी को केले जैसा बताया। दूसरे ने पैरों के हाथ लगाकर खम्भे जैसा तीसरे ने कान के हाथ लगाकर छाज जैसा और चौथे ने पेट के हाथ लगाकर उसको दीवार जैसा बताया। आपस में एक-दूसरे के कथन को वे गलत ठहराने लगे। एक आँख वाला व्यक्ति वहाँ पहुँचा। उनके विवाद को लेकर कुछ क्षण हँसता रहा, फिर बोला, भाइयों! झगड़ते क्यों हो? तुम सब सही हो और गलत भी। अंधों ने पूछा—कैसे? उसने उत्तर दिया—तुम उब हाथी के एक-एक अंग का वर्णन कर रहे हो और उसी को सम्पूर्ण हाथी बता रहे हो अतः सब झूठे हो।

दूसरों के कथन की अपेक्षा को अगर स्वीकार करो तो तुम सब सही हो। अब उनको अपने अधूरे ज्ञान पर हंसी आई और व्यर्थ विवाद में उलझने पर अफसोस भी हुआ।

एक छात्र—सर! फिर तो समग्रता से हम किसी विषय या वस्तु का वर्णन कर भी नहीं सकते। क्योंकि हमारे ज्ञान व अभिव्यक्ति दोनों की सीमा है।

अध्यापक—इसी का तो समाधान स्याद्वाद है। हर पदार्थ में है और नहीं दोनों तरह के अनन्त धर्म पाये जाते हैं। अनन्त पर्यायों उसमें विद्यमान हैं जैसे—यह वस्त्र रेशम का है सूत का नहीं, यह वस्त्र पीले रंग का है लाल रंग का नहीं, स्वदेशी मील का बना है विदेश का नहीं, सोहन का है मोहन का नहीं, ओढ़ने के लिए है पहनने के लिए नहीं, सर्दी में काम का है गर्मी में नहीं आदि-आदि। इस तरह की अनन्त अवस्थाएं हर पदार्थ में हैं। स्याद् शब्द के द्वारा हम एक अपेक्षा को मुख्य मानकर दूसरी को गौण कर देते हैं, दूसरे समय में किसी और विशेषता को मुख्य करके पहली बात को गौण कर देते हैं। स्याद्वाद वस्तु के किसी भी धर्म की अपेक्षा नहीं करता पर अपेक्षा को जोड़कर उसका प्रतिपादन करता है।

एक छात्र—एक ही पदार्थ है भी और नहीं भी, ऐसा कहने से क्या पदार्थ में विरोध उत्पन्न नहीं होगा ?

अध्यापक—स्याद्वाद विरोधी तत्त्वों में भी अविरोध को खोजता है फिर विरोध उत्पन्न होने की बात तो दूर है। एक व्यक्ति कहता है—दूध अच्छा है दूसरा कहता है—दूध अच्छा नहीं है। बोलने वालों की भावना व अपेक्षा को अगर नहीं समझा जायें तो हमें प्रत्यक्ष विरोध नजर आयेगा, अन्यथा कोई विरोध नहीं है। दूध अच्छा है उनके लिए, जिनकी हाजमाशक्ति ठीक है, दूध अच्छा नहीं है उनके लिए, जिनकी हाजमा शक्ति कमजोर है। इन दोनों के पीछे जुड़ी हुई अपेक्षाओं को समझते ही हमारी दृष्टि का विरोध स्वतः मिट जायेगा।

एक छात्र—क्या स्याद्वाद संशय उत्पन्न नहीं करता, जब हम कहते हैं, यह पदार्थ है भी और नहीं भी ?

अध्यापक—संशय के लिए इसमें तनिक भी अवकाश नहीं। क्योंकि जहाँ संशय है वहाँ निर्णायकता नहीं है। गाय है या गधा इस प्रकार का ज्ञान संशय कहलाता है। जबकि स्याद्वाद तो स्पष्ट रूप से कहता है अमुक पदार्थ अमुक अपेक्षा से है, अमुक अपेक्षा से नहीं। एक ही

व्यक्ति बड़ा है और नहीं भी। अपेक्षा को नहीं जानने वाले को संशय हो सकता है कि बड़ा है भी और नहीं भी, तो फिर क्या है? किन्तु अपेक्षा को जिसने जान लिया उसको यह निश्चय हो जायेगा, बड़ा है अपने छोटे भाई की दृष्टि से और छोटा है अपनी बड़ी बहन की दृष्टि से। इसी तरह एक और उदाहरण है। कुछ व्यक्ति पास-पास खड़े थे एक व्यक्ति ने कहा—मैं पूर्व में खड़ा हूँ, दूसरे ने कहा—पूर्व में नहीं, तु पश्चिम में खड़ा है, तीसरे ने कहा कि नहीं-नहीं उत्तर में खड़ा है; चौथे ने कहा कि—सब गलत कह रहे हैं, तू दक्षिण में खड़ा है। परस्पर विरोध हो गया। उनको विवाद करते देख एक विवेकशील व्यक्ति ने उनको समझाया तब उनको लगा कि सबका कहना सही है वहाँ कोई विरोध नहीं है। क्योंकि जो व्यक्ति उसके पीछे खड़ा है उस अपेक्षा से वह पूर्व में, जो आगे खड़ा है उस व्यक्ति की दृष्टि से पश्चिम में, दाहिनी तरफ खड़े व्यक्ति की अपेक्षा से उत्तर में, बाँयी ओर खड़े व्यक्ति की अपेक्षा से वह दक्षिण में था।

एक छात्र—दो विरोधी पक्षों में सामञ्जस्य स्थापित करने वाला यह सिद्धान्त सचमुच प्रशंसनीय है। क्या विज्ञान में भी इसका कोई प्रायोगिक स्वरूप मिलता है?

अध्यापक—इस सार्वभौम सिद्धान्त का प्रयोग विज्ञान में भी प्रचुर रूप से हुआ है। जैन दर्शन में लोक-अलोक की तरह विज्ञान में भी जगत्-प्रतिजगत् (युनिवर्स, एण्टी युनिवर्स), पदार्थ-प्रतिपदार्थ (मैटर, एण्टीमैटर) तथा कण, प्रतिकण को स्वीकार किया गया है। वैज्ञानिकों ने प्रतिकण को खोजने के लिए सूक्ष्म उपकरणों का निर्माण कर लिया है। एक सेकेण्ड के पन्द्रह अरबवें हिस्से में होने वाले परिवर्तन को आज पकड़ा जा सका है। इस प्रयोग के द्वारा विज्ञान ने यह निष्कर्ष दिया कि प्रतिकण के बिना कण का अस्तित्व टिक नहीं सकता।

अध्यापक—तुमने प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटीन का नाम तो सुना ही होगा?

कई छात्र—जी हाँ।

अध्यापक—आइन्सटीन ने सापेक्षवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। स्याद्वाद और सापेक्षवाद एक दूसरे के काफी निकट हैं। एक उदाहरण के द्वारा आइन्सटीन सापेक्षवाद की व्याख्या किया करते थे कि एक व्यक्ति जब चूल्हे के पास बैठता है तो पाँच मिनट उसे एक घंटा ज्यों लगती है। वही जब अपनी प्रेयसी के पास बैठता है तो एक घंटा उसे पाँच मिनट के बराबर लगने लगता है। समय एक

ही है पर परिस्थितियों के भेद से वह छोटा व लम्बा लगने लगता है। सापेक्षवाद भी हर कथन व घटना के पीछे जुड़ी अपेक्षा को मुख्यता देता है। ऐसा लगता है भगवान् महावीर के स्याद्वाद दर्शन का संप्रेषण आइन्सटीन में हुआ और उसकी निष्पत्ति सापेक्षवाद के रूप में हुई। निश्चित ही स्याद्वाद को विज्ञान का बहुत बड़ा समर्थन है।

एक छात्र—सर एक जिज्ञासा है कि दर्शन के अलावा भी क्या स्याद्वाद की शैली का प्रयोग हुआ है ?

अध्यापक—कोई भी वापिबन्धास स्याद्वाद की मुद्रा से अछूता नहीं रह सकता। सभी धर्म दर्शनों ने तत्त्वप्रतिपादन में इस शैली को अपनाया है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ चरक संहिता का एक श्लोक है जिसमें स्याद्वाद दर्शन का प्रतिबिम्ब झलकता है।

“योगादपि विषं तीक्ष्णं, उत्तमं भेषजं भवेत्,
भेषजं चापि दुर्युक्तं, तीक्ष्णं सम्पद्यते विषम् ॥”

तीक्ष्ण जहर भी उचित मात्रा में मिलकर उत्तम औषध का काम कर देता है और मात्रा के अतिरिक्त होने से उत्तम दवा भी जहर बन जाती है। इस तथ्य को प्रमाणित करनेवालों अनेक घटनाएँ हमें देखने को भी मिलती हैं। एक रोगी को दवा दी गई पर वह ऊँचे पावर की होने से उसकी जबान बन्द हो गई, किसी एक के दिमाग में असन्तुलन पैदा हो गया।

शिक्षा, नीति आदि के ग्रन्थों में भी स्याद्वाद की शैली को देखा जा सकता है।

एक छात्र—क्या राजनीति में भी स्याद्वाद कोई प्रभावी भूमिका प्रस्तुत कर सकता है ?

अध्यापक—आज हम विश्व मंच पर देख रहे हैं, राजनीति में अनेक प्रकार की विचारधाराएँ पल्लवित हो रही हैं। कहीं समाजवाद है तो कहीं पूंजीवाद और कहीं एकतन्त्र है तो कहीं लोकतन्त्र पर आपस में कहीं संघर्ष उत्पन्न नहीं होता। राजनीति में सह-अस्तित्व (को-एग्जिस्टेंस) के सिद्धान्त को मान्यता मिल गई है।

इस नीति के कारण ही तो राष्ट्रसंघ में विभिन्न विचारधाराओं वाले राष्ट्रों का प्रतिनिधित्व हो रहा है। अगर सह अस्तित्व नहीं होता तो एक दूसरे के विपरीत विचारधाराओं के प्रतिनिधि एक साथ नहीं रह सकते। फिर एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर अपनी विचारधारा को लादने की

चेष्टा करता। फलस्वरूप टकराहट होती। सह अस्तित्व की नीति स्याद्वाद पर आधारित है।

हमारा यह जीवन और समृद्धा जगत् विरोधी युगलों के समन्वय से भरा पड़ा है। दिन के साथ रात व वसन्त के साथ पतझड़ की तरह जीवन में भी सुख-दुख, हानि-लाभ, मान-अपमान, जीवन मरण साथ साथ जुड़े हैं।

हमारे शरीर में ६०० खरब कोशिकाएँ हैं। कहते हैं प्रतिसेकेण्ड पांच करोड़ कोशिकाएँ नष्ट होती हैं और उतनी ही नई उत्पन्न होती हैं। उत्पादन और नाश साथ-साथ चलता है। अगर नाश ही हो, नया उत्पादन न हो तो शरीर जड़ बन जाये और नाश न हो और नयी पैदा होती रहे तो भी शरीर का ढाँचा चरमरा जाता है। दोनों क्रियाएँ होती रहती हैं तभी तक जीवन में स्फूर्ति और जीवन्तता बनी रहती है।

स्याद्वाद का सिद्धान्त हमारे जीवन के हर पहलू से जुड़ा है और हर नीति की सफलता के लिए वरदानस्वरूप है।

एक छात्र—स्याद्वाद के अन्य फलित क्या क्या हो सकते हैं, इस पर भी आप कुछ चर्चा करें।

अध्यापक—यह केवल आदर्श सिद्धान्त ही नहीं, जीवन और जगत का आधार-भूत तत्त्व है। अगर इसका प्रयोग हमारे हर व्यवहार में ठीक ढंग से किया जा सके तो इसके अनेक फलित सामने आ सकते हैं। जिसने इस सिद्धान्त को समझ लिया, वह अपने ही हठ पर अड़ा नहीं रहेगा। न वह अपनी बात को कभी दूसरों पर थोपेगा।

वह 'ही' की भाषा में नहीं सदा 'भी' की भाषा में सोचेगा। वैचारिक आग्रह के कारण ही परिवार में दीवारें खिंच जाती हैं, साथ में रहने वाले दो प्रेमी मित्र सदा के लिए जानी दुश्मन बन जाते हैं। स्याद्वाद टूटे हुए सम्बन्धों को फिर से जोड़ने का अमोघ मंत्र है।

स्याद्वाद का दूसरा फलित है—अपने विरोधी-विचार्यों को सुनने की क्षमता का विकास। व्यक्ति की बहुत बड़ी दुर्बलता होती है कि वह अपने विरोधी की बात सुनना नहीं चाहता। किन्तु स्याद्वाद विरोधी की बात में भी सत्य को ढूँढ़ने का प्रयास करता है। उसके कथन की अपेक्षा को समझने की चेष्टा करता है।

स्याद्वाद का तीसरा फलित है—जीवन में समता का विकास। व्यक्ति यह समझने लग जाता है कि जीवन विरोधी युगलों का आधार है।

सुख है तो उसका प्रतिपक्ष दुःख भी है, संयोग के साथ वियोग जुड़ा है। वह अनुकूल संयोगों में उन्मत्त नहीं होगा, प्रतिकूल संयोगों में विषादग्रस्त नहीं होगा। प्रिय के वियोग में वह व्यथित नहीं होगा, और अप्रिय के वियोग में हर्षित नहीं होगा। वह जीवन को खेल समझकर जीयेगा। विरोधी स्थितियों में स्याद्वाद का अनुयायी समता से रहना सीख जाएगा। समता का साधक व्यक्ति ही अहिंसा को जीवन में जी सकेगा।

स्याद्वाद का चौथा फलित है—निराशा से मुक्ति। व्यक्ति के आनन्द में अगर कोई बाधा है तो वह है निराशा। प्रतिकूल परिस्थितियां व्यक्ति को निराशा की ओर ढकेल देती है। ऐसे क्षणों में व्यक्ति जीवन से पलायन की बात सोचने लग जाता है। किन्तु स्याद्वादी दुःख में भी सुख को देखता है, अलाभ में भी लाभ को देखता है।

दो मित्र बस में जा रहे थे। एक की जेब किसी ने काट ली। दूसरे मित्र ने पता लगने पर खेद व्यक्त किया। इस पर पहले मित्र ने प्रसन्नता जाहिर करते हुए कहा—मित्र ! खुशी मनाओ, मेरी दूसरी जेब सही सलामत है, जिसमें एक हजार रुपये पड़े थे, जो जेब कटी उसमें मात्र दश रुपये थे। मित्र उसकी सही सोच से बड़ा प्रभावित हुआ। यह होता है स्याद्वादी का चिन्तन। वह अभाव में भी भाव को खोज लेता है। किसी भी स्थिति में मन को उदास हताश नहीं होने देता। स्याद्वाद का पांचवां फलित है—अतिरिक्तता के बोध का अभाव। सामान्य व्यक्ति जहां उच्चकुल, सुन्दररूप और भौतिक समृद्धि को पाकर गर्वोन्नत बन जाता है वहां स्याद्वाद का ज्ञाता इनमें अभिमानी नहीं बनता। वह नित्य-अनित्य, भाव-अभाव, आदि पदार्थ के घनों से परिचित होता है। समय व स्थितियां सदा एक सी नहीं रहती है यह बोध उसका सदा जागृत रहता है।

स्याद्वाद का छठा फलित है—तटस्थता का अभ्यास। तटस्थ जीवन जीना भी एक बहुत बड़ी कला है। स्याद्वाद को जानने वाला सोचेगा, मैं क्यों किसी पक्ष में पड़ूँ। आज जो मेरा है कल पराया भी बन सकता है, जो पराया है कल मेरा बन सकता है। प्रेम करने वाला घृणा व घृणा करने वाला प्रेम कर सकता है। क्योंकि हर व्यक्ति में विरोधी युगलों का अस्तित्व है।

एक छात्र—महोदय ! हमने सोचा था यह तो दर्शन शास्त्र का कोई गूढ़ सिद्धान्त है लेकिन.....

दूसरा छात्र—यह तो जीवन को छूने वाला और व्यवहार को मांजने वाला मूल्यवान सूत्र है ।

तीसरा छात्र—और इसे व्यवहार में उतारे बिना मानव समाज स्वस्थ और सुखी नहीं बन सकते ।

चौथा छात्र—इसको समझे बिना हम किसी भी वस्तु का समग्रता से ज्ञान कर ही नहीं सकता ।

पांचवां छात्र—अध्यापक महोदय ! आपने बात-बात में हमको एक नया पाठ पढ़ा दिया । आपका बहुत-बहुत आभार ।

अध्यापक—जैरा कहना यही है—तुम इस सिद्धान्त पर मनन करना । इसे हृदय-गम कर जीवन में आग्रह-विग्रह से दूर रहना, समता व सन्तुलन का विकास करना, अपने विरोधी की बात को भी विनम्र होकर सुनना, किसी भी स्थिति में निराशा मत लाना और तटस्थ रहने का प्रयास करना ।

(इतने में ही घण्टी बज जाती है । कक्षा विसर्जित हो जाती है ।)

नयवाद

[जिनेश्वरदास कुर्सी पर बैठे कोई पत्रिका पढ़ रहे हैं, दरवाजे पर खटखट की आवाज होती है] खट•••••खट•••••खट•••••

जिनेश्वरदास—राम् ! जरा देखना, दरवाजा कौन खटखटा रहा है ।

(दूर से आवाज—जी हां, थोड़ी देर में ही नौकर राम् का प्रवेश)

राम्—मालिक ! कोई सज्जन आये हैं आपसे मिलने के लिए और वे अपना नाम महावीर प्रसाद बता रहे हैं ।

जिनेश्वरदास—ओ हो ! महावीर प्रसाद ! मेरे बचपन का सहपाठी ! कुछ ही दिनों पूर्व उसका पत्र मिला था, जिसमें लिखा था मैं किसी विशेष कार्यक्रम में भाग लेने दिल्ली आ रहा हूँ, जाते वक्त रात भर तुम्हारे यहां ठहरूंगा । मुझे ही चलकर उसको ससम्मान लाना चाहिए ।

(स्वयं उठकर महावीर प्रसाद को लेकर आता है, कुछ ही समय में दोनों मञ्च पर उपस्थित होते हैं, दोनों कुर्सियों पर बैठ जाते हैं)

जिनेश्वरदास—बहुत वर्षों के बाद मिलना हुआ है । एक समय था जब हम स्कूल में साथ-साथ पढ़ते थे, खेलते थे, लेकिन अब तो वे दिन केवल यादों में ही रह गये हैं ।

महावीर प्रसाद—इस जीवन का क्रम कुछ ऐसा ही है । किसका यहां सनातन साथ रहा है । तुम दिल्ली में सर्विस करने लग गए और मैं दर्शन शास्त्र में एम० ए० करके पी० एच० डी० करने में लग गया । इसके बाद सरकार ने मुझे बीकानेर, डूंगर कॉलेज में लेक्चरर नियुक्त कर दिया । कुछ वर्ष वहां रहा । अभी दो वर्षों से राजस्थान यूनिवर्सिटी, जयपुर में दर्शन विभाग का प्रोफेसर हूँ । आगे से आगे मेरा प्रमोशन होता गया । विशेष गोष्ठियों में भी मुझे संस्थाओं द्वारा समय-समय पर निमन्त्रण मिलता रहता है । हाल ही में विविध धर्म और दर्शन पर एक दो दिवसीय सेमिनार जो कि सर्व धर्म सद्भाव समिति के द्वारा आयोजित था, जिसमें देश भर के चुने हुए २० विशिष्ट विद्वानों को बुलाया गया था, जिनमें एक मैं भी था, भाग लिया । फिर

सोचा, सुबह की ट्रेन से रवाना होना है, रात भर तुम्हारे साथ रह जाऊंगा। बचपन की स्मृतियां फिर ताजा हो जाएंगी।

जिनेश्वरदास—यह तो अच्छा किया, मैं भी तुम्हसे मिलना चाह रहा था पर जीवन की विवशताएं कुछ ऐसी हैं कि चाहते हुए भी मिल नहीं सका। और बताओ, सेमिनार कैसा क्या रहा ?

महावीर प्रसाद—बहुत अच्छा रहा। दो दिन तक अच्छी चर्चाएं चलीं। प्रतिदिन तीन गोष्ठियां होती थीं। जिनमें पूर्व निर्धारित विद्वानों के वक्तव्य होते, फिर कुछ समय के लिए प्रश्नोत्तर भी चलते। मैंने लगभग २५ मिनट तक जैन धर्म और दर्शन पर वक्तव्य दिया।

जिनेश्वरदास—तुम्हारे वक्तव्य की प्रशंसा तो मैंने ऑफिस में एक मित्र से सुनी थी। काश ! मुझे भी ऐसे सेमिनार में भाग लेने का मौका मिलता।

महावीर प्रसाद—कैसा है तुम्हारा स्वास्थ्य ?

जिनेश्वरदास—प्रभु की कृपा से ठीक है। प्रोफेसर ! तुम गर्मी से काफी परेशान लगते हो। पहले स्नान करलो फिर भोजन आदि कार्यों से भी निपटना है।

महावीर प्रसाद—तुम्हारे यहां आया हूँ तो जो तुम कहोगे वही करना है।

जिनेश्वरदास—मित्र ! एक बात का मेरे दिल में विचार जरूर है आज।

महावीर प्रसाद—वह क्या ?

जिनेश्वरदास—आज फैक्ट्री में मेरी नाइट ड्यूटी है इसलिए रात को मैं यहाँ नहीं रुक सकूंगा। सुबह पांच बजे मैं यहाँ पहुँचूँगा। उस समय ही तुम्हारे साथ बैठ पाऊँगा। अच्छा हो, तुम कल यहीं रुक जाओ। दिन तुम्हारे साथ रहने का मौका मिल जाएगा।

महावीर प्रसाद—तुम्हारी तरह मेरी भी विवशता है मित्र ! मुझे भी यूनिवर्सिटी जॉइन करनी है। कोई गम नहीं है, तुम जाओ, तुम्हारा लड़का तो यहीं है। उससे बातें करेंगे। मेरे प्रस्थान से एक घंटा पूर्व तो तुम आ ही जाओगे।

जिनेश्वरदास—मेरी चेष्टा तो रहेगी समय से पूर्व ही घर पर पहुँच जाऊँ। तुम्हारा आना भी तो बार-बार नहीं होता। बहुत सारी बातें करनी है तुम्हारे से। रवाना होने से पहले अपने हाथ से तुमको नाश्ता भी तो करवाना है।

महावीर प्रसाद—मुझे नाश्ते की जरूरत नहीं रहेगी उस समय ! नाश्ता मैं रास्ते में ही कर लूँगा।

जिनेश्वरदास—पर इससे मुझे संतोष नहीं होगा। तुम्हें अपने हाथ से नाश्ता

कराये बिना नहीं जाने दूँगा। अब मेरा समय हो रहा है फेक्ट्री जाने का। मैं तो जा रहा हूँ, लड़के को समझा दूँगा सारी बात। तुम रात अच्छे ढंग से गुजारना। मैं लड़के जल्दी ही तुमसे मिलूँगा।

दूसरा दृश्य

(प्रो० महावीर प्रसाद स्नानादि कार्यों से निवृत्त होकर कुर्सी पर बैठे हैं, पास में जिनेश्वरदास का लड़का किशोर बैठा है, सामने टी टेबल पड़ी है, नौकर एक ट्रे में शरबत लेकर आता है)।

महावीर प्रसाद—किशोर ! मैं यहाँ मेहमान बनकर नहीं आया हूँ, जो अभी शरबत, फिर भोजन, फिर और कुछ। मैं तो तुम्हारे पिता का मित्र और मित्र का घर अपना ही घर होता है। अपने घर में इतने उपचार की जरूरत नहीं है।

किशोर—उपचार मत कहिए श्रीमान् ! यह हृदय की भक्ति है।

महावीर प्रसाद—यहाँ उपचार का मतलब कृत्रिमता या दिखावा नहीं है। मेरा कहना है, तुम सीधा भोजन ही मंगा लेते, अभी शरबत की जरूरत नहीं है।

किशोर—आपको तो कुछ भी जरूरत नहीं है किन्तु हमको आपकी जरूरत है। मेरा कोई मित्र आये तो मैं उसका बड़ा सत्कार करता हूँ, फिर आप तो मेरे पिताश्री के मित्र ठहरे। आपका सत्कार जितना करूँ उतना कम है। अभी भोजन में थोड़ा विलम्ब है इसलिए शरबत पीने में कोई नुकसान नहीं।

महावीर प्रसाद—लो भई, तुम्हारा मन है तो पीलें। (दोनों शरबत पी लेते हैं)

किशोर—प्रोफेसर महोदय ! आप कहां रहते हैं ?

महावीर प्रसाद—(एक क्षण सोचकर) भारतवासी हूँ, भारत में रहता हूँ।

किशोर—भारत तो बहुत बड़ा है, भारत में आप कहां रहते हैं ?

महावीर प्रसाद—मैं राजस्थान प्रान्त में रहता हूँ।

किशोर—श्रीमान् ! आप तो पहेलियां बुझा रहे हैं। राजस्थान प्रान्त कहने से भी तो कुछ समझ में नहीं आया।

महावीर प्रसाद—भई ! मैं बीकानेर में रहने वाला हूँ। वर्तमान में वैसे राजस्थान युनिवर्सिटी, जयपुर में दर्शन विभाग का प्रोफेसर हूँ।

किशोर—इस बार कुछ बात समझ में आई।

महावीर प्रसाद—अब भी तो कुछ बाकी रह गया जो तुमको समझाना है।

किशोर—वह आप समझा दें।

महावीर प्रसाद—बीकानेर में भी तो बहुत मोहल्ले व गलियां हैं। बीकानेर बताने मात्र से तुम्हें मेरे निवास स्थान का ज्ञान नहीं हो जाएगा।

किशोर—आपका कथन सही है।

महावीर प्रसाद—तो सुनो, बीकानेर के रांगड़ी चौक की दक्षिण गली में एक हरे रंग का मकान है जिस पर बरडिया निवास लिखा है, वह मेरा निवास स्थान है। वैसे वह भी मेरा स्थायी निवास स्थान नहीं है।

किशोर—वह फिर कौन-सा है ?

महावीर प्रसाद—स्थायी निवास स्थान मेरी अपनी आत्मा है। जो इस जन्म से पहले थी और बाद में भी रहेगी। जिसका कभी वियोग नहीं होता। ईंट व सीमेन्ट से बना मकान तो आज है, कल न भी रहे। यह शरीर भी एक अवधि तक मेरा है, एक दिन यह भी छूट जायेगा। इसलिये शरीर को भी मैं व्यवहार बुद्धि से ही अपना मानता हूँ। निश्चय बुद्धि से यह शरीर भी मेरा अपना नहीं है।

किशोर—प्रोफेसर महोदय ! आप तो छोटी सी बात को भी बड़ा विस्तार दे देते हैं, दर्शन के प्रोफेसर जो ठहरे।

महावीर प्रसाद—इस विस्तार के द्वारा मैं तुमको एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत से परिचित करवाना चाहता हूँ।

किशोर—बड़ी कृपा होगी।

महावीर प्रसाद—ध्यान से सुनना। जैन दर्शन के नये सिद्धांत के बारे में मैं तुमको बता रहा हूँ। अनन्त धर्म वाले पदार्थ के किसी एक धर्म का ग्रहण कर अन्य धर्मों का खण्डन न करने वाले विचार को नय कहते हैं। प्रमाण का वर्णनीय विषय अखण्ड वस्तु है और नय का वर्णनीय विषय खण्ड वस्तु है। एक साथ में समस्त वस्तु का प्रतिपादन वाणी द्वारा असंभव है, इसलिए नयवाद ज्यादा उपयोगी है।

किशोर—नय के कितने प्रकार हैं प्रोफेसर महोदय ?

महावीर प्रसाद—एक ही विषय पर जितनी तरह से विचार या कथन किया जा सकता है उतने ही नय के प्रकार बन सकते हैं।

नय के मूल भेद दो हैं—१. निश्चय नय २. व्यवहार नय। निश्चय नय से तात्पर्य है—वस्तु का वास्तविक स्वरूप। हो सकता है कि व्यवहार में वह स्वरूप सामने न भी आये। जैसे—सर्प व्यवहार में काले रंग का लगता है किन्तु निश्चय नय की भाषा में वह पाँच वर्ण वाला होता है। क्योंकि हर दिखाई देने वाली वस्तु में पाँच वर्ण पाये जाते हैं। व्यवहार नय से तात्पर्य है—लोक व्यवहार में प्रचलित

भाषा का प्रयोग । जैसे—घृत पात्र को हम घी का बर्तन कह देते हैं जबकि बर्तन तो पीतल, तांबे या किसी अन्य धातु का है। हम पानी को गिरते देखकर कह देते हैं, परनाला पड़ रहा है । यह व्यवहार नय की भाषा है जबकि निश्चय में तो पानी गिरता है । यह व्यवहार भाषा असत्य नहीं है क्योंकि जन प्रचलित है । भाषा के इन दो प्रयोगों के आधार पर नय के दो भेद बताये गये हैं ।

किशोर कुमार—क्या इन दो भेदों में ही भाषा के समग्र प्रयोगों का समावेश हो जाता है ?

महावीर प्रसाद—इनके अतिरिक्त जैन दर्शन में नय के सात प्रकार और भी बताये गये हैं । १. नैगम २. संग्रह ३. व्यवहार ४. ऋजुसूत्र ५. शब्द ६. समभिरूढ़ ७. एवंभूत । इनमें पहले तीन भेदों में द्रव्य पर तथा शेष चार में द्रव्य की पर्यायों पर मुख्य रूप से विचार किया जाता है । इसी आधार पर इन सात भेदों में पहले तीन द्रव्यार्थिक और आगे के चार पर्यायार्थिक नय के रूप में प्रसिद्ध हैं ।

किशोर—द्रव्य और द्रव्य की पर्याय से क्या तात्पर्य है ?

महावीर प्रसाद—द्रव्य से मतलब है—पदार्थ मात्र । द्रव्य की पर्याय से मतलब है—विवक्षित वस्तु की विविध अवस्थाएँ, परिणतियाँ । उदाहरण के तौर पर—सोना एक द्रव्य है, कंगन, हार, चूड़ियाँ आदि अनेक उसकी पर्याय हैं । इस तरह घड़ा एक द्रव्य विशेष है, वह किस चीज का बना है, किस देश का है, किस मौसम के लायक है, ये सब घड़े की पर्याय हैं ।

इस प्रकार की पर्यायें हर पदार्थ में अनन्त होती हैं । द्रव्य को समग्रता से जानने के लिए उसकी पर्यायों को जानना जरूरी है । पर्यायें बदलती रहती हैं पर मूल द्रव्य नहीं बदलता ।

किशोर—क्या नयवाद में द्रव्य और पर्याय दोनों पर विचार किया जाता है ?

महावीर प्रसाद—तुम ठीक कह रहे हो । द्रव्य और पर्याय पर विचार करके ही हम समग्र सत्य को जान सकते हैं ।

किशोर—वस्तु में पर्याय परिवर्तन किस तरह होता है ?

महावीर प्रसाद—पर्याय परिवर्तन आकास्मिक नहीं होता । यह पदार्थ मात्र में प्रतिक्षण घटित होने वाली घटना है । इसके पीछे भी कारणों की एक लम्बी शृंखला है । द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, परिस्थिति व जागतिक नियम आदि अनेक इसमें कारण भूत बनते हैं । एक वस्तु का उत्पादन कम और मांग ज्यादा होने पर उसकी कीमत बढ़ जाती

है, उत्पादन ज्यादा व मांग कम होने पर कीमत घट जाती है, एक लोह खण्ड का मूल्य १० रु० होता है किन्तु वही लोह खण्ड जब ताला बन गया तो कीमत दूसरी हो गई, प्रतिमा के रूप में परिवर्तित हुआ तो कीमत फिर बदल गई, यों उसकी सैंकड़ों, हजारों व लाखों पर्यायें बदल जाती हैं। उनकी कीमत में भी तरतमता रहती है। कोई व्यक्ति यह आग्रह नहीं करता कि समान मात्रा में लोहा होने पर कीमत में इतना अन्तर क्यों ? आम की मौसम में और बिना मौसम में उसके भाव में अन्तर पड़ जाता है, यह कालगत पर्याय परिवर्तन है। संतरे नागपुर के मीठे व प्रसिद्ध होते हैं, अन्य प्रदेशों के इतने मीठे व प्रसिद्ध नहीं होते, यह क्षेत्रगत संतरे की पर्याय है। एक ही व्यक्ति बचपन, जवानी, बुढ़ापा आदि अवस्थाओं में निरन्तर बदलता रहता है। यह अवस्थागत पर्याय परिवर्तन है।

किशोर—मान्यवर ! आप कहानी के द्वारा पर्याय परिवर्तन की बात समझायें तो विषय और अधिक सरस बन जायेगा।

महावीर प्रसाद—अवश्य, सुनो। एक परिवार में पति पत्नी और पांच वर्ष का उनका बच्चा ये तीन ही सदस्य थे। पति टी. बी. का मरीज था। निरन्तर बीमार रहने के कारण उसका शरीर बहुत दुर्बल हो गया। भरी जवानी में भी वह बूढ़ा ज्यों लगने लगा। दीपावली का दिन नजदीक था। बच्चे की मां कमरों की सफाई कर रही थी। सन्दूकों व आलमारियों से सारा सामान बाहर निकालकर वह पौछ रही थी। सहसा उसका ध्यान एक फोटुओं के एलबम्ब पर गया। इसमें विवाह के अवसर की यादों को कैद करके रखा गया था। मां उन फोटुओं को एक-एक करके गहराई से देख रही थी। तभी उसका छोटा मुन्ना वहीं आ गया। एक फोटू जिसमें पति-पत्नी दोनों का संयुक्त पोज था, देखकर छोटा मुन्ना मां से पूछ बैठा—मां यह कौन महिला है। मां ने कहा—बेटा ! यह मैं तेरी मां हूँ। और साथ में तुम्हारे यह कौन आदमी है, बच्चे ने पुनः प्रश्न किया। मां ने सहज भाव में कहा—यह तुम्हारा पिता है। सरलता से बच्चा फिर पूछ बैठा—ए मां ! मेरा पिता अगर यह है तो खटिया पर दिन भर खांसने वाला, लम्बी दाढ़ी वाला बूढ़ा आदमी यह कौन है ? मूर्ख बेटे ! तुम्हारा पिता ही तो है वह, मां उसकी मूर्खता पर हंसती हुई बोली। बच्चा बोला—मां ! मैं समझा नहीं, फोटू के पिता और इस आदमी में कौन सही, कौन गलत है ?

महिला बोली—बेटे ! दोनों सही है, यह फोटू विवाह के समय की है और अब यह अवस्था तेरे पिता के निरन्तर बीमार रहने से हो गई है ।

हर व्यक्ति और पदार्थ में स्थूल पर्याय परिवर्तन व सूक्ष्म पर्याय परिवर्तन का क्रम अनिवार्य रूप से चलता रहता है ।

किशोर—स्थूल पर्याय व सूक्ष्म पर्याय में क्या भेद है बताने की कृपा करें श्रीमन्

महावीर प्रसाद—स्थूल पर्याय से तात्पर्य है स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाला, परिवर्तन व सूक्ष्म पर्याय से तात्पर्य है जो दिखाई नहीं देती पर प्रतिक्षण घटित होती है । उदाहरणार्थ—एक व्यक्ति में शैशव, बचपन, कैशोर्य, तरुण, जवानी, बुढ़ापा आदि अनेक स्थूल पर्याय पायी जाती है पर सूक्ष्म पर्याय परिवर्तन उसमें हर क्षण होता है । पुस्तक का फट जाना यह उसका स्थूल पर्याय परिवर्तन है पर सूक्ष्म पर्याय परिवर्तन उसमें हर पल हो रहा था, वह प्रतिक्षण जीर्ण हो रही थी ।

किशोर—द्रव्य और पर्याय के विषय में जान लेने के बाद अब आप नय के सात प्रकारों का अर्थ बताने की कृपा करें !

महावीर प्रसाद—अवश्य । पहला है—नैगम नय । इसमें वस्तु के सत्-असत्, भेद-अभेद, सामान्य व विशेष धर्मों पर विचार किया जाता है । इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है । दीवाली के दिन को कहना, आज भगवान महावीर का जन्म दिन है । इन्धन, पानी, चावल को एकत्रित करते हुए कहना चावल बना रहा हूँ । इस प्रकार के काल्पनिक प्रयोग नैगम नय की भाषा है ।

दूसरा है—संग्रह नय । इसका क्षेत्र नैगम नय से सीमित है । यह पदार्थ के सत् स्वरूप पर ही विचार करता है, असत् पर नहीं । इसका मानना है—संसार एक है क्योंकि सत्त्व सब पदार्थों में समान है ।

तीसरा है—व्यवहार नय । संग्रह नय समग्रता से विचार करता है । यह नय खण्ड-खण्ड करके वस्तु पर विचार करता है । जैसे—सत्त्व की दृष्टि से पदार्थ एक है किन्तु उसके दो भेद हैं—द्रव्य और पर्याय । विश्व एक है पर उसके तीन भेद हैं—ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग् लोक । मनुष्य जाति एक है किन्तु उसके दो वर्ग हैं—स्त्री व पुरुष । यह नय भेद प्रधान है । आगे से आगे भेद करता जाता है ।

चौथा है—श्रुतिसूत्र नय । यह वस्तु की वर्तमान पर्याय पर विचार करता है । चारों ओर अनुकूलताओं के बावजूद अगर कोई व्यक्ति

दुःखी रहता है तो वह कहता है—समय बड़ा खराब है, यह ऋजुसूत्र नय का प्रयोग है।

बंगाल की एक घटना है। वहां तारादेवी सम्प्रदाय का एक योगी वामा रहता था। एक दिन सुबह-सुबह वह नदी के किनारे घूम रहा था। उसकी नजर एक जागीरदार पर पड़ी जो नदी में स्नान करने के बाद सूर्य की उपासना कर रहा था। वामा को उसकी उपासना देख मजाक सूझा और वह उस पर पानी के छींटे उछालने लगा, जागीरदार थोड़ा गुस्से में आकर बोला—वामा! यह भी कोई मजाक का समय है? वामा बोला—तू दुनिया को धोखा दे सकता है, मुझे नहीं दे सकता। सच बता, क्या तू मन से अभी मयूरभंज कम्पनी में जूते नहीं खरीद रहा था। वामा अतीन्द्रिय ज्ञानी था। उसके सही कथन को सुन वह चुप हो गया। थोड़ी देर बाद बोला—वामा! तुम सही कह रहे हो, मेरा चिन्तन अभी यही चल रहा था कि जल्दी से रवाना होकर मयूरभंज कम्पनी में जूते खरीदूँ। यह उदाहरण ऋजुसूत्र नय के हार्द को समझने के लिये पर्याप्त है।

पांचवा है—शब्द नय। लिंग, वचन, संख्या आदि के द्वारा जहां वस्तु पर विचार किया जाता है वह शब्द नय है। जैसे—गायक और गायिका, दोनों में गायन कला की समानता होने पर भी पुरुष व स्त्री का भेद है। संख्या भेद से एक लड़का और कई लड़के यह अंतर शब्द नय के द्वारा गम्य है।

किशोर—ऋजुसूत्र नय और शब्द नय दोनों ही वस्तु की पर्याय पर विचार करते हैं, फिर इनमें अन्तर क्या है?

महावीर प्रसाद—ऋजुसूत्र नय केवल वर्तमानपर्यायग्राही है, लिङ्गादि का भेद होने पर भी वह वाक्य व वस्तु में भेद नहीं करता। जबकि शब्द नय काल, लिङ्ग आदि के कारण वर्णनीय वस्तु में अर्थ भेद करता है।

छुट्टा नय है—समभिरूढ़ नय। पर्यायवाची शब्दों में निरुक्ति के भेद से अर्थ भेद पर विचार करना समभिरूढ़ नय का विषय है। इसके अनुसार हर शब्द का स्वतंत्र अर्थ है, चाहे फिर वे पर्यायवाची क्यों न हो, चाहे उनमें लिङ्गादि का कोई भेद न भी हो। जैसे—इन्द्र और पुरन्दर शब्द आपस में पर्यायवाची हैं फिर भी दोनों का अर्थ भिन्न है। इन्द्र नाम ऐश्वर्यशाली का है, पुरन्दर नाम पुरों (दैत्य बसतियों) का नाश करने वाले का है। मेधावी, कवि, विद्वान, सुधी आपस में

पर्यायवाची होने पर भी भिन्न-भिन्न अर्थों के द्योतक हैं। एक कवि, मेधावी या विद्वान हो जरूरी नहीं।

किशोर—शब्द नय और समभिरूढ़ नय में क्या अन्तर है ?

महावीर प्रसाद—शब्द नय निरुक्त का भेद होने पर भी अर्थ भेद नहीं मानता, समभिरूढ़ उनमें अर्थ भेद करता है, यही इनका अन्तर है।

सातवां नय और अधिक गहराई में जाता है। इसका नाम है—एवंभूत नय। शब्द का अपनी अर्थ क्रिया में परिणत होना एवंभूतनय का विषय है। एक साधु तपस्वी है किन्तु तपस्या करता है तभी वह तपस्वी है, भिक्षा करता है उस समय एवंभूतनय उसे तपस्वी नहीं कहता, भिक्षु कहेगा। इसके अनुसार वस्तु तभी परिपूर्ण है जब वह अपने गुण से युक्त व अपनी क्रिया में प्रवृत्त हो।

किशोर—समभिरूढ़ और एवंभूत में क्या अन्तर है ?

महावीर प्रसाद—अन्तर तो बहुत स्पष्ट है। समभिरूढ़ नय शब्द गत क्रिया में अप्रवृत्त को भी तपस्वी, भिक्षु आदि शब्दों से पुकारता है, एवंभूतनय को यह मान्य नहीं है।

इन सातों नयों में प्रारम्भिक नय विस्तृत और स्थूल विषय वाले हैं और आगे के नय क्रमशः संक्षिप्त और सूक्ष्म विषय वाले हैं। नैगम नय का विषय सत्-असत् दोनों तरह के पदार्थ हैं। संग्रह नय केवल सत् पदार्थ पर विचार करता है। व्यवहार नय संग्रह द्वारा प्रतिपाद्य विषय को भी खण्ड-खण्ड करके विचार करता है। ऋजुसूत्रनय केवल वर्तमान पर्याय पर विचार करता है। शब्द नय लिङ्गादि के भेद से शब्द के अर्थ में अन्तर देखता है। समभिरूढ़ नय लिङ्गादि एक होने पर भी एकार्थक शब्दों में अर्थ भेद से भिन्नता करता है और एवंभूत नय वाच्यार्थ में परिणत शब्द को ही स्वीकार करता है।

किशोर—आपने जिन सात नयों का विवेचन किया उन सबका अभिप्राय भिन्न-भिन्न है। क्या इनमें परस्पर विरोध उत्पन्न नहीं होता ?

महावीर प्रसाद—अभिप्राय भिन्न होने पर भी इनमें परस्पर विरोध नहीं होता क्योंकि ये सब परस्पर सापेक्ष हैं। एकान्तिक आग्रह इनमें नहीं है। अगर आग्रहभाव हो तो नय दुर्नय बन जाए। वैचारिक आग्रह को लेकर जहाँ अनेक धर्म-दर्शनों की उत्पत्ति हुई वहाँ जैन दर्शन में तत्त्वबोध कीये विविध दृष्टियाँ मान्य होने से कहीं कोई विरोध का स्वर नहीं उभरा। हर पदार्थ में भेद और अभेद, अस्तित्व और

नास्तित्व इस प्रकार के अनेक विरोधी युगल हैं, इन सात नयों में सबका समावेश हो जाता है।

किशोर—सातों नयों की विचारधारा भिन्न है, ऐसे में तटस्थ व्यक्ति किसे सही कहे, किसे गलत ?

महावीर प्रसाद—ये सभी नय सही हैं। सत्य को विविध रूप से समझने की ये दृष्टियाँ हैं। ये परस्पर निरपेक्ष नहीं हैं। सापेक्ष अर्थ का प्रतिपादन करने से कोई भी नय मिथ्या नहीं होता। तटस्थ द्रष्टा इन सभी नयों में सत्य को खोजने का प्रयास करेगा। भेद में भी वह अभेद को देखेगा। वक्ता के कथन व उसके आशय को समझने में वह दक्ष होगा। वह किसी पक्ष का अर्थ सन्दर्भहीन नहीं निकालेगा।

कवि की मार्मिक पंक्तियाँ उसे सदा याद रहेगी—

सन्दर्भों से हटकर, अर्थ मर जाता है घुटकर।

नयवाद का ज्ञाता कभी सत्य से नहीं भटकेगा वह सरलमना होगा, सदा कुटिलता से दूर रहेगा।

किशोर—प्रोफेसर महोदय। दर्शन के इस सिद्धांत की क्या व्यवहारिक जीवन में भी उपयोगिता है ?

महावीर प्रसाद :—निस्संदेह इस तथ्य को स्वीकार किया जा सकता है। यह सिद्धांत व्यवहारिक विषमताएँ और आग्रह-विग्रह से व्यक्ति को मुक्त करता है। नय का जानकार व्यक्ति किसी बात पर उलझेगा नहीं और न दूसरे की बात को असत्य साबित करने की चेष्टा भी करेगा। तटस्थता का विकास होने से वह सत्य को ऋजुता से स्वीकार करेगा।

किशोर—धन्य है प्रोफेसर महोदय आपके ज्ञान को। आपका आगमन मेरे लिए बड़ा लाभकारी रहा। जैन दर्शन के महान सिद्धांत से आपने मुझे परिचित कराया। आप मेरे पिता के मित्र ही नहीं मेरे गुरु भी हैं। आपका कुछ दिन योग मिले तो मेरी इच्छा है आपसे और भी ज्ञान ग्रहण करूँ। आपका बहुत-बहुत आभार।

निक्षेपवाद

(कहीं दूर से एक गीत के बोल सुनाई दे रहे हैं, “होठां रा पठ ये खोलो, महावीर री जय बोलो । आत्मा रा पातक धोलो, महावीर री जय बोलो ।” रमेश और महावीर कमरे में बैठे ध्यान लगाकर सुन रहे हैं)

रमेश—महावीर ! तुम्हारा तो जीवन घन्य हो गया ।

महावीर—ऐसी क्या बात हुई ? मित्र !

रमेश—सुनो जरा कान लगाकर, तुम्हारी जय जयकार के गीत गाये जा रहे हैं ।

महावीर—(एक क्षण सुनकर) गीत तो गाये जा रहे हैं, पर ये गीत मेरे नहीं, भगवान महावीर के गाये जा रहे हैं । जिन्होंने आज से कुछ अधिक अढ़ाई हजार वर्ष पहले इस भारत धरती पर जन्म लिया था । मैं व्यर्थ ही क्यों मिया मिट्टू बनूँ ।

रमेश—पर तुम्हारा नाम भी तो महावीर है ।

महावीर—नाम होने से क्या हुआ । पूजा महावीर नाम की नहीं होती, गुणयुक्त महावीर की होती है । जैसे शरीर है किन्तु प्राण नहीं, फूल है लेकिन खुशबू नहीं तो बेकार है, वैसे ही नाम राम है लेकिन गुण नहीं तो उसका कोई महत्त्व नहीं, न उसकी कोई स्तुति भी करता है ।

रमेश—महत्त्व कैसे नहीं है । अगर कोई महावीर नाम को पुकारेगा तो तत्काल तुम उसकी बात को सुनने के लिए तैयार हो जाओगे ।

महावीर—अगर मुझे संबोधित कर कोई कहेगा तो मैं जरूर उसकी बात सुनूंगा । मेरे नाम के दस व्यक्ति और भी हो सकते हैं, अगर किसी दूसरे महावीर को आवाज लगायी जायेगी तो उससे मेरा कोई संबन्ध नहीं होगा । अगर सम्बन्ध माना जाये तब तो किसी दूसरे महावीर को गालियां निकाली जायेगी वो भी मुझे ही लगेगी ।

रमेश—नहीं, ऐसा तो नहीं होता ।

महावीर—ऐसा अगर नहीं होता तो महावीर के गीत गाने से मेरे गीत कैसे हो गये, तुम ही बताओ ?

(जैन दर्शन में विशारद पं० अर्हत कुमार का कक्ष में प्रवेश, दोनों ही मित्र खड़े होकर उनका अभिवादन करते हैं ।)

रमेश, महावीर—नमस्कार. नमस्कार !

अर्हत कुमार—क्या चर्चा चल रही है ?

रमेश—कोई खास बात नहीं, मित्रों की बातें हैं ।

अर्हत कुमार—ऐसी कोई गोपनीय बात हो तो मत बताओ ।

महावीर—अरे ! आप तो बुरा मान गये । लो सुनो—हम कमरे में पढ़ रहे थे कि अचानक एक गीत के स्वर हमारे कानों में पड़े । वह भगवान महावीर का स्तवन था । मेरे मित्र ने मुझसे कहा—“अरे, सुनो ! तुम्हारी जय जयकार का गीत गाया जा रहा है ।” मैंने कहा—मेरा नहीं यह तो तीर्थंकर भगवान महावीर का स्तवन है । बस, इतनी सी बात थी । क्यों पंडित महोदय ! मैंने गलत तो नहीं कहा ?

अर्हत कुमार—तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक था । गीत तो गुणयुक्त महावीर के गाये जाते हैं, गुणशून्य महावीर को कौन पूजता है । महावीर नाम होने से ही अगर व्यक्ति पूजा जाये तब तो सैकड़ों इस नाम के व्यक्ति मिलेंगे; उनमें कोई चोर और शराबी भी हो सकता है, वे सब पूजे जायेंगे ।

महावीर—बस, यही बात अभी हमारे बीच चल रही थी ।

अर्हत कुमार—तुम्हारे मित्र के बात समझ में आयी या नहीं ?

महावीर—बात तो बहुत सामान्य सी है । नहीं समझ में आये ऐसी तो है नहीं । फिर भी जब आपका पदार्पण हो गया तो इस विषय को और स्पष्टता से समझाने की कृपा करावें ।

अर्हत कुमार—(रमेश से) क्यों रमेश ! महावीर की बात तुम्हारे गले उतरती या नहीं ?

रमेश—गले तो खैर उतर गयी, फिर भी यह विषय अभी तक चर्चनीय है । आप जैसे ज्ञानी व्यक्ति को पाकर मेरा मन इस विषय में कुछ नया जानने के लिए लालायित हो रहा है ।

अर्हत कुमार—इस विषय का विशद विवेचन जैन दर्शन में है । जिसे निक्षेप सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है ।

महावीर—यह तो एकदम नया नाम है ।

रमेश—निक्षेप सिद्धान्त से क्या मतलब ?

अर्हत कुमार—मैं यही बता रहा हूँ, तुम दोनों दत्तचित्त होकर सुनना ।

रमेश—ठीक है ।

अर्हत कुमार—एक ही शब्द में अनेकानेक अर्थ निहित होते हैं। सन्दर्भ के अनुसार शब्द के अर्थ भी बदलते रहते हैं। अनेक अर्थों वाले शब्द के निश्चित अर्थ का प्रतिपादन करने के लिए शब्द को विशेषण द्वारा प्रयुक्त करने की पद्धति का नाम निक्षेप है।

रमेश—निक्षेप के कितने प्रकार हैं सर !

अर्हत कुमार—अगर हम विस्तार से जानना चाहें तो अर्थ प्रतिपादन के जितने प्रकार हैं, उतने ही निक्षेप के प्रकार हैं। अगर संक्षेप में विषय को समेटना चाहें तो इसके चार प्रकार हैं।

(१) नाम निक्षेप

(२) स्थापना निक्षेप

(३) द्रव्य निक्षेप

(४) भाव निक्षेप

रमेश—हम तो कुछ भी नहीं समझे। ऐसा लगता है, जैसे किसी जंगल में भटक गये हैं।

अर्हत कुमार—घबराओ मत। मैं तुमको सीधी पगडण्डी बताऊंगा जिससे तुम इस जंगल को एक क्षण में पार कर दोगे। अब सुनो तुम एक-एक निक्षेप का वर्णन।

पहला है—नाम निक्षेप। अपने अर्थ से निरपेक्ष किसी संज्ञा विशेष से किसी व्यक्ति या वस्तु को पुकारना नाम निक्षेप है। शब्द के अनुरूप क्रिया या गुण उस पदार्थ या व्यक्ति में हों, यह जरूरी नहीं है। उदाहरण के तौर पर नाम अभय कुमार किन्तु भय इतना कि चूहा भी सामने आ जाये तो डर कर भग जाये। व्यक्ति निरक्षर है किन्तु नाम पंडित रख दिया गया। नाम निक्षेप के अनुसार डरने वाला अभय कुमार व निरक्षर को भी पंडित कहना सही है।

ठनठनपाल की कहानी तो तुमने सुनी होगी !

रमेश—नहीं, नहीं !

अर्हत कुमार—मैं तुमको ठनठनपाल की कहानी सुना रहा हूँ, सुनो। एक था सेठ। उसके एक लड़का था। घर पर धन की कमी नहीं थी। एक मात्र संतान होने के कारण मां-बाप का लड़के पर विशेष स्नेह था। लाड़प्यार के कारण उसे पढाया नहीं गया। वह निरक्षर रह गया। मित्रों ने उसका नाम ठनठनपाल निकाल दिया। ठनठनपाल का विवाह हुआ। पत्नी तुनकमिजाजी व थोड़ी पढ़ी लिखी थी। पास पड़ोसिनें इसको “ठनठनपाल की बहु” के नाम से पुकारने लगीं। इसको अपने इस संबोधन पर बड़ी शर्म महसूस होती। एक दिन उसने अपने पति से कह दिया—आप अपने नाम को बदल लें। पर

नाम बदलना इसके बश की बात नहीं थी। तंग आकर इसने एक दिन पति से फिर कहा—या तो अपना नाम बदल लें, नहीं तो मैं ससुराल छोड़कर मायके चली जाऊंगी। ठनठनपाल ने कहा—नाम बदलना मेरे हाथ में नहीं है। आखिर एक दिन वह ससुराल को छोड़कर मायके के लिए रवाना हो गयी। रास्ते में कुछ व्यक्ति एक अर्थी को श्मशानघाट की ओर ले जा रहे थे। उसने एक महिला से पूछा—बाई! कौन मर गया? महिला ने कहा—इसी मौहल्ले में अमरकुमार नाम का युवक था, आज सुबह आयुष्य पूरा कर गया। मन ही मन वह सोचती रही—अरे! नाम अमरकुमार, फिर भी मर गया। थोड़ी दूर आगे चली तो उसने एक भिखारी को घर में भीख मांगते देखा। फटेहाल सूरत देखकर उसने दयावश उससे पूछा कि भाई! तुम्हारा नाम क्या है? उसने कहा मेरा नाम है घनपाल। फिर वह चिन्तन में डूब गयी—अरे! नाम है घनपाल और दर-दर भीख मांगता है। फिर आगे बढ़ी तो उसने एक लड़की को गोबर के उपले बीनते हुए देखा। उससे नाम पूछने पर उसने लिछ्मी बताया। वह फिर विचारों में खो गयी—अरे! नाम है लिछ्मी! घन की देवी! और छाणें बीन रही है। ठनठनपाल नाम के प्रति उसके मन में जो रोष था, अब वह शान्त हो गया। वह सोचने लगी—मेरा पति ठनठनपाल है तो क्या, लाखों की सम्पत्ति का एक मात्र अधिकारी है। उसने अपने आपसे कहा—

“अमर मरंता मैं सुण्यो, भीख मांगे घनपाल,
लिछ्मी छाणां बिणती, आछो म्हारो ठनठनपाल ॥
वह जैसे गयी वैसे ही वापस अपने ससुराल आ गयी।

महावीर—बड़ी मजेदार कहानी सुनायी आपने।

अर्हत कुमार—तुम लोग नाम निक्षेप के रहस्य को अब तो समझ गये होंगे।

रमेश—जी हाँ।

अर्हत कुमार—अब मैं विषय को आगे बढ़ा रहा हूँ। दूसरा है—स्थापना निक्षेप। जो अर्थ वास्तव में नहीं है, किन्तु उसे वास्तविक रूप में स्थापित कर देना स्थापना निक्षेप है। इसके दो उपभेद हैं, पहला-सद्भाव स्थापना-आकार के अनुरूप अर्थ को स्थापित करना। जैसे—एक-लड़का अपने दादा की फोटो को देखकर कहता है—ये मेरे दादा हैं। दादा यद्यपि जीवित नहीं है, किन्तु उस फोटो में दादा की आकृति है। दूसरा, असद्भाव स्थापना-मूल आकार से शून्य किसी वस्तु

विशेष में अर्थ की स्थापना करना असदभाव स्थापना है। जैसे—
राम या महावीर को देखा तो नहीं, किन्तु अपनी कल्पना से उनकी प्रतिमूर्ति बनाकर उसे राम या महावीर कहना।

अध्यात्म की दृष्टि से नाम निक्षेप की तरह स्थापना निक्षेप भी गुणशून्य है। क्योंकि गुणों का आधार जीवित व्यक्ति ही हो सकता है। प्रतिमा और फोटो को देखकर हमें उस व्यक्ति की स्मृति हो सकती है, किन्तु वह स्वयं में गुणरहित है।

रमेश—तब तो बहुत बड़ा मिथ्यात्व जैन धर्म के अनुयायियों में पल रहा है।

अर्हंत कुमार—कौन-सा ?

रमेश—आपके कथनानुसार जितनी भी प्रतिमाएँ हैं, वे सब स्थापना निक्षेप हैं चाहे फिर वे किसी देव या भगवान की हो।

अर्हंत कुमार—सही कह रहे हैं।

रमेश—जैन धर्म के बहुत सारे अनुयायी रोज सबेरे मंदिर में जाते हैं। वहाँ प्रतिमाओं के आगे सिर झुकाकर वंदना करते हैं और मन में समझते हैं, हमने भगवान के दर्शन कर लिये। क्या यह जैन धर्म के सिद्धांतों के प्रतिकूल नहीं है ?

अर्हंत कुमार—उचित है तुम्हारी जिज्ञासा। जैन धर्म में दोनों तरह की परम्पराएँ हैं, कुछ प्रतिमा की पूजा करते हैं तो कुछ प्रतिमा को सिर्फ स्मृति का साधन मात्र मानते हैं।

रमेश—तो क्या प्रतिमा को भगवान मानकर पूजने वाले सब गलत कर रहे हैं ?

अर्हंत कुमार—वे गलत या सही करते हैं, इसका निर्णय तुम स्वयं कर सकते हो। बाकी इसे तो सब स्वीकार करते हैं कि पूजा गुणों की होती है, किसी व्यक्ति या वस्तु की नहीं। प्रतिमा पूजा के पीछे उन लोगों का स्वतंत्र चिन्तन या प्रवाहपातितता भी हो सकती है। यह तो तुम समझ गये होंगे कि भगवान और भगवान की फोटो या प्रतिमा दो हैं, एक नहीं।

महावीर—बात तो समझ में आ गयी फिर भी कहानी से आप बात को समझायें तो और भी सुगमता रहेगी।

अर्हंत कुमार—अवश्य। एक शहर में एक परिवार रहता था। परिवार के सभी सदस्य प्रतिदिन मंदिर में जाकर प्रतिमा की पूजा किया करते थे। सबसे बड़े लड़के का विवाह हुआ। कन्या जो घर में बहू बनकर आयी थी, वह मंदिर जाने व प्रतिमा पूजा में विश्वास नहीं

रखती थी। सूर्योदय के समय सास ने अपनी नयी बहु से मंदिर चलने के लिए कहा। वह अपनी श्रद्धा के विपरीत मंदिर जाना नहीं चाहती थी, फिर भी सासुजी का लिहाज रखकर वह साथ-साथ गयी। उसने मन ही मन निश्चय किया कि वह सासुजी को सही दृष्टि देकर रहेगी। दूसरे ही दिन जब वह सासुजी के साथ मंदिर में प्रवेश कर रही थी, प्रवेश द्वार पर स्थापित दो सिंहों को खड़े देखकर बहु अपनी सास से कहने लगी—सासुजी! मुझे तो डर लग रहा है कि कहीं ये सिंह खा नहीं जायें। सास ने कहा—बहु! भोली है, क्या ये पत्थर के सिंह भी कभी खाते हैं? अच्छा! पत्थर के सिंह खाते नहीं, यह कहकर बहु आगे बढ़ी। कुछ कदम चलने पर पत्थर की गाय रास्ते में आयी। बहु ने सास से कहा—सासुजी! आज तो भूल कर दी। सास ने कहा—क्या भूल कर दी? बहु ने कहा—बाला कह रहा था—आज गाय ने दूध नहीं दिया। मुझे याद नहीं रहा, साथ में बर्तन ले आती तो यहां गाय दूध लेती। सास हंसती हुई बोली—“बहु पढी लिखी होकर बड़ी नादान है तू, क्या यह पत्थर की गाय भी कभी दूध देती है?” बहु भोले भाव से बोली—अच्छा! पत्थर की गाय दूध नहीं देती! कुछ कदम दोनों फिर आगे बढ़ीं तो मंदिर का मुख्य द्वार आ गया। अब सास प्रतिमा के पास जाकर वंदना करती है। बहु एक तरफ खड़ी रह जाती है। सास ने बहु से प्रतिमा को वंदन करने के लिए कहा। बहु ने अवसर पा कर सास को कहा—माताजी! पत्थर के सिंह किसी को खाते नहीं, पत्थर की गाय दूध नहीं देती तो ये पत्थर के देव कैसे हमारा कल्याण करेंगे? बहु की बात पर सास निरुत्तर थी। एक कवि ने इसी प्रसंग को एक पद्य में बांध दिया।

“पर्वत पर पाषाण शिलावट खोद र ल्यायो,
घड़े सिंह अरु गाय एक घड़ हर पधरायो।
गाय देवै जो दूध उठ करके हरि मारै,
ए दोन्युं सच होय तबै तो हर निस्तारै।
कारज तीनुं सारिखा फल करणी में जोय,
रामचरण दो असत्य हुवे तो एक सत्य किम होय ॥

संत कबीर भी इसी विचार के समर्थक थे, उन्होंने एक पद्य में लिखा है—

“पाहन पूज्यां हरि मिलै, (तो) मैं पूजूं पहाड़,
ता ते तो चाकी भली, पीस खाय संसार ।”

अगर पत्थर को पूजने से भगवान मिलते हों तो मैं पहाड़ की पूजा करूंगा। पर इस पूजा से तो पत्थर की चक्री भी अच्छी है, जो अन्न को पीसकर आटा तैयार करती है और उससे लोग अपनी क्षुधा शान्त करते हैं।

न केवल जैन धर्म बल्कि संसार के अनेक धर्म ऐसे हैं, जो प्रतिमा पूजा में विश्वास नहीं रखते कुछेक ऐसे भी हैं जो प्रतिमा की पूजा करते हैं। सबका अपना स्वतन्त्र चिन्तन है। पर हकीकत में कौन सही है, कौन गलत है, यह निर्णय तुम स्वयं कर लो।

रमेश—मेरी नजर में किसी भी महापुरुष की प्रतिमा पूजने की वस्तु नहीं है, केवल उस महापुरुष की स्मृति कराने का साधन मात्र बन सकती है।

महावीर—एक कारण और भी तो है, प्रतिमा पत्थर या किसी घातु विशेष की बनी होती है इसीलिए वह जड़ है। महापुरुष तो जीवित व्यक्ति होता है, वह चैतन्य लक्षणवाला होता है। चेतनामय होकर हम जड़ को भगवान मानकर पूजे यह बुद्धिगम्य भी नहीं है।

अहंतकुमार—मैं मानता हूँ, स्थापना निक्षेप को तुम दोनों ने अच्छे ढंग से समझ लिया है। अब तीसरे द्रव्य निक्षेप पर भी चर्चा कर लें। द्रव्य निक्षेप से मतलब है—किसी भी व्यक्ति या वस्तु में उस अवस्था का अभाव होने पर भी भूतकाल और भविष्यत्काल की अवस्था के कारण उसी पर्याय का वर्तमान में आरोपण कर देना। उदाहरण के तौर पर कोई व्यक्ति साधु बनेगा या अतीत में साधु था, उसे साधु कहना। एक व्यक्ति अतीत में पढ़ाता था, आज वह व्यापार कर रहा है, उसे अध्यापक कहना। यह द्रव्य निक्षेप से सही है। शास्त्रों में वर्णन आता है कि राजा श्रेणिक आने वाले युग में पहला तीर्थंकर बनेगा। इस आधार पर श्रेणिक के लिए द्रव्य तीर्थंकर शब्द का व्यवहार किया जाता है। कालान्तर में भगवान बनने वाला व्यक्ति भी जब तक भगवत्ता को नहीं पा लेता तब तक द्रव्य निक्षेप के आधार पर भगवान कहा जाता है। द्रव्य शब्द का प्रयोग क्रिया विशेष के लिए भी किया जाता है अगर वह उपयोग शून्य अवस्था में की जाती है। जैसे—कोई व्यक्ति पूजा कर रहा है किन्तु मन उस क्रिया में नहीं है तो वह भी द्रव्य पूजा ही कहलायेगी।

रमेश—आपके हिसाब से द्रव्य साधु को वंदना नहीं करनी चाहिये क्योंकि वर्तमान में वह साधु पर्याय में नहीं है !

अर्हंतकुमार—बिल्कुल ठीक समझा है तुमने। वन्दना तो साधना में स्थित साधु की ही की जाती है। भूतकाल में वह साधु था या भविष्य में साधु बनेगा इससे वंदनीय नहीं कहलाता।

चौथा निक्षेप है—भाव निक्षेप। नाम के अनुरूप गुण और क्रिया में प्रवृत्त होना भाव निक्षेप है। जैसे—अध्यापन कार्य में प्रवृत्त व्यक्ति को अध्यापक कहना आदि। भगवान महावीर जब तक छद्मस्थ अवस्था में थे, साधना व तपस्या करते थे तब तक द्रव्य तीर्थंकर थे। परमज्ञान पा लेने के बाद जब उन्होंने साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चार तीर्थ की स्थापना की तब वे भाव तीर्थंकर बने। पूर्ण जागरूकता के साथ की जाने वाली क्रिया के लिए भी भाव शब्द का प्रयोग किया जाता है। जैसे एक व्यक्ति भोजन कर रहा है पर मन कहीं और चक्कर लगा रहा है तो उसे द्रव्य भोजन की क्रिया कहा जायेगा। अगर वह तन्मयता से भोजन करता है तो वह भाव भोजन की क्रिया कहलायेगी।

महावीर—इन चार निक्षेपों में सबसे अच्छा आप किसे मानते हैं ?

अर्हंतकुमार—वस्तु के समग्र प्रतिपादन की दृष्टि से अपने-अपने अर्थ में यों तो सभी अच्छे हैं, फिर भी अध्यात्म की दृष्टि से भाव निक्षेप ज्यादा महत्त्वपूर्ण है और वन्दनीय भी। नाम, स्थापना और द्रव्य वास्तविक अर्थ से शून्य होते हुए भी सिर्फ पहचान के लिए होते हैं, जबकि भाव निक्षेप वास्तविक और गुण क्रिया से युक्त होता है।

रमेश—निक्षेप पद्धति को जानने व प्रयोग करने के पीछे क्या उद्देश्य है ?

अर्हंतकुमार—लोक व्यवहार की सरसता बनाये रखना व भाव भाषा की विसंगतियों को मिटाना इस पद्धति के ये दो उद्देश्य हैं। इस पद्धति का ज्ञान हुए बिना पग-पग पर व्यक्ति को उलझनों का सामना करना पड़ता है। एक व्यक्ति किसी समय चित्रकारी करता था, आज वह अध्यापन करता है, फिर भी उसे चित्रकार कह दिया जाता है। निक्षेपों का जानकार इस प्रयोग को सुनकर सन्देह या किसी उलझन में नहीं पड़ेगा। एक गरीब व्यक्ति को भी इन्द्र नाम से पुकारना नाम निक्षेप से सत्य है अतः इसमें कहीं कोई विसंगति नजर नहीं आयेगी। इस प्रयोग से हम अनेक अर्थों वाले शब्द के अपेक्षित अर्थ को ही ग्रहण करेंगे। अनपेक्षित अर्थ के जंजाल में भटकेंगे नहीं।

महावीर—आपने तो बात-बात में एक महान सिद्धांत से हमको परिचित करा दिया ।

अर्हतकुमार—रमेश ! तुम इस सिद्धांत को समझे या नहीं ?

रमेश—श्रीमान् ! अब कोई भ्रांति नहीं रही है ।

महावीर—(सुस्क्रुताते हुए) क्यों मित्र ! वे गीत मेरे ही गाये जा रहे थे न ?

रमेश—नहीं, नहीं, अब ऐसी बात कहकर मैं अपना अज्ञान प्रकट करना नहीं चाहता ।

महावीर—अर्हतकुमारजी ! आपने समय पर पधार कर हमें सही तथ्य को समझने की नई दृष्टि दी, आपका बहुत-बहुत आभार !

(रमेश, महावीर दोनों अर्हतकुमारजी को प्रणाम करते हैं !)

जातिवाद की अतात्त्विकता

(अध्यापक मनोहर जैन का निवास स्थान, अध्यापक महोदय किसी पत्रिका को पढ़ रहे हैं, कुछ पुस्तकें टेबल पर पड़ी हैं, पढ़ते-पढ़ते एक पद्य पर उनका ध्यान केंद्रित हो जाता है)

मनोहर—कितना अच्छा लिखा है “जात पांत पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि को होई” (दो-तीन बार इन पंक्तियों को वे दोहराते हैं उसी समय घंटी बजती है, व दरवाजा खटखटाने की आवाज होती है।)

मनोहर—अरे चन्द्र ! ओ चन्द्र !

चन्द्र—(दूर से) आया जी !

मनोहर—देखना ! कौन आया है ?

चन्द्र—जाता हूँ जी ।

चन्द्र—(वापस आकर कहता है) दो लड़के आए हैं जी, आपसे मिलना चाहते हैं जी ।

मनोहर—कौन दो लड़के हैं ?

चन्द्र—अभी पूछकर आया जी ।

चन्द्र—(वापस आकर कहता है) वे अपना नाम नन्दलाल और आनन्दकुमार बताते हैं जी ।

मनोहर—कौनसी स्कूल के व कौनसी कक्षा में पढ़ते हैं ।

चन्द्र—अभी पूछ आता हूँ जी ।

मनोहर—एक बार में किए जाने वाले काम के लिए बार-बार चक्कर काटता है । तू तो पूरा भोला है ।

चन्द्र—पूरा भोला हूँ जी ।

मनोहर—जा, सारी बात पूछ कर आ ।

चन्द्र—जाता हूँ, जी (इस बार वह थोड़ा विलम्ब से आता है)

मनोहर—अरे ! इतनी देर लगादी ।

चन्द्र—देर लग गयी जी । आपने कहा था जी कि सारी बात पूछ कर आना जी तो मैंने उनसे सारी बातों की जानकारी की जी ।

मनोहर—क्या जानकारी की ?

चन्द्र—दोनों लड़के आपकी ही स्कूल के कक्षा १० के विद्यार्थी हैं जी। माता, पिता, भाई, बहिन व घर के बारे में भी आप पूछें तो बताऊँ जी।

मनोहर—बस रहने दे, नहीं पूछना कुछ भी, जा उनको अन्दर ले आ।

चन्द्र—अभी लाता हूँ जी।

(दोनों लड़कों का अन्दर प्रवेश)

दोनो लड़के—प्रणाम, सर !

मनोहर—आओ, बैठो।

नंद—अभी आप कोई पाठ कर रहे थे क्या ?

मनोहर—नहीं, नहीं, मैं तो धर्मयुग पत्रिका पढ़ रहा था। इसमें एक निबन्ध का शीर्षक है—“जात पांत पूछे नहीं कोई, हरि को भजें सो हरि को होई” मुझे बड़ी अच्छी लगी ये पंक्तियाँ। बस इनको ही गुनगुना रहा था।

नंद—इन पंक्तियों का अर्थ क्या है ?

मनोहर—सीधा-सा अर्थ है। भगवान के दरबार में कौन किस जाति का है, यह पूछा नहीं जाता। जो प्रभु को शुद्ध मन से भजता है वही भगवान को प्यारा है।

नंद—भगवान के दरबार में भले ही कोई न पूछे, हमारी इस दुनिया में तो जाति पर पहले ध्यान दिया जाता है।

मनोहर—ये जातियाँ तो सामाजिक व्यवस्था मात्र है। समाज के टाँचे को सुसंगठित बनाए रखने के लिए मुख्य रूप से चार अपेक्षाएँ होती हैं—पहली ज्ञान और आचरण की शक्ति, दूसरी सुरक्षा की व्यवस्था, तीसरी कृषि व व्यापार की क्षमता और चौथी सेवा भावना। इन चार अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार जातियों का निर्माण हुआ। कालांतर में इन जातियों के अलावा भी अपने-अपने कर्म के अनुसार अन्य अनेकानेक जातियों का विकास हुआ। इन जातियों में जिने जाति के लोगों के व्यवहार, क्रिया कलाप व खान-पान शुद्ध थे वे उन्नत जातियाँ कहलायीं। और जिनका व्यवहार अशिष्ट व खान-पान अशुद्ध था वे नीची जातियाँ कहलायीं। जैन दर्शन का मन्तव्य है कि जाति जन्मना न होकर कर्मणा होनी चाहिए क्योंकि व्यक्ति की सही पहचान उसकी भाषा, व्यवहार व खान-पान आदि लक्षणों से होती है न कि जाति से।

आनन्द—सर, यह तो आदर्श की बात हो सकती है। व्यवहार की बात तो यही है कि व्यक्ति की पहचान उसकी जाति ही है।

मनोहर—यह बहुत स्थूल व अधूरी पहचान है। जाति के आधार पर किसी व्यक्ति के बारे में कोई निर्णय जहाँ किया जाता है वहाँ कई बार भ्रांति हो जाती है। संत रैदास चमार जाति के थे। वे अपनी संतता के कारण लाखों के पूजनीय बन गए। जैन इतिहास में हरिकेशी मुनि व मेतार्य मुनि की घटना प्रसिद्ध है। वे चंडाल कुलोत्पन्न थे फिर भी अपनी विशिष्ट तपस्या व साधना के कारण जन-जन के लिए वंदनीय बन गए। निम्न जाति में जन्म लेना व्यक्ति की नियति हो सकती है किन्तु सम्यक् पुरुषार्थ के द्वारा वही व्यक्ति उच्च और अभिवंदनीय बन सकता है।

ऐसे भी अनेक व्यक्ति हुए हैं जो उच्च जाति में जन्म लेकर अपनी निन्दनीय हरकतों के कारण जन-जन के लिए तिरस्कार के पात्र बन गए। महर्षि बाल्मीकि का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था। अपने प्रारम्भिक जीवन में वे रत्नाकर डाकू के नाम से प्रसिद्ध थे। लूट-खसोट जैसे निन्दनीय कर्म के कारण वे सबके लिए घृणास्पद बन गये। संतों की प्रेरणा पाकर उनका जीवन बदला और वे महान् ऋषि के रूप में विख्यात हो गए। अपने महान् गुणों के कारण वे जगत्पूज्य बन गये। हकीकत में व्यक्ति की पहचान उसके अच्छे बुरे कर्म व उसके गुण अवगुण हैं और उसी का दूसरों पर प्रभाव पड़ता है।

नन्द—इसे भी तो नकारा नहीं जा सकता कि गुण और कर्म से परिचित होने में समय लगता है, पहला प्रभाव तो रंग, रूप व जाति का ही पड़ता है। हम देखते हैं, एक व्यक्ति जो आभिजात्य परिवार से सम्बन्धित, सुन्दर रंग-रूप व अच्छे वस्त्र पहने हुए होता है, वह सबके आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बन जाता है, दूसरा नीच कुलोत्पन्न, बदसूरत आकार वाला, फटे पुराने वस्त्र पहने होता है, वह हर व्यक्ति के लिए घृणा का पात्र बन जाता है।

मनोहर—यह सारा व्यक्ति का बाहरी परिवेश है। इसका भी प्रभाव पड़ता है लेकिन तात्कालिक और अस्थायी। जिस प्रकार कागज के फूल दूर से बड़े सुन्दर लगते हैं किन्तु सुगन्ध रहित होने के कारण उनमें कोई खिंचाव नहीं होता और सुगन्धित फूल पथिक के बढ़ते कदमों को एक बार के लिए रोक लेते हैं, उसी प्रकार नाम, रूप व जाति भी दूसरों पर एक अस्थायी प्रभाव डालते हैं। लेकिन स्थायी प्रभाव

आन्तरिक व्यक्तित्व का ही होता है। सज्जनता, उदारता, प्रेम आदि गुण आन्तरिक व्यक्तित्व के अंग हैं। हीरा की चड़ में पड़ा होने से कभी अनुपयोगी और कम मूल्य वाला नहीं हो जाता। महत्ता गुणों की है गुणी व्यक्ति सबकी प्रियता को पा लेता है चाहे फिर बाह्य परिवेश कैसा ही क्यों न हो। एक कवि ने बड़ा सुन्दर लिखा है—

“हंस भी सफेद और बगुला भी सफेद होता है,
पर क्या गुण भी कभी रंग में कैद होता है।”

सफेद रंग वाले सब हंस नहीं होते और काले रंग वाले सब कौए नहीं होते। बगुले का रंग हंस की तरह सफेद होता है और कोयल का कौए की तरह काला होता है। पर काली होने से कोयल अप्रिय नहीं लगती और सफेद होने से बगुला कभी हंस की तुलना नहीं कर सकता। ठीक इसी तरह ऊँची जाति में जन्म ले लेने से सब अच्छे नहीं हो जाते और नीची जाति में जन्म ले लेने से सब गिरे हुए और निम्न कोटि के नहीं बन जाते। इसी प्रसंग में एक रोचक घटना है।

आनंद—सुनाइये सर !

मनोहर—किसी दफ्तर में एक व्यक्ति, साहब से मिलने आया। सुन्दर आकृति कुलीन परिवार व इत्र से सुगन्धित वस्त्रों वाला होने के कारण सबका ध्यान उसने अपनी ओर खींच लिया। साहब उसके आते ही खड़ा हुआ, उससे हाथ मिलाया और सम्मानपूर्वक उसे अपने पास कुर्सी पर बिठाया। पाँच सात मिनट बात करके वह वहाँ से रवाना हो गया। कुछ समय बाद एक बेडोल और पुराने वस्त्र पहने एक बूढ़ा व्यक्ति साहब के पास आया। साहब ने अनमने ढंग से बात शुरू की। उसकी बोली व व्यवहार से साहब इतना प्रभावित हुआ कि एक घंटा तक वह उससे बातचीत करता रहा। जब वह वृद्ध रवाना होने लगा तब साहब स्वयं उठकर बाहर दरवाजे तक उसे पहुँचाने गया, उसके पांव छुए और फिर आने के लिए अनुरोध किया। दूर बैठा एक व्यक्ति जो इन दोनों घटनाओं का साक्षी था, साहब के इस व्यवहार को देख कर असमंजस में पड़ गया। पास में आकर साहब से बोला— महोदय ! कुछ समय पहले एक व्यक्ति आपसे मिलने आया, आप खड़े हुए, उसका आदर किया किन्तु जाते समय उसे कोई सम्मान नहीं दिया और अभी एक वृद्ध सज्जन जब आए तो आप बैठे रहे और अनमने होकर बात शुरू की, पर जाते समय उसे द्वार तक पहुँचाया, बड़ा सम्मान दिया, वापस आने का आग्रह भी किया, यह इतना

अन्तर क्यों ? साहब ने रहस्य खोलते हुए उस व्यक्ति को बताया कि पहला व्यक्ति सिर्फ रंग, रूप व वस्त्रों से सुन्दर था, विचार और व्यवहार से सुन्दर नहीं था। दूसरा व्यक्ति बाहर से आकर्षक नहीं था किन्तु उसका आन्तरिक जीवन, बोलने का ढंग बढ़ा मनमोहक था। इसी कारण पहले व्यक्ति से मैंने पांच सात मिनट में बात पूरी करली और दूसरे से मैं घंटे भर काम छोड़कर बातें करता रहा। फिर उसने पूछा—साहब यह दूसरा व्यक्ति किस जाति का था ? साहब ने झंपकर कहा—जाति से मुझे क्या लेना देना, मैं तो व्यक्ति का अंकन उसके जीवित गुणों से करता हूँ।

आनंद—घटना तो आपने अच्छी सुनाई फिर भी आपसी जाति भेद को कैसे मिटाया जा सकता है ?

मनोहर—अगर हम भेद दृष्टि से देखेंगे तो भेद का कहीं अन्त भी नहीं आएगा। जाति भेद की तरह और भी अनेक भेद हैं। एक धनवान दूसरा गरीब, एक पढ़ा-लिखा दूसरा अनपढ़, एक गौरवर्ण दूसरा कृष्ण वर्ण, एक भारतीय दूसरा विदेशी, एक जैनी दूसरा सनातनी इस तरह के अगणित भेद मानव जाति में मिलेंगे किन्तु भेदों के कारण हम मनुष्य को विभक्त नहीं कर सकते। हमारे आचार्यों का यह उद्घोष है—एकैव मानुषी जातिः। मनुष्य जाति एक है। हरिजन, महाजन, ब्राह्मण, किसान, क्षत्रिय इस तरह की सैंकड़ों, हजारों वर्ग व जातियाँ हैं किन्तु ये शाश्वत नहीं हैं, बदलती रहती हैं।

आनंद—जातियाँ तो ईश्वरकृत हैं, क्या वे भी बदलती हैं ?

मनोहर—कहीं पढ़ लिया या किसी से सुन लिया, क्या इतने मात्र से जाति ईश्वरकृत हो जायेगी ? यह तो समाजशास्त्रियों की चालू की हुई व्यवस्था है। सैंकड़ों-हजारों प्रकार की जातियाँ हैं, ईश्वर उनको बनाने कब आता है ? जैन आगमों में जिन जातियों का उल्लेख मिलता है उनमें से अधिकांश आज अनुपलब्ध हैं। भारत में शक, हूण आदि अनेक जातियों के लोग समय-समय पर आये लेकिन वे भारतीय जातियों में समा गए। जातिगत परिवर्तन होता रहता है व होता रहेगा।

एक बात और है, ईश्वर अगर किसी को महाजन, किसी को हरिजन बनायेगा तो यह मानव जाति के प्रति उसका पक्षपात कहा जाएगा। सच्चाई तो यह है कि ईश्वर कभी ऐसे प्रपंच में पड़ता ही नहीं।

नन्द—सामान्यतया देखा जाता है कि हरिजन के घर में जन्म लेने वाला हरिजन और वणिक के घर में जन्म लेने वाला वैश्य और ब्राह्मण के घर में जन्म लेने वाला ब्राह्मण कहलाता है। क्या परम्परागत जातियाँ भी बदलती हैं ?

मनोहर—तुम इतिहास और परम्परा का अध्ययन करोगे तो निश्चित ही इस तथ्य को स्वीकार कर लोगे कि जातियाँ भी बदलती हैं। महाभारत में उल्लेख है “चंडाल व मच्छीमार के घर में जन्म लेने वाले व्यक्ति भी तपस्या से ब्राह्मण बन गये। हरिकेशी मुनि व संत रैदास भी चंडाल व चमार जाति में जन्मे थे। रत्नप्रभसूरि ने अनेक शूद्रों को जैन बनाया था। जैन बनने के साथ ही उन्होंने अपना कर्म बदल लिया, व्यवसाय करने लगे। आज सैकड़ों जैन परिवार ऐसे मिलेंगे जिनके पुरखे किसी समय शूद्र थे। कई वर्षों पूर्व हजारों हरिजन डॉ० अम्बेडकर के नेतृत्व में बौद्ध बने थे। अनेकों हरिजन आज ईसाई बन रहे हैं। अगर जाति शाश्वत होती तो क्या यह परिवर्तन सम्भव हो सकता था ? वस्तुतः जाति का आधार गुण और कर्म है। गुण और कर्म में परिवर्तन आते ही व्यक्ति की जाति भी बदल जाती है। भगवान महावीर का शाश्वत वचन है कि “ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये सभी कर्म से होते हैं। मनुजी ने अपने ग्रंथ मनुस्मृति में लिखा है—अनार्य जाति में उत्पन्न व्यक्ति अपने सदगुणों के कारण आर्य बन जाता है और आर्य जाति में उत्पन्न व्यक्ति दुर्गुणों व निम्न कर्म के कारण अनार्य हो जाता है।

नन्द—जाति को आप परिवर्तनशील भले कहें पर जाति को लेकर मनुष्यों में जो अन्तर है उसको समाप्त कर देना सहज नहीं है।

मनोहर—मनुष्य और पशु ये दो भिन्न जातियाँ हैं, इनका अन्तर स्पष्ट है। किन्तु मानव-मानव के बीच का अन्तर मूलतः नहीं है। यों तो एक ही जाति के लोगों में भी कई बातों को लेकर अन्तर होता है। पर इस अन्तर के होने पर भी मनुष्य जाति की एकता में कहीं फर्क नहीं है। बाह्यभेद जितना भी है वह परिवर्तनशील है। एक हरिजन व चमार भी अपने गुणों के कारण पूज्य बन सकता है और एक महाजन का लड़का भी अपने दुर्गुणों के कारण दर-दर का भिखारी व निम्न कोटि का बन सकता है। (एक क्षण रुक कर) काफी लम्बी चर्चा चल पड़ी, अब बताओ किस प्रयोजन से आना हुआ ?

नन्द—आए तो हम विशेष प्रयोजन को लेकर ही थे।

मनोहर—कहो, क्या है विशेष प्रयोजन ?

नन्द—सर, हमने गर्मी की छुट्टियों में ट्यूब पर जाने के लिए नाम लिखाया था, किन्तु अब विचार बदल गया।

मनोहर—फिर भी कोई कारण तो होगा। साफ-साफ कहो न।

आनंद—सर, हमको जानकारी मिली है कि दो हरिजनों के विद्यार्थी भी उस ट्यूब में चलेंगे, वे अगर साथ होंगे तो हम लोग नहीं रहेंगे।

मनोहर—ओहो ! अब बात समझ में आई। हरिजन विद्यार्थियों से तुमको एतराज है। पर तुम ही बताओ उनको हम कैसे रोक सकते हैं, वे भी मानवता के नाते हमारे भाई हैं। किसी जाति विशेष को अप्रसूय मानना क्या अपराध नहीं है ? आज तो सरकार ने भी कानून बना दिया है कि किसी भी हरिजन या नीची जाति के व्यक्ति के साथ कोई छूआछूत या तिरस्कार करे तो वह दंडनीय है। तुम उनके साथ भोजन चाहे मत करो पर ट्यूब में उनको जाने से इन्कार कर दें यह कतई संभव नहीं।

नन्द—उनको ले जाने के लिए हम इन्कार कहां कर रहे हैं, हम तो स्वयं के लिए ही इन्कार कर रहे हैं।

आनंद—सर, आप कुछ भी कहें, हमारे संस्कारों से अभी छूआछूत की बात निकली नहीं है।

मनोहर—पर संस्कारों में मोड़ भी तो लाया जा सकता है। आदमी चिन्तन-शील प्राणी है। वह जड़ नहीं जो अपने में बदलाव ही न ला सके। चिन्तन के द्वारा जो सत्य लगे उसको वैश्विक स्वीकार कर लेना चाहिए। तुम ही बताओ क्या हरिजन कुल में जन्म लेने मात्र से कोई भी व्यक्ति घृणा का पात्र बन जाता है ?

नन्द—घृणा का पात्र वह अपने घृणित कार्यों के कारण बनता है सर ! वे लोग गंदगी को साफ करते हैं, खान-पान उनका शुद्ध नहीं होता, ऐसी हालत में उनका हमारे साथ मेल कैसे सम्भव हो सकता है ?

मनोहर—गंदगी साफ करने के कारण अगर वे घृणास्पद हैं तब तो पूरी मातृ जाति घृणास्पद बन जाएगी क्योंकि हर मां को अपने बच्चे की गन्दगी साफ करनी ही पड़ती है। हमारे शरीर में कहीं कोई प्रकार की गन्दगी होती है, हम एक क्षण भी विलम्ब किए बिना उसे साफ करते हैं। क्या हम स्वयं दूसरों के लिए व अपने लिए घृणास्पद नहीं बन जाते हैं ? आचार्य कृपलानी हमारे देश के एक मूर्खान्य चिन्तक हो चुके हैं। इस संदर्भ में उनके जीवन का एक रोचक प्रसंग है।

नन्द—सुनाइये, सर !

मनोहर—एक बार की बात है कि आचार्य कृपलानी रेल में यात्रा कर रहे थे। डिब्बे में एक भद्र महिला उनके पास बैठी थी। उस महिला ने कृपलानीजी से पूछ लिया—भीमन् ! आप किस जाति से हैं। कृपलानी जी एक क्षण सोचकर बोले—बहिन ! मैं जब सुबह उठता हूँ तो हरिजन जाति का होता हूँ, फिर ब्राह्मण जाति का फिर वैश्य जाति का और रात के समय क्षत्रिय जाति का होता हूँ। बहिन असमंजस में पड़ गईं। उसने अपनी जिज्ञासा शांत करने हेतु फिर पूछा—महोदय ! मैं कुछ नहीं समझ सकी, आप बात को जरा स्पष्ट करें। कृपलानी ने कहा—सुनो बहिन ! सुबह उठते ही मैं अपने शरीर की शुद्धि करता हूँ, उस समय मैं एक हरिजन होता हूँ। शरीर शुद्धि के बाद मैं पूजा पाठ में बैठता हूँ, उस समय मैं एक ब्राह्मण बन जाता हूँ। पूजा पाठ के बाद नाश्ता व आवश्यक काम सम्पन्न करके मैं व्यवसाय में लग जाता हूँ, उस समय मैं एक वैश्य होता हूँ। रात को मैं अपने घर की सुरक्षा का दायित्व संभालता हूँ, उस समय मैं क्षत्रिय होता हूँ। इस तरह चारों ही जातियां मेरे में सन्निहित है। कृपलानी का यह जीवन प्रसङ्ग कितना हृदयस्पर्शी है।

दूसरी बात खानपान-अशुद्धि की तुने जो कही, उसे भी समझ लो। क्या हरिजनों में ही खानपान की अशुद्धि होती है, अन्य जातियों में नहीं ? तुम अपने आस पास नजर उठाकर तो देखो, अपने मित्रों व सम्बन्धियों को भी देखो, वहां भी तुमको कहीं न कहीं यह बुराई दिखाई देगी। हरिजनों में भी कई ऐसे मिलेंगे जो खान-पान को शुद्ध रखते हैं। फिर भी, क्या इस अवगुण के होने से कोई भी व्यक्ति घृणा के लायक बन जाता है। ठीक है, तुम उससे दोस्ताना सम्बन्ध मत रखो किन्तु उसे मानवता के अधिकार से भी वंचित करो, उसे मनुष्यों के बीच भी न आने दो, यह कहीं तक उचित कहा जा सकता है ? इस सत्य को मत भूलो कि कुलीन या उच्च जाति में उत्पन्न होने से सब का खान-पान शुद्ध हो, जरूरी नहीं है व हरिजन जाति में जन्म लेने वालों का सबका खान-पान अशुद्ध हो, जरूरी नहीं।

नन्द—आपके विचार मन को झकझोरने वाले हैं फिर भी क्या कारण है कि हरिजनों के प्रति मन में भ्रातृत्व का भाव नहीं जागता ?

मनोहर—उसमें दोष तुम्हारा भी नहीं है। दोष है उस परम्परा का जहां हरिजनों को आज तक हीनता की दृष्टि से देखा गया। एक समय था जब कहा जाता था कि शूद्रों को पढ़ने का अधिकार नहीं है। उनके

योग्य लड़के सिर्फ़ इसलिए ज्ञान से वंचित रह जाते थे क्योंकि वे शूद्र जाति के होते। आज तो स्थितियों में काफी अन्तर आया है। हरिजनों में भी विद्वान, राजनेता व प्रोफेसर होने लगे हैं। किन्तु उच्च कहलाने वाले समाजों में अभी भी हरिजनों के प्रति दुच्छता का भाव है। जन्मगत जाति व्यवस्था यदि कर्मानुसारिणी होती तो इस प्रकार की रूढ़ धारणाओं को पनपने का मौका ही नहीं मिलता।

आनन्द—सर ! कुलीन जाति के लोग हरिजनों को समान दर्जा कैसे दे सकते हैं जबकि दोनों के जीवन में आकाश पाताल का अन्तर है ?

मनोहर—कोई समान दर्जा दे या न दे, भारतीय संविधान ने तो उनको समान दर्जा दे ही दिया है। कुलीन जाति के एक व्यक्ति का एक वोट होता है तो हरिजन जाति के एक व्यक्ति का भी एक ही वोट होता है। बस या ट्रेन में हरिजन, महाजन के बैठने हेतु कहीं भी अलग-अलग व्यवस्था नहीं होती। किसी होटल पर जाति को लेकर बैठने व खाने-पीने की अलग व्यवस्था नहीं रहती। वर्तमान समय में तो सरकार हरिजन आदि निम्न जातियों को ज्यादा सुविधाएँ दे रही है।

समान दर्जों का अर्थ यह नहीं कि उनके साथ भोजन करें, केवल इतना ही है कि कोई भी हरिजनों से घृणा न करे, उनके साथ मानवीय बर्ताव करे। जाति का अहंकार तो होना भी नहीं चाहिए। क्योंकि एक जन्म में ही व्यक्ति न जाने कितनी उच्चता व नीचता की स्थितियाँ भोग लेता है। भगवान महावीर ने कहा है—“कोई व्यक्ति जाति, कुल, धन, रूप आदि का अभिमान करके दूसरों की अवहेलना या तिरस्कार करता है वह जन्म-मरण के प्रवाह में निरन्तर बहता रहता है। कभी दुःख सुक्त नहीं होता।” अतः जाति आदि के कारण कोई दूसरे को हीन न समझे, न स्वयं को अतिरिक्त समझे।

दूसरा कोई समझे या न समझे, छोड़ो इस चिन्ता को। तुम दोनों तो अब समझ गए होंगे।

आनन्द—आपकी बातें समझ में तो आती है किन्तु.....

मनोहर—किन्तु.....क्या रह गया ?

नन्द—सर, अभी भी हमारे में यह साहस नहीं जगा है कि इस सत्य को स्वीकार कर लें।

मनोहर—अरे ! तुम दोनों जैन हो, भगवान महावीर में विश्वास रखने वाले हो, फिर भी आश्चर्य ! जातिवाद के घेरे में फँसे हुए हो। भगवान

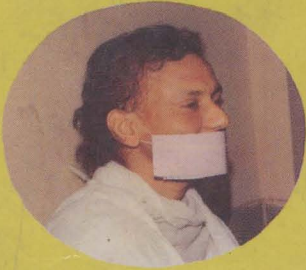
महावीर ने स्पष्ट कहा है—“तपस्या के कारण व्यक्ति विशिष्ट बनता है, जाति से नहीं। कर्म के कारण व्यक्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बनता है न कि जाति से।” उन्होंने समता धर्म का संदेश दिया। सब प्राणियों को आत्मतुल्य समझने की बात कही। विश्व के छोटे से छोटे प्राणी के साथ भगवान महावीर ने प्रेम और मैत्री करने की बात बताई। और तुम मनुष्य जाति की ही एक इकाई के साथ प्रेम का भाव नहीं जोड़ सकते। महावीर के अनुयायी होकर उनकी ही शिक्षा का उल्लंघन कर रहे हो। महावीर के अलावा दूसरे धर्म के पोगम्बरों व महापुरुषों ने भी प्रेम, मैत्री व समता की बात पर बल दिया है। भगवद्गीता में श्री कृष्ण ने इसी स्वर को मुखरित किया है—विद्या, विनय आदि गुणों से सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चण्डाल इन सब में जो समता रखता है वही वास्तव में पण्डित है। कोई भी धर्म नफरत करना नहीं सिखाता। जाति, लिंग, रंग आदि के भेदों से मानव जाति के टुकड़े नहीं किए जा सकते। इन भेदों में भी जो अभेद को देखता है वही वस्तुतः बुद्धिमान है।

आनंद—क्या उनके साथ बैठने से हम भ्रष्ट नहीं हो जायेंगे ?

मनोहर—अब भी तुम्हारी भ्रांति नहीं मिटी। एक कुत्ते को जो कि बिठा खाता है और न जाने कितने दूषित कीटाणु उसमें होते हैं उसे अपने पास में बिठाते हो, पुचकारते हो, रोटी खिलाते हो फिर भी भ्रष्ट नहीं होते और एक हरिजन के साथ बैठने में तुम भ्रष्ट हो जाते हो। कैसी है चिन्तन की विडंबना ! कई हरिजन तो ऐसे हैं जो तुम्हारे से भी साफ सुधरे रहते हैं। क्या हरिजन होने मात्र से वे अपराधी हो गये ? गन्दगी का काम करते हैं तब तुम उनसे दूर रहो ठीक है, पर जब साफ सुधरे हो तो बैठने मात्र से भ्रष्ट होने की बात बिल्कुल न्यायसंगत नहीं लगती। महात्मा गाँधी हरिजनों के साथ रहे हैं, उनकी परवरिश उन्होंने की। वर्तमान में युग प्रधान आचार्य श्री तुलसी हरिजनों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने की बात कर रहे हैं। उनकी धर्मसभाओं में हरिजन व्यक्तियों को भी आने का अधिकार है और जन सामान्य के साथ बिना रोक टोक के वे बैठ सकते हैं। महान् वे ही बने हैं जिन्होंने दलितों को ऊँचा उठाया। समय का तकाजा है कि हरिजनों व दलित वर्ग के लोगों के साथ भी हम घृणा न करके भ्रातृत्व भाव का विकास करें। उनमें अगर कोई बुराई है तो उसे भी समझाकर दूर करें।

- आनंद—सर, आपकी वाणी में अद्भुत जादू है। आपकी युक्तिपूर्ण बातों ने हमारे हृदय को छू लिया है। अब हमारे पास कहने की कुछ भी नहीं रहा।
- नन्द—हमारे मन के सब प्रश्न समाहित हो गए। सचमुच आपके विचार बहुत ऊँचे हैं।
- मनोहर—अब तो ट्यूब में साथ चलते हुए तुम दोनों को कोई झिझक नहीं है।
- आनंद—आपने हमारी भीतरी ग्रंथियों को खोल दिया। हमारे चिन्तन की दरिद्रता को दूर कर दिया। अब हमको उनके साथ ट्यूब में जाते कोई दिक्कत नहीं है।
- नन्द—आपने हमें सही मार्ग दर्शन देकर कृतार्थ किया। हम आपके प्रति बहुत-बहुत कृतज्ञ हैं।

मुनि विजय कुमार : संक्षिप्त परिचय



जन्म : फाल्गुन शुक्ला ६, वि.सं.

२००६, सुजानगढ़

दीक्षा : आषाढ़ शुक्ला १२, वि.सं.

२०२३, बीदासर

यात्राएँ : गुरुदेव श्री तुलसी व आचार्य श्री महाप्रज्ञ के सान्निध्य में दक्षिण भारत की यात्रा, बंगाल यात्रा (दोबार), बिहार, नेपाल, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, कर्णाटक, उत्तरप्रदेश, हरियाणा,

राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, तमिलनाडू व केरल प्रांतों में भ्रमण।

: मुनिश्री सुमेरमलजी (लाडनूँ) के सहवर्ती।

: रुचि-अध्ययन, लेखन, संगीत, जन-सम्पर्क आदि।

रचित कृतियाँ

१. मधुकलश
२. मधुमाला
३. स्वरमाधुरी
४. सुधा घूट
५. मधुकोष
६. मधुवन
७. झंकार
८. निर्माण की दहलीज पर
९. बात-बात में बोध
१०. नया दौर
११. नई पौध
१२. खुली आँख
१३. एक और उड़ान
१४. युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी (चित्रकथा)
(द्वितीय संस्करण व अंग्रेजी में अनुदित)
१५. मुस्कान
१६. विनय से विद्या (चित्र-कथा)
१७. जैसा संग वैसा रंग (चित्र-कथा)
१८. गुरु चालीसा
१९. संतों के बोल
२०. आदिम गाथा
अप्रकाशित
२१. व्याख्यान अष्टक
२२. मुक्तक मंजुषा
२३. संवाद वाटिका
२४. Inspiring Rays